श्रीभास्कराचार्यप्रणीतः

सिद्धान्तशिरोमणिः

पूर्वभाग-हिन्दीटीका सहित

व्याख्याकार
पं० सापदेव शर्मा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

430

श्रीमद्भास्कराचार्यप्रणीतः

सिद्धान्तशिरोमणिः

'सूर्यप्रभा' हिन्दीटीका सहित

(गोलाध्यायः)

भाग-2

व्याख्याकार

पं० सत्यदेव शर्मा

एम०एस०सी० (गणित-आधुनिक खगोल गणित)

सी०ए०आई०आई०बी०

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे- इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

सिद्धान्तशिरोमणिः—पं. सत्यदेव शर्मा

ISBN : 978-93-80326-17-7 (सेट)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129

वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542) 2335263, 2335264

e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : 2019

₹ 1500 (1-2 भाग सम्पूर्ण)

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए

अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

दूरभाष : (011) 23286537, (मो.) 09811104365

e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर

पोस्ट बॉक्स न. 2113

दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स न. 1069

वाराणसी 221001

मुद्रक :

ए.के. लिथोग्राफर, दिल्ली,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दो शब्द

भास्कराचार्य (द्वितीय) ने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ की रचना अपने सभी पूर्ववर्त्ती आचार्यों के ग्रन्थों से नई-नई तथा प्रामाणिक बातों का संकलन करके की है। यह बात मुझे इस ग्रन्थ की प्रस्तुत भाषाटीका लिखने के क्रम में प्रतीत हुई। आचार्य ने ब्रह्मगुप्त को अपने ग्रन्थ-सिद्धान्त का मूल आधार बनाया है—इस बात का तो उन्होंने उल्लेख किया है; लेकिन अन्य जिन-जिन आचार्यों के ग्रन्थों से जिन-जिन सिद्धान्तों तथा सूत्रों को अपने ग्रन्थ में समाविष्ट किया है, उसका उल्लेख उन्होंने कहीं भी अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। इस प्रकार उन्होंने अन्य आचार्यों की बातों को अपना बताकर प्रस्तुत किया है, यह बात इस ग्रन्थ के अध्ययन से पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है।

भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में ब्रह्मगुप्त के अतिरिक्त वराहमिहिर, वटेश्वर, लल्लाचार्य, आर्यभट (द्वितीय), श्रीपति, सूर्यसिद्धान्त, मुञ्जालाचार्य, भास्कर (प्रथम) आदि आचार्यों के ग्रन्थों से भी बहुत-सी नई बातें अपने ग्रन्थ में समाविष्ट की हैं। इसी कारण से भास्कराचार्य का यह ग्रन्थ अधिक विख्यात हुआ तथा ग्रन्थ के साथ-साथ भास्कराचार्य को भी प्रशंसा प्राप्त हुई। आचार्य ने स्वयं ही इस ग्रन्थ पर वासना-भाष्य लिखा, जिससे अन्य ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव कम हुआ तथा इनके पूर्व के ग्रन्थों को भी अनुपयोगी समझ लिया गया। साथ ही यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के स्थितिकाल में पूर्वलिखित ग्रन्थों की अनुपलब्धता भी रही। आज भी सम्पूर्ण वटेश्वर सिद्धान्त उपलब्ध नहीं है और शायद इस बात के प्रयास भी नहीं किये जा रहे हैं कि इस ग्रन्थ को सामने लाया जाय। एक-दो लोगों ने अपने स्तर पर प्रयास जरूर किये हैं; लेकिन फिर भी अद्यावधि सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका है। विशेष रूप से गोलाध्याय तो अपूर्ण ही है। इसके मात्र कुछ अध्याय ही प्राप्त हो सके हैं। श्रीपति का सिद्धान्तशेखर कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रेस से एक बार प्रकाशित हुआ था, जो वर्त्तमान समय में लाइब्रेरियों में भी उपलब्ध नहीं है। सौभाग्य से भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ की उपलब्धता सार्वकालिक रही, जिसका उपयोग भी सदा-सर्वदा होता रहा। सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में एक हजार से अल्प संख्या में ही श्लोक हैं, अत: शायद इसकी लघुता तथा स्वकृत टीका, दोनों ही इसकी उपलब्धता के कारण रहे। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त तथा वटेश्वर सिद्धान्त—दोनों ही बहुत विस्तृत सिद्धान्त हैं। आज भी अब तक प्राप्त सभी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में वटेश्वर-सिद्धान्त ही सबसे विस्तृत सिद्धान्त है। यदि सम्पूर्ण गोलाध्याय उपलब्ध हो जाता है तो निश्चित रूप से यह विशालतम सिद्धान्तग्रन्थ है, जिसमें और भी अनेकों सूत्रों का समावेश किया गया है। इनका अन्वेषण करके भारतीय गणित की अज्ञात वैभवता को उजागर किया जा सकता है। अनेकों आधुनिक गणित के सूत्र इस सिद्धान्त में समाविष्ट हैं, जिनको वर्त्तमान में उजागर करने की महती आवश्यकता है।

भारतीय सिद्धान्तगणित के सूत्रों को आधुनिक गणित के सूत्रों के रूप में परिवर्तित करने का कार्य वे ही ज्योतिर्विद कर सकते हैं, जिन्होंने आधुनिक तथा भारतीय एस्ट्रोनॉमी—दोनों का ही अच्छा अध्ययन एवं ज्ञान प्राप्त किया हो। ऐसे प्रयास कुछ विद्वानों ने किये भी हैं तथा अन्य ग्रन्थों की टीकायें भी अंग्रेजी भाषा में की गई हैं। भास्कराचार्य ने पूर्वोक्त ब्रह्मस्फुट, वटेश्वर, आर्यभट द्वितीय, श्रीपति आदि के प्रमुख ग्रन्थों में से प्रत्येक में से लगभग 70-80 प्रतिशत भाग अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में समाविष्ट किया है—ऐसा प्रतीत होता है। बहुत-सा भाग तो सभी ग्रन्थों में ही समान है। प्रस्तुत टीका में मैंने भास्करोक्त श्लोकों की हिन्दी व्याख्या के पश्चात् विशेष विवरण में अन्य प्रमुख-प्रमुख आचार्यों के ग्रन्थों के वे उद्धरण भी दिये हैं, जिनमें उन्होंने भास्करोक्त बात का ही प्रतिपादन किया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ पूर्ववर्त्ती आचार्यों के ग्रन्थों के सिद्धान्तों तथा सूत्रों का ही संकलनमात्र है। भास्कराचार्य ने स्वयं का कोई विशेष सूत्र या सिद्धान्त इस ग्रन्थ में प्रतिपादित नहीं किया है। भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ में वेध से प्राप्त गणनाओं को ही पूर्व ग्रन्थों की अपेक्षा बदला है तथा जहाँ अन्य ग्रन्थों के स्वीकार अंकमानों में थोड़ा-थोड़ा अन्तर प्रतीत हुआ है, वहाँ ब्रह्मगुप्त के कहे अङ्कमानों को स्वीकार कर लिया है; लेकिन अन्य आचार्यों के मानों को त्यागने का कोई कारण नहीं बताया है।

प्रस्तुत टीका के द्वारा पाठकों को सिद्धान्तशिरोमणि के सिद्धान्तों के साथ-साथ अन्य पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों के सिद्धान्तों का भी अध्ययन स्वत: हो सकेगा; क्योंकि बहुश: स्थानों पर तो उन्हीं बातों को आचार्य ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में थोड़ा-बहुत घुमाकर अन्य प्रकार से तथा अनेक स्थानों पर तो लगभग यथावत् कह दिया है। इस व्याख्या के साथ ही नये अन्वेषणों के नये आयाम भी खुलेंगे, जिनमें अन्य आचार्यों द्वारा कथित अतिरिक्त सिद्धान्तों तथा सूत्रों के शुद्धता की परीक्षा भी की जा सकेगी। उनमें थोड़ा-बहुत सुधार करके नये सिद्धान्त व सूत्र भी बनाये जा सकेंगे तथा आधुनिक समय के अति सूक्ष्म तथा शुद्ध मानों से उनकी तुलना भी की जा सकेगी।

ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, मुञ्जाल, आर्यभट (दोनों) ने और भी सूत्र कहे हैं, जिनका भी अध्ययन कर शोध किया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय गणित के सूत्रों का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संकलन स्पष्ट रूप से सांकेतिक रूप में करके उनकी आधुनिक समय के सूत्रों से तुलना करके यह ज्ञात किया जा सकता है कि भारतीय गणित के सूत्र आधुनिक गणित के सूत्रों के कितने आसन्न तथा समरूप हैं। ऐसा पी. सी. सेनगुप्ता, के. वी. शर्मा आदि आधुनिक ज्योतिष के मर्मज्ञों ने किया भी है। इसके लिये भारतीय ज्योतिष के विद्वानों को आधुनिक गणित के मूलभूत विषय; जैसे—सरल त्रिकोणमिति, गोलीय त्रिकोणमिति, दीर्घवृत्त आदि का भी अध्ययन करना होगा। इन विषयों के सम्बन्ध में इनकी उपयोगिता को म. म. बापूदेव शास्त्री तथा म. म. सुधाकर द्विवेदी जी ने भली-भाँति आँक लिया था; अत एव दोनों ने ही क्रमश: 'सरल त्रिकोणमिति' तथा 'दीर्घ-वृत्तलक्षणम्' आदि सरल ग्रन्थों की रचना भारतीय ज्योतिष के विद्वानों के लिये की थी; लेकिन इन ग्रन्थों का पठन-पाठन नगण्य-सा ही रहा; क्योंकि आधुनिक गणित के ज्ञाताओं से इन विषयों को समझने तथा पढ़ने में सहायता नहीं ली गई। मैंने इन दोनों ही ग्रन्थों की अतिशय महत्ता को ही अनुभव कर ही इनकी सरल हिन्दी भाषा में व्याख्या की है; साथ ही इनमें और भी अति आवश्यक तथा मूलभूत आधुनिक गणित एवं विज्ञान के सिद्धान्तों का सूक्ष्म रूप से उल्लेख करके इन ग्रन्थों की उपयोगिता तथा महत्त्व को और भी बढ़ाने का प्रयास किया है। ये (दोनों ही) ग्रन्थ हमारे भारतीय ज्योतिष के छात्रों तथा अध्यापकों के लिये अवश्यमेव ज्ञातव्य हैं। साथ ही इनका अध्ययन भारतीय विश्वविद्यालयों में भी अवश्यमेव होना चाहिये और इनमें उत्तीर्ण होना भी आवश्यक किया जाना चाहिये। इनका ज्ञान प्राप्त किये विना भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्तों के क्रम में आगे का अन्वेषण अति दुर्लभ प्रतीत होता है। इनके अध्यापन के लिये आधुनिक गणित विषय के अध्यापक भी नियुक्त किये जा सकते हैं। वास्तव में देखा जाय तो भारतीय ज्योतिष गणित में आधुनिक गणित के भी अनेक सूत्र हैं; जिन्हें अलग रूप में कहा गया है; क्योंकि उस समय (आधुनिक) त्रिकोण-मिति आदि नामनिर्देशपूर्वक गणित का अलग से कोई शाखाग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। सभी सिद्धान्त रेखागणित पर आधारित हैं तथा आज की त्रिकोणमिति, दीर्घवृत्त आदि विषयों तथा इनके सूत्रों का आधार भी रेखागणित ही है। केतकी ग्रहगणित इसी बात का एक उदाहरण है। भारतीय ज्योतिष गणित का पाठ्यक्रम हमारे विश्वविद्यालयों में आज भी बहुत अल्प स्तर का है। आचार्य की परीक्षा तक लगभग सभी प्रमुख-प्रमुख प्राचीन सिद्धान्तग्रन्थों का अध्ययन पाठ्यक्रम में होना चाहिये। इसी दिशा में मेरे द्वारा की गई यह टीका एक कदम है। इसके द्वारा भास्कराचार्य (12वीं शताब्दी) सहित इनके पूर्ववर्त्ती प्रमुख-प्रमुख ग्रन्थों का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा; साथ ही जो थोड़ा-थोड़ा विषय सबमें शेष रह जाता है, उसका अलग से शोध के रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभी भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों में बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनका दोहन हम अद्यावधि नहीं कर पाये हैं। इनमें प्रमुख रूप से ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, लल्लाचार्य, मञ्जात, माधवाचार्य, वराहमिहिर आदि हैं। प्राचीन ग्रन्थों की अनुपलब्धता तथा उनका अध्ययन-अध्यापन नहीं हो पाने के कारण ही भास्कराचार्य-रचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के सिद्धान्तों तथा सूत्रों को समीक्षाकारों ने उनकी स्वयं की ही मूल सोच को स्थान-स्थान पर कह दिया है; जबकि बाद में प्रकाशित ग्रन्थों के अध्ययन करके कुछ विद्वानों ने यह भ्रम कुछ सीमा तक दूर किया। मेरी इस टीका में इस ओर कुछ और कदम आगे बढ़ाने का प्रयास मैंने किया है, जो सम्भवत: सभी विद्वज्जनों को प्रसन्नता प्रदान करेगा।

प्राचीन भारतीय ज्योतिष के दुर्लभ ग्रन्थों को सर्वसुलभ कराना भारत सरकार की भी जिम्मेदारी बनती है। कतिपय प्राचीन ग्रन्थों की कुछ आधुनिक खगोलविदों ने अंग्रेजी भाषा में व्याख्यायें की हैं, लेकिन वे उन्हीं के स्तर के लोगों के समझने तथा आगे अन्वेषण के लिये अधिक सहायक हो सकती हैं। उन व्याख्यायित ग्रन्थों के अध्ययन-क्रम में भारतीय ज्योतिष गणित के विद्वानों को भाषा, गणित की विविधता तथा उच्च स्तर के कारण अत्यधिक परेशानी का अनुभव होना स्वाभाविक है। अत: यह भी आवश्यक है कि भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों की हिन्दी में भी व्याख्यायें की जायँ, जिससे इनके अन्वेषण तथा अध्ययन करने वालों की संख्या में वृद्धि हो सके। यत: इन ग्रन्थों की संस्कृत भाषा में भी जो व्याख्यायें प्राचीन आचार्यों ने समय-समय पर की हैं, वे इतनी क्लिष्ट हैं कि उन्हें संस्कृत के ही छात्रों एवं विद्वानों द्वारा समझना मुश्किल हो जाता है; फिर सामान्य लोगों का तो कहना ही क्या है? हिन्दी एक ऐसी सर्वजन-सामान्य भाषा है, जिसको अंग्रेजी, संस्कृत तथा अन्य भाषायें जानने वाले भी जानते तथा समझते हैं। यह भारत की राष्ट्रभाषा भी है। आध्युनिक युग के लिये एक बात और भी आवश्यक है कि व्याख्याओं का प्रणयन सरल भाषा में होने के साथ-साथ पूर्ण रूप से छात्रों को समझ में आने लायक किया जाना चाहिये; लेकिन इसके लिये अध्ययन करने वालों का स्वयं का आधार भी सुदृढ़ होना आवश्यक है।

'लीलावती' को भी आज के समय के अनुरूप लिखने तथा व्याख्यायित करने की आवश्यकता है। लीलावती में कथित सिद्धान्तों तथा आधुनिक गणित के सिद्धान्तों को पढ़ने वाले छात्रों को इन दोनों में समानता या नवीनता दृष्टिगोचर होनी चाहिये। लीलावती में कहे गये तथा आधुनिक गणित के सिद्धान्त लगभग समान ही हैं, बस कहने का ढंग थोड़ा अलग है। कुछ ही बातें भिन्न हो सकती हैं, जिनको स्पष्ट रूप से व्याख्या में प्रकाशित किया जाना चाहिये। भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थों में सरल-सी बात को भी घुमा-फिरा कर क्लिष्ट बनाकर कहा है, जिससे उनकी बातें महान् तथा कठिन प्रतीत होती हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, भास्कराचार्य, लल्लाचार्य आदि आचार्यों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खण्डन किया है तथ कुछ ने अलग से दूषणाध्याय ही बना दिया है एवं अपने पूर्वाचार्यों के लिये अनेक प्रकार के अपमानजनक शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसा कि भास्कराचार्य ने विशेष रूप से लल्लाचार्य के लिये अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर किया है। अत: सिद्धान्तग्रन्थ के 'लक्षणों' में 'दूषणाध्याय' स्वत: ही जुड़ जाता है और यह भी सिद्धान्त ग्रन्थ का एक आवश्यक लक्षण कहा जा सकता है।

यह तो आवश्यक है कि परवर्ती आचार्य इस बात को स्पष्टता से प्रकाशित करें कि उनके पूर्ववर्त्ती आचार्यों के सिद्धान्तों में क्या कमियाँ तथा त्रुटियाँ थीं, जिन्हें उन्होंने किस प्रकार अपने ग्रन्थ में सही किया। लेकिन पूर्ववर्त्ती गुरुतुल्य आचार्यों के लिये अपमानजनक शब्दों का उपयोग करना विशेष रूप से भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है। गुरुतुल्य पूर्वाचार्यों के शास्त्रों का ही तो अध्ययन करके शास्त्र को जाना जाता है, फिर उन्हीं गुरुओं को अपमानित करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। भास्कराचार्य ने पहले लल्लाचार्य के शिष्यधीवृद्धि ग्रन्थ की टीका की तथा उसमें आचार्य के सिद्धान्तों की प्रशंसा की; लेकिन जब स्वयं का सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ लिखा तो सबसे ज्यादा लल्लाचार्य के प्रति ही उन्होंने अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया। यह तथ्य इस व्याख्याग्रन्थ के अध्ययनक्रम में स्थान-स्थान पर स्वष्ट हो जाती है।

भारतीय ज्योतिष के आचार्यों की एक विशिष्ट बात यह रही है कि वे जिस पूर्वाचार्य को लक्ष्य बना लेते थे, उसी की बातों के आधार पर अपने ग्रन्थ की रचना करते थे। चाहे अन्य किसी आचार्य की बातें कितनी ही सही, तर्कपूर्ण तथा ग्रहण करने योग्य क्यों नहीं हों? यह कितनी उचित तथा सही दिशा है, विद्वान् लोग स्वयं विचार करें। लगभग सभी आचार्यों ने एक आचार्य को लक्ष्य बना कर दूसरे की बातों में दूषण खोजने का कार्य ही अपने ग्रन्थ में किया है; लेकिन किसी अन्य आचार्य के मत को भी स्वीकार करके अपने ग्रन्थ में उसका समावेश करते समय किसी ने भी उस आचार्य का उल्लेख अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। भास्कराचार्य ने भी इसी परिपाटी का अनुसरण किया है। आचार्यों ने किसी आचार्यविशेष को दूषण देते समय उसके द्वारा कही गई सही बात के लिये भी तथा नहीं की गई बात के लिये भी दूषण कह दिया है। विचित्र बात यह है कि किसी भी ग्रन्थ में किसी भी आचार्य की सराहना नहीं की गई है, न ही उस आचार्य का ग्रन्थ में कहीं उल्लेख ही किया गया है। यदि आचार्य ऐसा नहीं करते तो आज यह बात स्पष्ट रूप से सभी ग्रन्थों में लिखी हुई मिलती कि किस आचार्य का सिद्धान्त तथा सूत्र सही मान कर ग्रन्थ में स्वीकार किया गया है। इसी कारण से यह गलत धारणायें उत्पन्न होती हैं तथा हुई हैं कि कौन-सी बात किस

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य द्वारा कही गई है? यह निर्णय व्याख्याकार को अथवा पाठक को स्वयं को ही करना पड़ता है और जब तक सारे ग्रन्थों का सूक्ष्मता से अध्ययन नहीं किया गया हो, यह पता लगाना बहुत मुश्किल होता है।

मेरी इस हिन्दी टीका में अन्य कई ग्रन्थों के उद्धरण होने से अन्य ग्रन्थों की व्याख्या भी सुगम हो सकेगी तथा उनके श्लोकों का अर्थ सुगमता से जाना जा सकेगा; साथ ही उनकी समानता-असमानता का भी सहजता से पता लग सकेगा।

आज के समय में ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, वटेश्वराचार्य का वटेश्वर सिद्धान्त तथा श्रीपति का सिद्धान्तशेखर, इन ग्रन्थों का पुन: गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। इनमें अभी भी भारतीय ज्योतिर्गणित के बहुत-से धरोहर सुरक्षित हैं, जिनका दोहन करना आवश्यक है। इन ग्रन्थों को सर्वसुलभ कराने की आवश्यकता है तथा इन पर टीकाओं अथवा व्याख्याओं का प्रणयन किया जाना भी बहुत आवश्यक है। इनका अध्ययन-अध्यापन आचार्य तथा उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी रखना आवश्यक है तथा इन पर अन्वेषण कार्य भी गहराई से किया जाना चाहिये, जिसमें कि आधुनिक ज्योतिर्गणित के सिद्धान्तों तथा सूत्रों से तुल्यात्मक अध्ययन भी होने चाहिये। इन ग्रन्थों की व्याख्या तथा अन्वेषण के लिये सभी प्रकार के उपयुक्त विद्वानों के समूह या बोर्ड बनाये जाने चाहिये, जो इस कार्य को उच्च स्तर पर सम्पन्न कर सकें; तभी भारतीय गणित ज्योतिष को सर्वसमृद्ध बनाया जा सकता है।

आर्यभट प्रथम (499 AD) से लेकर भास्कर द्वितीय (1150 AD) तथा इससे भी परवर्ती आचार्यों; जैसे—मुनीश्वर (1620 AD) में परस्पर ज्योतिर्गणित के विभिन्न तत्त्वों को ज्ञात करने के नियमों में अनेक स्थानों पर समानता पाई जाती है। सबसे प्राचीन विचार तथा सिद्धान्त वेदाङ्ग ज्योतिष के समय में प्रतिपादित किये गये थे। इसी प्रकार ब्रह्म, वशिष्ठ, पैतामह, रोमक तथा पौलिश सिद्धान्त भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में समाहित किये गये थे। यहाँ हम निम्नलिखित भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में परस्पर समानतायें, जो हमें प्राप्त होती हैं, उनका उल्लेख करते हैं। ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य समानतायें इस हिन्दी टीका के अध्ययन से स्पष्ट हो जायेंगी

1. आर्य—आर्यभटीय—आर्यभट I-499 A.D.
2. ब्र.स्फु.सि.—ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त—ब्रह्मगुप्त-628 A.D.
3. खं. खा.—खण्डनखण्डखाद्य—ब्रह्मगुप्त 628 A.D.
4. क.कु.—कर्णकुतूहल—भास्कर II-1150 A.D.
5. ल.भा.—लघुभास्करीय—भास्कर I-522 A.D.
6. म.भा.—महाभास्करीय—भास्कर I-522 A.D.
7. म.सि.—महासिद्धान्त—आर्यभट II-950 A.D.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

8. पं.सि.—पञ्चसिद्धान्तिका—वराहमिहिर-505 A.D.

9. शि.धी.वृ.—शिष्यधीवृद्धि—ललचार्य-598 A.D.

10. सि.शे.—सिद्धान्तशेखर—श्रीपति-1039 A.D.

11. सू. सि.—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त—6 या 7वीं शताब्दी

12. सि.शि.—सिद्धान्तशिरोमणि—भास्कर II-1150 A.D.

13. सि. सा.—सिद्धान्तसार्वभौम—मुनिश्वराचार्य-1620 A.D.

इन सिद्धान्तों में निम्नलिखित सिद्धान्त गणित के तत्त्व ज्ञात करने में समानतायें पाई जाती है—

1. मध्यम सूर्य, बुध तथा शुक्र ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि, म.सि., सि.शे., सि.शि., सि.सा, क.कु.

2. चन्द्रमा का पात ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अध्याय 25 श्लोक 35, म.भा.I-33, शि.धी.वृ. I, i-57 (ii)

4. बुध का मध्यम शीघ्रोच्च ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अध्याय 25 श्लो. 34; म. भा. I-36; शि.धी.वृ.I, i-50 (ii)

5. मध्यम शनि ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ. 25 श्लो. 33, शि.धी.बृ. I, i 52 (i); म.भा. I-37

6. मध्यम मंगल ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ.25 श्लो.33, शि.धी.बृ. I-i-50 (i), म.भा. I-38

7. मध्यम गुरु ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ.25 श्लो.33, शि.धी.बृ. I-i-50 (i), म.भा. I-38

8. किसी स्थान की प्रधान मध्याह्न रेखा (Prime Meridian) से दूरी ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. भाग I शलेक 36; शि.धी.बृ. I-57-58 (i), ल.भा. I-25-26, सि.सा. I-143-144

9. दिग्ज्ञान करने में—

ब्र.स्फु.सि. III-1; म.भा. III-2; सू.सि. III-1-4, ल.भा. III-1; शि.धी.बृ. I-iii-1; म.सि. IV-1-2; सिशे. IV 1-3 सि.शि. I-iii 8-9 प्रकारान्तर नियम ब्र.स्फु.सि. III-2; म.भा. III-3, पं.सि.अ. 10-14-16; शि.धी.वृ. I-III-2; सि.शे. IV-4

10. सूर्य के अक्षांश और अक्ष कोटि (Colatitude) तथा नतांश एवं उन्नतांश

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञान करने में—

ब्र.स्फु.सि. III-10; म.भा. III-5; सू.सि. III-13-14; ल.भा. III-2-3; शि.धी.वृ. I-iii 4-5; सि.शे. IV-7; सि.शि. I-iii-18

11. क्रान्ति; अहोरात्रवृत्त त्रिज्या (Day-radius) क्षितिजज्या (Earth Sine) तथा चर ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. II-55; सू. सि. II-28; ल.भा. II-16; शि.धी.बृ. I-ii (17); सि.शे.III

12. अक्षदृक्कर्म ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IV-4; म.भा. IV-1-2; शि.धी.बृ. I-vii 3 (ii); म.सि. VII-4; सि.शे. IV-7

13. अयन हक्कर्म ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IV-3, X-17; सुधारा गया म.भा. VI-2 ii(3); शि.धी.बृ. I-vii 2-3 (i); सि.शे. IV 4-5; समान म. सि. VII-2-3; अधिक शुद्ध सि.शे. I VIII-4-5

14. चन्द्रोदय ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VI-6; X-32; म.भा. VI-4-5(i): पं.सि. V-3; शि.धी.बृ. I-VII-5; सि.शे. VI 8(i)-13

15. चन्द्र की कलायें (Phases) ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VI-11(ii)-12; म.भा. VI-5(ii)7; शि.धी.बृ. I-IX-12

16. चन्द्र बिंब केंद्र की क्रांति ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VII-5; म.भा. VI-8; शि.धी.बृ. I VIII-2; सि.शे. X-7; अधिक शुद्ध नियम सि.शि. I-vii 3 और 13

17. मास के प्रथम चतुर्थांश में चन्द्रशृंगोन्नति का परिलेखन—

ब्र.स्फु.सि. VII-7-10; म.भा. VI-13-17; शि.धी.बृ. I-ix; सि. शि. I-ix

18. सूर्य से ग्रहों की अल्पतम दूरी जब वे दृश्य होते हैं—

ब्र.स्फु.सि. VI 6; X-32; म.भा. VI-44; शि.धी.बृ. I vii-5(ii) सि.शे. IX-8(i)-12

19. जब दो ग्रहों की युति (Conjunction) हो तब उनके स्थान (Longitude) तथा युति का समय ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IX-5-6; म.भा. VI 49-51; शि.धी.बृ. Ix 7-9(i) सि.शे.-XI12-12

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

20. जब दो ग्रहों की युति हो तब उनके बीच की दूरी ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. IX-11; म.भा. VI-54; शि.धी.बृ. I-x-11; सि.शे. XI-10

21. मध्याह्न शंकुछाया के द्वारा मध्यमस्पष्ट सूर्य ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अ.14 श्लो.28; III-61-62; म.भा. VII-5; सि.शि. I ii-45

22. कोज्या ज्या मान से उसका चाप ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. II-11; म.भा. VIII-6; सू.सि. II-33; शि.धी.बृ. I-ii-13; सि.शे. III-16; सि.शि. I-ii 11(ii)-12(i)

इनके अतिरिक्त अन्य भी समानतायें दृगोचर होती हैं।

ब्रह्मगुप्त वेधविधि को अच्छी प्रकार जानते थे तथा अपने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में अनेक विवेचनात्मक विषय तथा अनेक तरह के तात्त्विक विचार भी प्रकट किये हैं। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की भाँति ही वटेश्वर का वटेश्वरसिद्धान्त है। ये दोनों ही महारथी आचार्य अपूर्व प्रतिभा से सम्पन्न हैं। इनके परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं के लिखे हुये दोनों महान् ग्रन्थों में प्रतिपादित विषयों का ही प्रतिपादन अपने-अपने ग्रन्थों में किया है। यह बात इन दोनों ही महान् ग्रन्थों का आद्योपान्त अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाती है। वटेश्वराचार्य ने अहर्गण का आनयन अनेक प्रकार से किया है। इसके लिये अलग से एक सम्पूर्ण अध्याय ही लिख दिया है। श्रीपति ने भी इन्हीं के अनुसार अनेक प्रकार से अहर्गण का आनयन किया है। वटेश्वर ने लघ्वहर्गण का आनयन भी किया है तथा ब्रह्मगुप्त ने भी किया है; लेकिन सिद्धान्तशेखर में इसका उल्लेख नहीं मिलता। भास्कराचार्य ने भी लघ्वहर्गणानयन किया है। यद्यपि यह आनयन ठीक नहीं है, फिर भी एक अपूर्व विषय है। मध्यमाधिकार में बहुत ही उत्तम प्रश्नाध्याय है तथा ब्रह्मस्फुट में भी इसी तरह का है। लेकिन इनसे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि ये प्रश्न वटेश्वराचार्य के मौलिक हैं अथवा ब्रह्मस्फुट के आधार पर कहे गये हैं।

स्पष्टाधिकार में ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने वृत्त के एक पाद में 225 कला वृद्धि चापों की 24 ज्याओं के मान साधन किये हैं, जबकि वटेश्वराचार्य ने छप्पन (56) कला पन्द्रह (15) विकला की छियानबे (96) ज्यायें कही है। इष्टचाप के आनयन की विधि एक प्रकार की ही है। वटेश्वर के शेषांशज्यानयन प्रकार को देखकर भास्कराचार्य ने भोग्यखण्ड का स्पष्टीकरण वटेश्वराचार्य के सदृश ही कहा है। वटेश्वर के शेषांशज्यानयन में यदि गतैष्य ज्यान्तरार्ध के स्थान पर गतैष्यखण्ड के अन्तर के आधे तथा प्रथम चाप के स्थान पर दशांश ले लिया जाय तो वटेश्वर तथा भास्कराचार्य दोनों के प्रकार तुल्य ही होते हैं, उनमें भेद नहीं रहता। शेषांशज्या शब्द के द्वारा शेष चापसम्बन्धी ज्यावृद्धि समझनी चाहिये। यह विषय सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने नहीं

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कहा है। अधिकांश स्थानों पर श्रीपति ने ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वर के द्वारा कथित विषय को ही पुनः कहा है। भास्कराचार्य ने जो भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण किया है, उसका मूल ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तोक्त अथवा वटेश्वराचार्योक्त शेषांश ज्यानयन ही है। यह उनका अपना प्रकार नहीं है, इसमें कोई सन्देह नहीं होना चाहिये। भास्कराचार्य की विधि वटेश्वर से सूक्ष्म होते हुये भी स्थूल ही है।

गणितसाधित स्वगोलस्थ स्पष्टग्रह में जिस संस्कार को करने से ग्रह हमें प्रत्यक्षीभूत होते हैं, उसी संस्कार को नतकर्म कहा गया है। स्वयं भास्कराचार्य ने कहा है कि उनके द्वारा सूर्य तथा चन्द्र में किया गया नतकर्म संस्कार का आनयन ब्रह्मगुप्त-सम्मत है। यद्यपि इन आचार्यों ने अद्भुत नवीन विषय कहा है, लेकिन उनके आनयन ठीक नहीं हैं, फिर भी आदरणीय अवश्य हैं।

अभी तक यह धारणा थी कि तात्कालिक गति-सिद्धान्त का ज्ञान सर्वप्रथम भास्कराचार्य को हुआ था; लेकिन उनसे भी प्राचीन वटेश्वराचार्य को इसका ज्ञान पहले से था, यह बात भास्करकथित भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण, मूलभूत वटेश्वरोक्त शेषांशज्यानयन देखने से स्फुट हो जाती है।

ज्या के विना इष्टज्या का चापानयन वटेश्वर का है तथा उनसे ही लेकर श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में इसे लिखा है। लेकिन यही प्रकार भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय/लघुभास्करीय में भी दिया है।

भुजकोटिज्यादिसाधन के विना अहर्गण से ही ग्रहस्पष्ट करने की विधि वटेश्वरसिद्धान्त में 'स्वोच्चनीयपरिवर्त्तशेषकाद्.....परिस्फुट' द्वारा कही गई है। यह विषय ब्रह्मस्फुट तथा सिद्धान्तशेखर में भी उल्लिखित है; लेकिन भास्कराचार्य ने इसका उल्लेख नहीं किया है। श्रीपति ने यह विषय अपने सामने आदर्श रूप में उपस्थित वटेश्वरसिद्धान्त तथा ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त से ही ले लिया है तथा इन दोनों ही सिद्धान्तों में इस विषय में जो कुछ भी कहा गया है, उससे विशेष कुछ नहीं कहा है। वटेश्वरसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में अध्याय (1) विषवच्छायानयनविधिः, अध्याय (2) लम्बाक्षज्यानयनविधि द्वितीयः, अध्याय (3) क्रान्तिज्यानयनविधि; अध्याय (4) द्युज्यानयनविधि; अध्याय (5) कुज्यानयनविधि; अध्याय (6) अग्रानयनविधि; अध्याय (7) स्वचरार्धप्राणज्यासाधनविधिः; अध्याय (8) लग्नादिविधि; अध्याय (9) द्युदलभादिविधि; अध्याय (10) इष्टच्छायाविधि; अध्याय (11) सममण्डलप्रवेशविधि; अध्याय (12) कोणशङ्कुविधि; अध्याय (13) छायातोऽर्कानयनाद्यविधि; अध्याय (14) छायापरिलेखनविधि; अध्याय (15) प्रश्नाध्यायविधि—इतने अध्याय दिये हैं। इनमें जिस प्रकार विषयों का वर्णन किया गया है, उससे वटेश्वराचार्य के अद्भुत पाण्डित्य का परिचय मिलता है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त तथा सिद्धान्तशेखर में कोणशङ्कु-साधन की एक ही विधि लिखित है, लेकिन वटेश्वर-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सिद्धान्त में अनेक प्रकार से कोणशङ्कु-साधन किया गया है। श्रीपति ने भी अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक प्रकार से कोणशङ्कु-साधन किया है। भास्कराचार्य द्वारा किया गया शङ्कुसाधन श्रीपति तथा वटेश्वरोक्त प्रकार से ही किया गया है। भास्करोक्त कोणशङ्कुसाधन का खण्डन उत्तरगोल में म. म. सुधाकर द्विवेदी ने किया है तथा दक्षिण गोल में खण्डन म. म. बापूदेव शास्त्री ने किया है। भास्करोक्त विधि का इन दोनों आचार्यों द्वारा खण्डन हो जाने से मूलभूत वटेश्वरसिद्धान्तोक्त तथा श्रीपत्युक्त कोणशङ्कु आनयन का भी खण्डन स्वत: ही हो जाता है।

त्रिप्रश्नाधिकार में वटेश्वराचार्य ने जो अनेक प्रकार से दिग्ज्ञान कहा है, उनमें से कुछ अन्य ग्रन्थों में नहीं पाये जाते। भाभ्रम के सम्बन्ध से दिग्ज्ञान की वटेश्वराचार्य की विधि के अनुरूप ही श्रीपति ने भी विधि कही है। वटेश्वर ने सूर्यसिद्धान्त तथा लल्लाचार्य के अनुरूप विधि छायाभ्रामण मार्गज्ञान के लिये बताई है। वटेश्वराचार्य ने त्रिप्रश्नाधिकार में जो बहुत से प्रश्न कहे हैं, उनमें से बहुत से प्रश्नों के उत्तर सिद्धान्तशेखर में दिये गये हैं। चन्द्रग्रहणाधिकार में सूर्य तथा चन्द्रमा के स्फुट कलाकर्णसाधन प्रकार वटेश्वरसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि में एक समान हैं। वटेश्वरसिद्धान्त का प्रकाशन होने के पश्चात् इसके लिये भास्कराचार्य को अब तक दिये जा रहे श्रेय की धारणा दूर हो जाती है। भूभा (राहु) बिम्बानयन जिस प्रकार वटेश्वराचार्य का है, उसी प्रकार श्रीपति तथा भास्कराचार्य ने भी किया है।

वटेश्वरसिद्धान्त भारतीय सिद्धान्तगणित का सबसे विशाल तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें दसवीं शताब्दी तक के आचार्यों द्वारा प्रयुक्त समस्त विधियों का समावेश है तथा यह बहुत सीमा तक मूल है एवं इसमें स्वयं वटेश्वर द्वारा प्रतिपादित नवीन विधियों तथा युक्तियों का समावेश है। वटेश्वर के सिद्धान्त पर्सियन विद्वान् अलबरुनि को भी पूर्ण रूप से ज्ञात थे, क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर वटेश्वर के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

वटेश्वरसिद्धान्त के गोलाध्याय के पाँच अध्याय ही अबतक प्राप्त हो सके हैं जिनका प्रकाशन National Commission for the compilation of History of Science in India द्वारा वटेश्वरसिद्धान्त तथा गोलाध्याय एक ही खण्ड में किया गया है।

भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में श्लोकसंख्या और भी कम हो सकती थी; लेकिन आचार्य ने गोलाध्याय में पूर्व के अनेक श्लोकों को ज्यों का त्यों दुबारा कहा है तथा कई बातों को दुबारा से थोड़ा अन्य प्रकार से कहा है। इन सबकी आवश्यकता नहीं थी। यह पिष्टपेषण दोष है, जो अन्य किसी आचार्य ने अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। शायद आचार्य ने अपने ग्रन्थ के श्लोकों की संख्या बढाने की दृष्टि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

से ही ऐसा किया है। अपने इस दोष न्यूनता प्रदान करने के लिये ही आचार्य ने प्रश्नाध्याय में कहा है कि क्योंकि लोग इस प्रश्नाध्याय को ही विशेष रूप से पढ़ेंगे; अत: उन्होंने पूर्व में कही बातों को पुन: प्रश्नाध्याय में कह दिया है। यह बात समझ में नहीं आ सकती; क्योंकि इस प्रकार तो समस्त अध्यायों को दुबारा प्रश्नरूप में कहा जा सकता है, जो उचित नहीं है। मेरा गुरु, मेरी अष्टदेवी माँ भगवती नवदुर्गा ही हैं, जिनका ध्यान करके ही मैंने भारतीय ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया है। आधुनिक एस्ट्रोनॉमी का ज्ञान प्राप्त होने के कारण ही भारतीय ज्योतिष को समझने में माँ की कृपा से मुझे कहीं भी अधिक कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ। आधुनिक गणित एवं एस्ट्रोनॉमी के अध्यापक ही मेरे गुरु हैं।

प्रस्तुत व्याख्या हिन्दी में ही बहुत विस्तृत हो गई है; अत: इसमें आधुनिक ज्योतिष (Astronomy) के सूत्रों के साथ इस मूल ग्रन्थ के सिद्धान्तों की तुलना मैंने नहीं की है। यदि मैं ऐसा करता तो यह व्याख्या अत्यधिक विस्तृत होने के साथ-साथ सम्भवत: क्लिष्ट भी हो सकती थी तथा छात्रों के लिये भ्रमित करने वाली भी हो सकती थी। सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में कथित तथा सङ्कलित सिद्धान्तों का आधुनिक गणित से तुलनात्मक अध्ययन अलग से व्याख्या में किया जा सकता है, जिसमें उपपत्ति आधुनिक Astronmy तथा आधुनिक गणित के आधार पर करनी होगी। जो आधुनिक एस्ट्रोनॉमी जानते हैं, उन्हें केवल भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त तथा सूत्रों को ही जानने की आवश्यकता है। उसके आधार पर वे स्वयं ही उनकी परस्पर तुलना कर सकते हैं। अत: इस व्याख्या में केवल भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्तों तथा सूत्रों की व्याख्या भारतीय गणित के आधार पर करके ही बताई गई है। इससे यह जानना सम्भव हो सकेगा कि भारतीय गणित के नियमों के अनुसार प्राप्त सूत्र आज के सूत्रों से कितने स्थूल हैं अथवा कितने तुल्य हैं। इस बात को जानकर भारतीय ज्योतिष के सूत्रों को और शुद्ध किया जा सकता है। सदियों पूर्व गणित की विधाओं का विकास नहीं था; फिर भी जिस सरलता से भारतीयों ने भी ये गणनायें की हैं, वे अचम्भित करने वाली हैं। ग्रन्थ के त्रिप्रश्नाधिकार को मैंने सरल तथा समझ में आने लायक बनाने का प्रयास किया है। इसमें तीन समीकरण (क), (ख), (ग) दिये हैं तथा दो गोल के चित्र दिये हैं, जिनसे कुज्या, द्युज्या, चरज्या, हति, इष्टहति, सूत्र, इष्टसूत्र, इष्टशङ्कु, महाशङ्कु आदि को स्पष्ट रूप से गोल में देखा जा सकता है तथा उन्हें समझा जा सकता है। इनके आधार पर ही अन्य समकोण त्रिभुज तथा अक्षक्षेत्र बना कर आचार्य ने जो अनुपात किये हैं, वे भी समझ में आ सकते हैं।

सदियों से ज्ञान का आदान-प्रदान तो होता ही रहा है। भारतीय तथा पाश्चात्य ज्ञान अपने-अपने देशों की सीमाओं का अतिक्रमण कर परस्पर समन्वय करते ही रहे हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्री कमलाकर भट्ट जी का कहना कि 'भास्कराचार्य द्वारा मात्र ज्या उत्पत्ति का सूत्र ही कहना तथा उनकी उपपत्ति नहीं कहना' इस बात की ओर इशारा करता है कि ये सूत्र आचार्य के स्वयं के नहीं थे। बाहर के अन्य आचार्यों द्वारा प्राप्त सूत्रों को जान कर उन्होंने केवल उन्हें कह भर दिया है। यह बात सत्य ही प्रतीत होती है; क्योंकि जब आचार्य ने अन्य अध्यायों के सभी श्लोकों की उपपत्ति कही है तो ज्योत्पत्ति वासना में कथित सूत्रों की उपपत्ति क्यों नहीं कही? यदि आचार्योक्त सूत्र स्वयं के होते तो वे और भी सूत्र ज्ञात कर सकते थे।

विद्वानों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इस व्याख्या में जहाँ-कहीं बुद्धिभ्रम के कारण अथवा अन्य किसी कारणवश कोई त्रुटि रह गई हो तो उसे स्वयं ठीक कर लें तथा इसके बारे में (तत्तत् स्थलों की स्वकृत सही व्याख्या से) व्याख्याकार या प्रकाशक को अवगत कराने की महती अनुकम्पा कर ग्रन्थ को सर्वजनोपयोगी बनाने का कष्ट करें।

भास्कराचार्य से पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के सभी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो पाने के कारण तथा उनका पूर्ण सूक्ष्म अध्ययन मेरे द्वारा नहीं हो पाने के कारण मैं और अधिक उद्धरण यहाँ नहीं दे सका हूँ। विद्वान् आचार्य इस कमी को स्वयं पूर्ण कर सकेंगे, मुझे ऐसा विश्वास है।

मंगलाचरण आदि के कुछ श्लोकों की व्याख्या अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझ कर मैंने बहुत सूक्ष्म में ही उनकी व्याख्या की है। पुस्तक के विषयसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण श्लोकों को ही इस व्याख्या में अधिक महत्त्व दिया गया है।

पं. सत्यदेव शर्मा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषयसूची

विषयाः	पृष्ठाङ्काः

गणिताध्यायः

मध्यमाधिकारः

- मङ्गलाचरणम् 1
- पूर्वाचार्याणां प्रशंसनम् 1
- आत्मनः कर्तृत्वारम्भणीयस्य च सम्बन्धार्थवर्णनम् 2
- ग्रन्थस्यानारम्भकारणं विशिष्टमारम्भे कारणान्तरं पूर्वार्धेनाभिधायोत्तरार्धेन सुजनगणकप्रार्थना 2
- सुजनगणकान् प्रार्थयन् प्रयोजनकथनम् 3
- सिद्धान्तग्रन्थलक्षणम् 3
- सिद्धान्तप्रशंसनम् 3
- ज्योतिश्शास्त्रस्य वेदाङ्गत्वम् 5
- वेदाङ्गत्वादवश्यमध्येतव्यं तद्द्विजैरेव नान्यैः 5
- ज्योतिश्शास्त्रमूलभूतस्य संग्रहस्य भचक्रस्य चलनम् 8
- अनाद्यनन्तस्यं कालस्य प्रवृत्तिम् 10
- कलिमानानां विभागकल्पनाम् 13
- कालविभागपरिभाषया सौरादीनि तन्मानानि 18
- ब्राह्ममानम् 19
- ब्राह्ममानेऽन्यकथनम् 25
- ब्राह्ममाने कारणान्तरम् 26
- वर्तमानदिनगतवर्णनम् 26
- बार्हस्पत्यं मानुषमानञ्च 29
- मानोपसंहारः 31

भगणाध्यायः

- ग्रहाणां मन्दोच्चानां ग्रहपातानाञ्च भगणमानम् 33

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ भग्रममानम्	39
✦ सूर्याहे चान्द्राहमानम्	40
✦ कुदिनमानम्	41
✦ अधिकमास-न्यूनाहमानम्	41
✦ प्रकारान्तरेणाधिमासेन्दुदिनावमानि	41
✦ प्रकारान्तरेण चान्द्रमासदिनक्षयवर्णनम्	42
✦ प्रकारान्तरेणाधिमासज्ञानम्	43

ग्रहानयनाध्याय:

✦ अहर्गणानयनम्	45
✦ ग्रहानयनम्	47
✦ ज्ञातेऽर्केऽवमशेषाच्चन्द्रज्ञानम्	48
✦ अधिमासावमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनम्	50
✦ प्रकारान्तरेण ग्रहानयनम्	54
✦ आनयनप्रकाराणामुपपत्ति:	56
✦ पुन: प्रकारान्तरेण ग्रहानयनम्	59
✦ मध्यग्रहादहर्गणानयनम्	60
✦ अहर्गणादपि कल्पगतज्ञानम्	63
✦ कलिगतादपि अहर्गणादिकम्	64
✦ कलिमुखग्रहकथनम्	64

कक्षाध्याय:

✦ खकक्षामानम्	66
✦ स्वमतप्रतिपादनम्	67
✦ ग्रहकक्षानयनम्	68
✦ रविचन्द्रनक्षत्रकक्षामानम्	69
✦ ग्रहगतियोजनानि	70
✦ ग्रहानयनम्	71
✦ कक्षानयने विशेष:	73
✦ प्रत्यब्दशुद्धौ सावनदिनाद्यम्	74
✦ प्रकारान्तरेण सावनदिनाद्यम्	77
✦ पुन: प्रकारान्तरेण	77

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ क्षयाहाद्यम्	79
✦ प्रकारान्तरेण क्षयाहाद्यानयनम्	81
✦ प्रकारान्तरेणावमानि	81
✦ गताधिमासानां शुद्धेश्चानयनम्	82
✦ प्रकारान्तरेणाधिमासानयनम्	84
✦ दिनाद्येन विनाऽप्यब्दाधिपानयनम्	85
✦ अवमैर्विनाऽप्यवमशेषघटिकानयनम्	87
✦ रव्यब्दान्तग्रहानयनम्	88
✦ प्रकारान्तरेण चन्द्रध्रुवकम्	89
✦ कलिगतादब्दाधिपानयनम्	89
✦ अहर्गणार्थं क्षेपदिनानि	90
✦ अहर्गणानयनम्	91
✦ अहर्गणानयने विशेषः	93
✦ सूर्यानयनम्	94
✦ चन्द्रानयनम्	95
✦ भौमानयनम्	97
✦ बुधचलानयनम्	99
✦ गुरोः शुक्रचलस्य चानयनम्	101-102
✦ शनेरानयनम्	105
✦ विधूच्चानयनम्	106
✦ पातानयनम्	107
✦ प्रकारान्तरेण ग्रहानयनम्	108
✦ दिनगतिसाधनम्	109
✦ अतुल्यत्वे कारणम्	109

अधिकमासादिनिर्णयाध्यायः

✦ अहर्गणादौ विशेषः	112
✦ लबुदिनौघविषये कथनम्	113
✦ अधिकमासानयने विशेषः	114
✦ शुद्धौ विशेषः	114
✦ अधिकक्षयमासयोः लक्षणम्	115
✦ गतागतक्षयमासकालवर्णनम्	116

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ अधिकमासविषये प्रश्नः	118

भूपरिध्याद्यध्यायः

✦ भूपरिधिव्यासयोर्वर्णनम्	119
✦ भूपरिधिस्फुटीकरणं मध्यरेखास्थानकथनञ्च	122
✦ देशान्तरानयनम्	123
✦ देशान्तरघटिका	125
✦ ग्रहाणां बीजकर्मप्रतिपादनम्	128
✦ अधिकारोपसंहारः	129

स्पष्टाधिकारः

✦ आरम्भप्रयोजनम्	131
✦ अर्धज्याकरणम्	131
✦ चतुर्विंशति ज्याखण्डानि	131
✦ ज्यासाधनम्	133
✦ धनुःकरणम्	135
✦ परमक्रान्तिज्याकथनम्	136
✦ लघुखण्डकैर्ज्यासाधनम्	136
✦ भोग्यखण्डस्फुटीकरणम्	137
✦ भोग्यखण्डस्य धनुःकारणाय स्फुटीकरणम्	140
✦ केन्द्रानयनं विधाय ततो धनर्णकल्पना भुजकोटिकल्पना च	141
✦ ग्रहाणां मन्दपरिधिप्रतिपादनम्	145
✦ भौमादीनां शीघ्रपरिधिकथनम्	146
✦ भुजकोट्योः फलानयनम्	149
✦ प्रकारचतुष्टयेन कर्णानयनम्	151
✦ लघुज्यया लघुप्रकारेण सूर्येन्द्वोः फलानयनम्	156
✦ सूर्यचन्द्रयोर्गतिस्पष्टीकरणम्	157
✦ भौमादीनां शीघ्रफलानयनम्	158
✦ प्रकारान्तरेण फलानयनम्	159
✦ ग्रहस्पष्टीकरणम्	161
✦ गतिस्फुटीकरणम्	164
✦ गतेः शीघ्रफलम्	168

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ लल्लोक्तगतिफलस्य दूषणम्	169
✦ वक्रतासम्भवम्	171
✦ उदयास्तसम्भवम्	172
✦ स्फुटग्रहान्मध्यग्रहानयनम्	176
✦ पलभाज्ञानम्	177
✦ पञ्चज्यासाधनम्	177
✦ प्रकारान्तरेण चरानयनम्	180
✦ दिनरात्रिमानम्	183
✦ ग्रहाणां चरकर्म	184
✦ लङ्कोदयसाधनम्	186
✦ प्रकारान्तरेण लङ्कोदयसाधनम्	187
✦ पुनः प्रकारान्तरेण तदानयनम्	188
✦ निष्पन्नासूनां कथनम्	190
✦ नैपुण्यम्	193
✦ भुजान्तरम्	194
✦ उदयान्तरम्	195
✦ येऽस्योदयान्तरस्य वासनां न बुध्यन्ति तेषां प्रतीत्यर्थमन्यदपि	198
✦ प्रकारान्तरेणौदयिककर्म	199
✦ तिथिकरणभयोगानां साधनम्	201
✦ नतकर्म	202
✦ स्फुटग्रहस्य तात्कालिकीकरणम्	205
✦ सूक्ष्मनक्षत्रानयनम्	206
✦ ग्रहाणां राशिसङ्क्रान्तिमानं भतिथिकरणयोगानां सन्धिमानञ्च	209

त्रिप्रश्नाधिकारः

✦ त्रिप्रश्नारम्भप्रयोजनम्	211
✦ लग्नसाधनम्	211
✦ लग्नात्कालानयनम्	216
✦ विलोमलग्नज्ञानम्	219
✦ दिग्ज्ञानम्	220
✦ दिक्सम्बन्धम्	222
✦ छायातः कर्ण, कर्णाच्छायाज्ञानम्	223

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ शङ्कोर्नामानि, अक्षांशलम्बांशज्ञानम्	224
✦ अक्षक्षेत्राणि	225
✦ लम्बाक्षज्याग्रादिभेदज्ञानम्	233
✦ कोणशङ्कोरानयनम्	233
✦ दिनार्धशङ्कुज्ञानम्	244
✦ शङ्कुदृग्ज्ययोर्ज्ञानम्	245
✦ प्रकारान्तरेण तदानयनम्	246
✦ अन्त्याहृत्योरानयनम्	247
✦ अन्त्यातो हृतिं हृतेश्चान्त्याज्ञानम्	248
✦ अन्त्याहृतिभ्यां दिनार्धशङ्कुज्ञानम्	249
✦ दिनार्धदिग्ज्याज्ञानम्	250
✦ प्रकारान्तरेण तदानयनम्	251
✦ छायाकर्णज्ञानम्	252
✦ प्रकारान्तरेण दिनार्धकर्णस्यानयनम्	254
✦ प्रकारान्तरेण तदानयनम्	255
✦ परसंज्ञात्समवृत्तकर्णम्	255
✦ उन्मण्डलकर्णान्मध्यकर्णम्	256
✦ प्रकारान्तरेणोन्मण्डलकर्णात् स्वमवृत्तकर्णाच्च मध्यकर्णज्ञानम्	256
✦ छायाज्ञस्य महत्वम्	257
✦ दिग्ज्याज्ञानम्	258
✦ इच्छादिच्छायानयनम्	258
✦ उक्तछायानयने विशेष:	260
✦ प्रकारान्तरेणेच्छायादिच्छायानयनम्	262
✦ दिच्छायानयने मन्दानां शङ्काया: परिहार:	265
✦ कालनियमेन छायानयनम्	266
✦ प्रकारान्तरेण कलानयनं विधाय तस्याश्चेष्टयष्टिज्ञानम्	268
✦ प्रकारान्तरेण यष्टिज्ञानम्	269
✦ इष्टान्त्यकाहृत्योरानयनम्	269
✦ इष्टशङ्कोरानयनम्	270
✦ नतकालाच्छङ्कोरानयनम्	270
✦ इष्टशङ्कोरानयनम्	271

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ इष्टान्त्यकाहतिभ्यां शङ्कुज्ञानम्	273
✦ प्रकारान्तरेणेष्टछायाकर्णानयनम्	274
✦ कर्णानयने विशेषकथनम्	274
✦ छायात: कालज्ञानम्	278
✦ प्रकारान्तरेणोन्नतकालज्ञानम्	281
✦ छायातोऽर्कानयनम्	282
✦ क्रान्तिज्ञाने सति पलभाज्ञानम्	284
✦ छायातो भुजज्ञानम्	285
✦ छायाकर्णे भुजेऽर्के च ज्ञाते वार्काज्ञाने भुजद्वये कर्णद्वये च ज्ञाते य: पलभां वेत्ति तस्योत्कर्षम्	289
✦ प्रश्नद्वयम्	290
✦ प्रथमस्योत्तरम्	290
✦ द्वितीयस्योत्तरम्	291
✦ सममण्डलप्रश्न:	294
✦ अस्योत्तरम्	294
✦ अन्यौ प्रश्नौ	295
✦ प्रथमस्योत्तरम्	296
✦ द्वितीयस्योत्तरम्	297
✦ अन्य: प्रश्न:	300
✦ अस्योत्तरम्	300
✦ इष्टप्रभाप्रश्न:	302
✦ अस्योत्तरम्	302
✦ विविधप्रश्ना: सोत्तरा:	303
✦ नलकयन्त्रेण ग्रहविलोकनप्रकार:	316
✦ उपसंहार:	320

पर्वसम्भवाधिकार:

✦ पर्वसम्भवज्ञानम्	322
✦ सूर्यग्रहार्थं विशेष:	324

चन्द्रग्रहणाधिकार:

✦ आरम्भप्रयोजनम्	327

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ ग्रहणोपयोगिनी इतिकर्तव्यताज्ञानम्	327
✦ सूर्यचन्द्रयोः कक्षाव्यासार्धानयनम्	328
✦ योजनात्मककर्णस्य स्फुटीकरणार्थं कलाकर्णज्ञानम्	329
✦ योजनात्मककर्णस्य स्फुटीकरणम्	330
✦ रविचन्द्रबिम्बयोजनानि तथा भूभाविस्तृतिः	330
✦ योजनानां कलाकरणम्	333
✦ प्रकारान्तरेण बिम्बकलानयनम्	333
✦ राहोः प्रकारान्तरेण कलाबिम्बम्	336
✦ चन्द्रविक्षेपानयनम्	337
✦ ग्रहणे ग्रासप्रमाणम्	339
✦ स्थितिमर्दार्धयोरानयनम्	341
✦ तयोः स्पष्टीकरणम्	347
✦ इष्टकाले भुजानयनम्	349
✦ इष्टकाले ग्रासप्रमाणम्	349
✦ ग्रासात् तत्कालज्ञानम्	351
✦ स्पर्शादिव्यवस्थितिः	353
✦ वलनानयनम्	354
✦ आयनवलनानयनम्	356
✦ स्पष्टवलनानयनम्	357
✦ अङ्गुललिप्तानयनम्	358
✦ वलनादीनामङ्गुलीकरणम्	360
✦ परिलेखः	361
✦ निमीलनोन्मीलनेष्टग्रासपरिलेखः	363
✦ सम्मीलनादिपरिलेखः	365
✦ इष्टग्रासानयनम्	367
✦ परिलेखेन ग्रासात् कालानयनम्	368
✦ ग्रहणे वर्णज्ञानम्	370
✦ आदेश्यानादेश्यकथनम्	371
✦ उत्क्रमज्यया वलनानयने दोषकथनम्	372

सूर्यग्रहणाधिकारः

✦ आरम्भप्रयोजनम् 374

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ लम्बनस्य भावाभावं धनर्णत्वं च कथयितुमितिकर्तव्यताया: प्रतिपादनम्	374
✦ लम्बनानयनम्	378
✦ प्रकारान्तरेण लम्बनस्फुटीकरणम्	380
✦ लम्बनप्रयोजनम्	385
✦ सकृत्प्रकारेण लम्बनज्ञानम्	387
✦ नत्यर्थमर्केन्द्वोर्दृक्क्षेपौ	391
✦ दृक्क्षेपान्नतिसाधनम्	392
✦ स्फुटनतेरानयनम्	395
✦ सुखार्थं स्थूले लम्बनावनती	396
✦ नते: प्रयोजनम्	397
✦ स्पर्शमोक्षकालज्ञानम्	399
✦ तत्र विशेष:	401

ग्रहच्छायाधिकार:

✦ ग्रहमध्यमविक्षेपा:	406
✦ ग्रहविक्षेपानयनम्	407
✦ विक्षेपस्य क्रान्तिसंस्कारयोग्यतालक्षणमन्यत् स्फुटीकरणम्	408
✦ आयनदृक्कर्मसाधनम्	410
✦ आक्षजदृक्कर्मसाधनम्	412
✦ उदयास्तलग्नयो: स्वरूपं प्रयोजनञ्च	417
✦ ग्रहस्य दृश्यत्वलक्षणम्	417
✦ ग्रहस्य छायार्थं द्युगतम्	418
✦ क्रान्ते: स्फुटत्वं कृत्वा छाया साधनातिदेशम्	419
✦ अत्रापि विशेष:	420
✦ तेषां दूषणस्य निराकरणम्	422

ग्रहोदयास्ताधिकार:

✦ नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षणम्	423
✦ तदन्तरघटिकाज्ञानम्	424
✦ अर्कासन्नभावेन उदयास्तौ	424
✦ बुधशुक्रयोर्विशेष:	426

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ ग्रहाणां कालांशा:	426
✦ इष्टकालांशानयनम्	429
✦ तैरुदयास्तयोर्गतैष्यता प्रतिपादनम्	429
✦ अत्र विशेष:	432

शृङ्गोन्नत्यधिकार:

✦ चन्द्रशङ्क्वर्थकथनम्	433
✦ अर्कशंक्वर्थशङ्कुतलार्थकथनम्	435
✦ भुजज्ञानम्	436
✦ कोटिज्ञानम्	437
✦ दिग्वलनसाधनम्	439
✦ चन्द्रस्य परिलेखसूत्रानयनयोग्यतां कर्तुं संस्कारविशेष:	439
✦ परिलेखसूत्रम्	443
✦ परिलेख:	445
✦ ब्रह्मगुप्तकथने दूषणम्	448

ग्रहयुत्यधिकार:

✦ ग्रहाणां मध्यमबिम्बानि	450
✦ आसां स्फुटीकरणम्	451
✦ युतिकालज्ञानम्	453
✦ स्थूलकालमानीय सूक्ष्मकथनम्	455
✦ दक्षिणोत्तरान्तरज्ञानम्	457
✦ भेदयोगलम्बनज्ञानम्	458

भग्रहयुत्यधिकार:

✦ भध्रुवका:	461
✦ भानां शरांशा:	462
✦ अगत्स्यलुब्धकयो: ध्रुवका:	464
✦ इष्टघटिकानयनम्	466
✦ भग्रहयुतौ पूर्वकर्तव्यता	467
✦ युतिकालज्ञानम्	467
✦ युतिप्रसङ्गेन भानामुदयास्तज्ञानम्	468
✦ अत्र विशेष:	470

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ कालान्तरवशेन विशेषः	472

पाताधिकारः

✦ आरम्भप्रयोजनम्	474
✦ सूर्यस्य गोलायनसन्धिप्रतिपादनम्	474
✦ चन्द्रस्य विशेषः	475
✦ साधारण्येन क्रान्तिसाम्यसम्भवज्ञानम्	480
✦ व्यतिपातवैधृतयोर्लक्षणम्	481
✦ क्रान्तिसाम्यस्य गतैष्यत्वप्रतिपादनम्	483
✦ तस्मात् कालाद्गतगम्यस्य क्रान्तिसाम्यकालस्य परिज्ञानम्	485
✦ पाताद्यन्तकालपरिज्ञानम्	489
✦ स्थित्यर्धोपपत्तिः	491
✦ अत्र विशेषः	492
✦ पातप्रयोजनम्	493

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोलाध्यायः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ गोलप्रशंसा

गोलाध्याये निजे या या अपूर्वा विषमोक्तयः।
तास्ता बालाव बोधाय संक्षेपाद्विवृणोम्यहम्॥

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य गोलाध्याय आरंभ करने के पहले इसको लिखने का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि उन्होंने पूर्व में अर्थात् सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय में जो बातें बताई हैं उनमें जो विशेष कठिन बातें हैं जिनका और स्पष्टीकरण करना आवश्यक है वे बातें यहाँ उनके लिए बतायेंगे जिनकी बुद्धि ज्योतिष शास्त्र में परिपक्व नहीं है अर्थात् जो ज्योतिष शास्त्र को सीख रहे हैं।

तत्रादौ तावदभीष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं गोलं ब्रवीमीत्याह—

सिद्धिं साध्यमुपैति यत्स्मरणतः क्षिप्रं प्रसादात् तथा
यस्याश्चित्रपदा स्वलङ्कृतिरलं लालित्यलीलावती।
नृत्यन्ती मुखरङ्गेव कृतिनां स्याद्भारती भारती
तं तां च प्रणिपत्य गोलममलं बालावबोधं ब्रुवे॥१॥

गोलाध्याय आरंभ करने से पूर्व इष्टदेवता को नमस्कार कर रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिनको स्मरण करने मात्र से तथा जिन वाणी की देवी भगवती सरस्वति के प्रसाद से, जो माधुर्यगुण सम्पन्न हैं, गद्यपद्यमयी हैं, चतुरजनों के मन के चमत्कारों को वाणी रूप में प्रकट करने वाली हैं, जो विद्वानों के मुख में (वाणी में) सदा नृत्य करती हैं, ज्ञानी लोगों के अभीष्ट को सिद्ध करती हैं, उन सरस्वति तथा गणेश के चरणों में सिर झुकाकर नमस्कार करके ज्योतिष शास्त्र में जिनकी बुद्धि बाल रूप में है उनके लिए सरल रूप में (समझने) बोधगम्य इस गोलाध्याय को आचार्य अब कहते हैं।

विशेष— यहाँ आचार्य ने विद्या अर्थात ज्ञान की देवी सरस्वती को उनके पैरों में गिरकर साष्टांग प्रणाम किया है तथा विद्या की प्राप्ति में सभी विघ्नबाधाओं का नाश करने के लिए विघ्न विनायक तथा सिद्धिदायक गणेश को भी इसी प्रकार प्रणाम किया है। आचार्य ने यहाँ सरस्वती का विद्वानों के मुख में अर्थात् वाणी में ही वास बताकर, पौराणिक बात कही है। विद्वान की

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पहचान उसकी वाणी से ही होती है। सरस्वती क्योंकि नर्तक भी है अतः वह जहाँ निवास करती है वहीं नृत्य करती रहती है अर्थात् विद्वानों के मुख में तथा उस विद्या की सिद्धि प्रदान करते हैं।

लल्लाचार्य ने शिष्यीधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय-१४ में इसी प्रकार परमेश्वर तथा सरस्वति की प्रार्थना की है। यथा—

''जगदिदमखिलं समस्तसिद्धं द्रुतमधिगच्छति यत्प्रसादतस्तम्।
वदनसरसिजे मनीषिणां या वसति च तां प्रणिपत्य वच्मि गोलम्॥१॥''

अथ गोलग्रथनकारणमाह—

मध्याद्यं द्युसदां यदत्र गणितं तस्योपपत्तिं विना
प्रौढ़िं प्रौढसभासु नैति गणको निःसंशयो न स्वयम्।
गोले सा विमला करामलकवत् प्रत्यक्षतो दृश्यते
तस्मादस्युपपत्तिबोधविधये गोलप्रबन्धोद्यतः॥२॥

इस गोल रचना का कारण कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— सदा भ्रमणशील ग्रहों के मध्य, स्पष्ट आदि की गणित की जो यहाँ विधियाँ कही गई हैं उनकी उपपत्ति को जाने बिना ज्ञानि लोग (प्रौढ़) ज्ञानियों की सभा में निःसंशय पूर्वक दृढ़ता से तथ्यों पर आधारित अपनी बात दक्षता पूर्वक नहीं कह सकते। आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार हथेली में आंवले का फल रखकर ही कोई व्यक्ति निश्चय तथा दृढ़ता पूर्वक कह सकता है कि मेरे हाथ में आँवले का फल है, उसी प्रकार गणित क्रिया की उपपत्ति गोल के ज्ञान से ही स्पष्ट रूप से समझ में आ सकती है। अतः आचार्य गोल के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथ का निर्माण करने के लिए उद्यतः होते हैं।

विशेष— प्रायः ज्योतिष के सभी सिद्धान्त ग्रंथ गणितखण्ड तथा गोल खण्ड में विभक्त हैं। गणितखण्ड में ग्रहसाधन, ग्रहण, युति आदि की गणितीय विधियों का वर्णन होता है, जबकि गोलखण्ड में उनकी उपपत्ति अथवा वासना का वर्णन होता है। अतः आचार्य यहाँ अब पूर्व कथित विधि खण्ड के पश्चात् उन विधियों के उपपत्ति खण्ड की रचना कर रहे हैं। क्योंकि कोई भी ज्योतिर्गणित का ग्रंथ गोल विवेचन के बिना पूर्ण नहीं हो सकता, गोल में ही ज्योतिर्गणित की गणना संभव है। अतः ग्रहग्रणित में दक्षता के लिए गणकों को गोल के विषय में भी प्रवीण होना आवश्यक है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ग्रहनक्षत्र भ्रमणं न समं सर्वत्र भवति भूस्थानाम्।
तद्विज्ञानं गोलाद्यतस्ततो गोलमभिधास्ये॥१॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उडुग्रहाणां भ्रमणं न तुल्यं सर्वत्र भूगोलनिवासिनां हि।
तत्तत्त्वबोधावगतिस्तु गोलादतः स्फुटं गोलमिहाभिधास्ये॥
मध्यमानयनपूर्वकं हियत् किञ्चिदत्र गणिते प्रकीर्तितम्।
गोल एव सकलं विलोक्यते हन्त तत् करतलामलोपमम्॥ अ.१५ श्लो.५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चौदहवें अध्याय में आचार्योक्त बात ही कही है। यथा–

"न किमपि गोलविवर्जितं च तन्त्रम्॥२॥
सङ्ख्यायनशास्त्रविद एव वदन्ति गोलं
गोलागमे पटुधियो ग्रहचेष्टितज्ञाः॥३$\frac{1}{2}$॥"

इदानीं गोलप्रशंसया गोलानभिज्ञगणकोपहासं श्लोकद्वयेनाह—

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथा च॥३॥
वादी व्याकरणं विनैव विदुषां धृष्टः प्रविष्टः सभां
जल्पन्नल्पमतिः स्मयात् पटुबटुभ्रूभङ्गवक्रोक्तिभिः।
ह्रीणः सन्नुपहासमेति गणको गोलानभिज्ञस्तथा
ज्योतिर्वित्सदसि प्रगल्भगणकप्रश्नप्रपञ्चोक्तिभिः॥४॥

गोल प्रशंसा तथा गोल अनभिज्ञ गणक का उपहास—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार सभी छः रसों से युक्त भोजन की घी के बिना, बिना राजा के जिस प्रकार राज्य की, अच्छे वक्ताओं के बिना सभा की जो स्थिति होती है उसी प्रकार गोल के ज्ञान से अनभिज्ञ गणक की भी स्थिति होती है।

विदुषियों की सभा में व्याकरण के ज्ञान के बिना कोई (विद्वान) बुद्धिमान व्यक्ति निर्लज्जता से प्रवेश करके घमंड पूर्वक व्यर्थ का प्रलाप करता है तब बुद्धिमान व व्याकरणादिशास्त्र कुशल बालकों द्वारा कही शुद्ध प्रमेयों को न समझ पाने के कारण वे उसका भोहों की विभिन्न मुद्राओं के साथ उसको मूर्ख जान

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कर उसका उपहास करते हैं जिससे उसको लज्जित होना पड़ता है। उसी प्रकार गोल के ज्ञान से अनभिज्ञ गणक भी ज्योतिषज्ञान में प्रगल्य विद्वान ज्योतिषियों के अनेक कठिन प्रश्नों का सही प्रकार से उत्तर नहीं दे पाने के कारण विद्वान ज्योतिर्विदों की सभा में उपहास तथा लज्जा का पात्र बनता है।

विशेष— यहाँ आचार्य ने गोल प्रशंसा के साथ गोल से अनभिज्ञ ज्योतिर्विद की लज्जाजनक स्थिति का होना बताया है। अन्य आचार्यों ने भी कुछ इसी प्रकार गोल ज्ञान की प्रशंसा करते हुए उसकी प्रशंसा की है। यथा–

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १५ में इसी प्रकार कहा है—

"यद्वदिन्दुरहिता न शर्वरी माति शीलरहिता न चाङ्गना।
ब्राह्मणश्च न चरित्रवर्जितस्तद्वदेव गणको ह्यगोलवित्॥२॥
अविदितपदलक्ष्यो बावदूकोऽपि यातश्चतुरबुधसभायां यद्वदायाति हास्याम्।
ग्रहगणितविदेवं गोलतत्त्वानभिज्ञो गणकसदसि विद्वच्चक्रवक्रोक्तिदीनः॥३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है–

"शशधरकिरणैर्विना प्रदोषः कुचरहितं ललनाजनस्य वक्षः।
मधुरस विवर्जितं च भोज्यं न किमपि गोलविवर्जितं च तन्त्रम्॥२॥
वादी यथाऽव्याकरणो न भाति श्रुतिस्मृतिभ्यां रहितश्च यज्वा।
भिषग् यथा सम्यगदृष्टकर्मा सांवत्सरस्तद्वदगोलवेदौ॥३॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय २२ यन्त्राध्याय में आचार्योक्त गोल की प्रशंसा की है। यथा–

"मध्याद्यमिह यदुक्तं तत् प्रत्यक्षमिव दर्शयति यस्मात्।
तस्मादाचार्यत्वं गोलविदो भवति नान्यस्य॥१॥"

अथ गोलस्वरूपमाह—

दृष्टान्त एवावनिभग्रहाणां संस्थानमानप्रतिपादनार्थम्।
गोलः स्मृतः क्षेत्रविशेष एष प्राज्ञैरतः स्याद्गणितेन गम्यः॥५॥

गोल का स्वरूप—

सूर्य-प्रभा टीका— पृथ्वी, नक्षत्र तथा ग्रहादि की स्थिति तथा उनके मान के प्रत्यक्ष प्रमाण के प्रतिपादन के लिए उनका निरूपण गोल रूप क्षेत्र विशेष में किया जा सकता है तथा इस गोल को गणित के द्वारा (रेखागणित आदि) बुद्धिमान लोग जान सकते हैं अर्थात् गोल गणित क्षेत्र की परिधि में है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— जो गणित जानते हैं वे गोल को भी जानते हैं क्योंकि गोल गणित का ही क्षेत्र है। जो गोल को जानते हैं वे ग्रह गति को भी जानते हैं क्योंकि वे गणित को जानते हैं। लेकिन जो गोल और गणित दोनों को नहीं जानते वे ग्रहगति को किसी भी प्रकार नहीं जान सकते। ये बात भास्करोक्त श्लोक से स्फुट होती है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के यन्त्राध्याय में यही बात कही है। यथा—

"गणितज्ञो गोलज्ञो गोलज्ञो ग्रहगतिं विजानाति।
यो गणितगोलबाह्यो जानाति ग्रहगतिं स कथम्॥३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धि ग्रंथ के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"यो वेत्ति सम्यगमुमर्कपुरः सराणां नानाप्रकारवरचारुविचारचारुम्।
प्रत्यक्षवत सकलमेव स वेत्ति विश्वं धर्मार्थमोक्षयशसामपि भाजनं स्यात्॥५॥
यन्मध्यादिकमुक्तं तत् प्रत्यक्षं च दृश्यते गोले।
छेद्यक विधौ ग्रहाणां विशेषतस्तद्विदाचार्यः॥६॥"

श्रीपति ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के गोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ग्रहनक्षत्रधरित्री संस्थानस्येह दर्शनोपायः।
गोल इति कथ्यतेऽसौ क्षेत्रविशेषो गणितगम्यः॥६॥"

इदानीं गणितप्रशंसामाह—

ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत् स्पष्टखेटाश्रयम्।
ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति॥६॥

गणित की प्रशंसा—

सूर्य-प्रभा टीका— वराहमिहिर आदि प्राचीन आचार्यों ने ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों, संहिता-जातक-गणित का प्रयोजन भूत भविष्य तथा वर्तमान का शुभाशुभ निरूपण के लिए फल का आदेश करना कहा है। होरास्कन्ध रूप ज्योतिष शास्त्र का फलादेश निश्चित रूप से लग्न बल के ऊपर आश्रित होता है तथा पुनः वह शुद्ध ग्रह स्पष्ट पर आश्रित होता है और ग्रह

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्पष्ट गोल में निरूपित ग्रहादि की गणना की उपपत्ति द्वारा सिद्धि पर आधारित होते हैं। ग्रहण, शृङ्गोन्नत्यादि गणित स्कन्ध के द्वारा साक्षात होती है और वह स्पष्ट ग्रहों के अधीन होती है। ग्रह गणित ज्ञान बिना, गोल ज्ञान नहीं हो सकता। अतः जो पहले गणित ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे वे गोल का ज्ञान किस प्रकार करेंगे। अतः आचार्य ने गोलाध्याय की रचना के पूर्व गणिताध्याय की रचना इस 'सिद्धान्त शिरोमणि; ग्रंथ में की है, जो उपरोक्त अनुसार युक्तियुक्त है।

इदानीं ज्योतिश्शास्त्रश्रवणाधिकारिलक्षणमाह—

द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तं तदवगमननिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः।
यदि भवति तदेदं ज्योतिषं भूरिभेदं प्रपठितुमधिकारी सोऽन्यथा नामधारी॥७॥

ज्योतिश्शास्त्र को श्रवण करने के अधिकारी के लक्षण बता रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— गणित दो प्रकार की कही गई है एक व्यक्त तथा दूसरी अव्यक्त। व्यक्त गणित पाटीगणित अर्थात् अंक गणित है तथा अव्यक्त गणित बीज गणित है। आचार्य ने इन दोनों ही गणित का उपयोग इस ग्रंथ में किया है। इन दोनों ही गणित का ज्ञान जिसने पूर्ण निष्ठा से प्राप्त किया है अर्थात् जिसको इन दोनों ही गणित का बहुत अच्छा ज्ञान है तथा जो शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण शासत्र का भी अच्छा ज्ञान रखता है वह अनेक रहस्यों व भेदों से युक्त गोलयन्त्र के तत्व के ज्ञान को पूर्ण रूप से पढ़ने (जानने) का अधिकारी है। जो इन योग्यताओं (गणित तथा व्याकरण का ज्ञान) से रहित होता है वह व्यक्ति इनको पढ़ने का अधिकारी नहीं है वह नाममात्र का ही ज्योतिषि है।

अथ व्याकरणवर्णनमाह—

यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्ब्राह्म्याः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान् शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी॥८॥

व्याकरण ज्ञान के महत्व का वर्णन—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने गणिताध्याय में मध्यमाधिकार के कालामानाध्याय के श्लोक १० में व्याकरण (शब्दशास्त्र) को वेदों का मुख बताया है। तदनुसार आचार्य यहाँ कहते हैं कि जिस व्याकरण के ज्ञान के द्वारा कठिन वेदों को ठीक प्रकार से जाना, पढ़ा जा सकता है उस शब्द शास्त्र-व्याकरण का जिसे वेदों का मुख कहा गया है तथा जो वेदों की अधिष्ठात्रि देवी सरस्वति का निवास स्थान है, सर्वप्रथम अच्छी प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लेने से सभी अन्य शास्त्रों का ज्ञान सरलता से हो जाता है। अतः व्याकरण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के अतिरिक्त सर्वप्रथम किसी अन्य शास्त्र का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि व्याकरण के ज्ञान से सर्वशास्त्रों के शास्त्र वेदों का अध्ययन सरलता से हो जाता है।

इस प्रकार सर्वप्रथम व्याकरण शास्त्र का सम्यग् प्रकार से ज्ञान करके ही कोई अन्य शास्त्रों के अध्ययन का अधिकारी होता है। यहाँ आचार्य ने जो व्याकरण के ज्ञान के लिए संकेत किया है उसके महत्वता को यहाँ विस्तृत रूप में प्रतिपादित किया है।

अथात्मनो गोलग्रन्थस्य प्रवृत्त्यर्थमन्योक्तिप्रकारेणाह—

गोलं श्रोतुं यदि तव मतिर्भास्करीयं शृणु त्वं
नो संक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तरः शास्त्रतत्त्वम्।
लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्यः स यस्माद्-
विद्वन् विद्वत्सदसि पठतां पण्डितोक्तिं व्यनक्ति॥९॥

आचार्य अपने इस गोलाध्याय को पढ़ने के लिए प्रवृत्त करने के लिए इसकी विशिष्टता अन्योक्ति प्रकार से बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि चतुर विद्वान यदि आपकी गोल को पढ़ने, जानने की मन में इच्छा है तो आप मेरे द्वारा रचित इस गोलाध्याय को पढ़िये। यह बहुत संक्षिप्त भी नहीं है तथा न ही बहुत विस्तार से कहा गया है। इसमें शास्त्र का तत्त्व कहा गया है। इसमें सभी आवश्यक बातें कही गई हैं तथा वृथा इसको बहुत विस्तार से नहीं कहा गया है। यह कठिन न होकर लीलागम्य है अर्थात् इसमें उपदेश नहीं दिये गये हैं इसको प्रश्नों के आधार पर रुचिकर व मनोरंजक बनाया है जिससे यह सरलता से समझ में आ सकता है। अतः जो विद्वान् इस गोलाध्याय का अध्ययन करता है उसका पण्डितों के बीच पाण्डित्य प्रकाशित होता है। क्योंकि वह इस का अध्ययन करने के पश्चात् पण्डितों (विद्वानों) की भांति इसके बारे में बोलता है।

भास्कराचार्य की भांति ही आर्यभट द्वितीय ने महासिद्धान्त में गोलाध्याय की रचना प्रश्नों के आधार पर ही की है। उसी का अनुसरण आचार्य भास्कर ने किया है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलप्रशंसा अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ गोलस्वरूपप्रश्नाध्यायः

अथ भूसंस्थानप्रश्नं श्लोकद्वयेनाह—

भ्रमद्भचक्रचक्रान्तर्गगने गगनेचरैः।
वृता धृता धरा केन येन नेयमियादधः॥१॥
किमाकारा कियन्माना नानाशास्त्रविचारणात्।
कीदृग्द्वीपकुलाद्रीन्द्रसमुद्रैर्मुद्रितोच्यताम्॥२॥

पृथ्वी की स्थिति से संबंधित प्रश्नों के दो श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि आकाश चक्र में ग्रह नक्षत्रों के चक्र में भ्रमणशील गगनचर ग्रहों से ढकी हुई अर्थात् इनके मध्य में इस पृथ्वी का आधार क्या है? किस कारण से यह न नीचे गिरती है न इधर-उधर जाती है? इसका आकार क्या है? इसका मान (प्रमाण) क्या है?

इसकी परिधि कितनी है? द्विप, पर्वत, अन्य श्रेष्ठ पर्वत, समुद्र आदि से मुद्रित अर्थात् इनसे व्याप्त पृथ्वी कैसी दिखती है? इन सब प्रश्नों का उत्तर (निर्णय) विभिन्न शास्त्रों द्वारा विचार करके दीजिये।

इदानीं ग्रहस्फुटीकरणोपपत्तिप्रश्नान् श्लोकद्वयेनाह—

संसिद्धाद्द्युगणाद्युगादिभगणैः खेटोऽनुपातेन यः
स्यात् तस्यास्फुटता कथं कथमथ स्पष्टीकृतिर्नैकधा।
किं देशान्तरमुद्गमान्तरमहो बाह्वन्तरं किं चरं
किं चोच्चं मृदु चञ्चलं च तदिदं कस्तात पातः स्मृतः॥३॥
किं केन्द्रं किमु केन्द्रजं किमु चलं किं वाचलं तत्फलं
कस्मात् तत्सहितः कुतश्च रहितः खेटः स्फुटो जायते।
किं दृक्कर्म तथोदयास्तसमये द्वेधा विदध्युर्बुधाः
सर्वं मे विमलं वदामलमलं गोलं विजानासि चेत्॥४॥

ग्रह स्फुटीकरण के लिए उपपत्ति रूप प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को सिद्ध करके ग्रहों के कथित कल्प भगणों से अनुपात करने से प्राप्त मध्यम ग्रहों को स्फुट करने के लिए किस प्रकार अनेक प्रकार की गणित की जाती है, वह यहाँ बताओ? उस गणित क्रिया में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देशान्तर क्या है? उदयान्तर क्या है? भुजान्तर क्या है? चर क्या है? तथा मन्दोच्च और शीघ्रोच्च क्या है? उनके पात का स्वरूप क्या है? केन्द्र क्या है? केन्द्र से उत्पन्न भुज कोटिज्या क्या है? शीघ्र केन्द्र क्या है? मन्दफल-शीघ्रफल क्या है? इन सब का कब ऋण तथा कब धन करते हैं, जिससे ग्रह स्फुट होते हैं? उदयास्त लग्न साधन में दो प्रकार के दृक्कर्म कौन से हैं? यदि तुम पूर्वार्ध भाग में प्रतिपादित इन सब को ठीक प्रकार से (स्पष्ट रूप में) जानते हो तो इन सबको गोल में निर्दोष रूप से अर्थात बिना भ्रमित हुए तथा बिना त्रुटियों के कहो।

अथ त्रिप्रश्ने दिनमानभेदप्रश्नं श्लोकद्वयेनाह—

महदहः किमहो रजनी तदुर्दिनमणौ गणकोत्तरगोलगे।
ननु तनुर्दिवसो महती निशा वद विचक्षण दक्षिणदिग्गते॥५॥
भवति किं द्युनिशं द्युनिवासिनां द्युमणिवर्षमितं च सुरद्विषाम्।
पितृषु किं शशिमासमितं तथा युगसहस्रयुगं द्रुहिणस्य किम्॥६॥

दिनमान में अन्तर संबंधि तीन प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणितज्ञ! सूर्य के उत्तरगोल में रहने पर दिन बड़े तथा रातें छोटी क्यों होती हैं? और सूर्य के दक्षिण गोल में रहने पर दिन छोटे तथा रातें बड़ी क्यों होती हैं? इनके पदार्थ स्वरूप कारणों को हे बुद्धिमान परुष कहो।

देवताओं तथा दैत्यों का एक सौरवर्ष तुल्य एक दिनरात क्यों होता है? पितरों का एक चान्द्रमास तुल्य तथा ब्रह्मा का एक-एक सहस्र महायुग तुल्य एक दिन तथा रात्रि क्यों होती है?

अथ राश्युदयभेदप्रश्नमाह—

भवलयस्य किलार्कलवाः समाः किमसमैः समयैः खलु राशयः।
समुपयान्त्युदयं किमु गोलविन्न विषयेष्वखिलेष्वपि ते समाः॥७॥

राश्युदय मान में अंतर संबंधि प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— नक्षत्रवलय (चक्र) के बारह भाग समान मान के होते हैं। भचक्र साठ घटी में बारह राशि भ्रमण करता है तो एक राशि परिवर्तन अर्थात् उदयकाल, उसका बारहवाँ भाग अर्थात् पांच घटी नहीं होता। इस प्रकार भचक्र प्रदेश में प्रत्येक राशि समान मान की होते हुए भी सभी प्रदेशों में पृथ्वी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पर उनके उदयमान समान क्यों नहीं होते? हे गोल तत्व को जानने वाले ज्ञाता बताओ इसका कारण क्या है?

इदानीं द्युज्याकुज्यादि संस्थान प्रश्नं वृत्तार्धेनाह—

द्युज्याकुज्यापमसमनराग्राक्षलम्बादिकानां
विद्वन् गोले वियति हि यथा दर्शय क्षेत्रसंस्थाम्।

द्युज्या, कुज्यादि की गोल में स्थिति संबंधि प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे विद्वान्! खगोल में द्युज्या, कुज्या, क्रांतिज्या, समसङकु, अग्रा, अक्ष व लंब ज्या आदि जहाँ स्थित होती है उसके क्षेत्र की स्थिति को उस ही स्थान पर दर्शाओ।

इदानीं चन्द्रार्कग्रहणयोर्दिक्कालभेदाद्युपपत्तिप्रश्नान् सार्धश्लोकेनाह—

तिथ्यन्ते चेद्ग्रह उडुपतेः किं न भानोस्तदानी-
मिन्दोः प्राच्यां भवति तरणेः प्रग्रहः किं प्रतीच्याम्॥८॥
लम्बनं बत किं का च नतिर्मंतिमतां वर।
तत्संस्कृतिस्तिथौ बाणे किं ते सिद्धे कुतः कुतः॥९॥

चंद्र तथा सूर्य ग्रहण में दिशा तथा काल में अंतर की उपपत्ति संबंधि प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रग्रहण में भूभा ग्रहण कर्त्री होती है। पौर्णमास्यन्त में भूभा चंद्रमा के तुल्य होती है जब उनकी युति होती है। इसी प्रकार सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा छादक होता है। दर्शान्त में इनके तुल्य होने पर इनका योग होता है। अतः आचार्य ने श्लोक में 'तिथ्यन्ते चेद्ग्रह उडुपते....' आदि कहा है। चंद्र ग्रहण में तिथ्यन्त में मध्यग्रहण होता है तो सूर्य का मध्य ग्रहण क्यों नहीं कहा गया? चन्द्रग्रहण पूर्व की ओर से होता है तो सूर्य ग्रहण पश्चिम की ओर से क्यों होता है? हे श्रेष्ठबुद्धि विद्वान! बताओ लंबन क्या होता है और नति क्या होती है? यहाँ जब ग्रहण मध्य में भेद कहा है तो फिर लंबन के लिए कहने का क्या कारण है? चन्द्रग्रहण में लंबन क्यों नहीं होता और उसमें लंबन युक्त नहीं करते। सूर्य ग्रहण में वह आवश्यक होता है यह प्रतिपादित किया जा चुका है। अतः आचार्य के स्वउक्ति में असंगति को संगत बनाने के लिए उन्होंने यहाँ 'वत' शब्द के द्वारा खेद व्यक्त किया है। यहाँ नति के स्वरूप के लिए कहा गया है। तिथि अर्थात अमान्त और शर में लंबन तथा नति का संस्कार कब करते हैं? तिथि में लंबन का संस्कार करते हैं और नति में बाण (शर) का, क्यों? लंबन और नति का साधन कहाँ-कहाँ से करते हैं?

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लंबन और नति का साधन किस कारण से और पृथ्वी में कहाँ से साधित करते हैं?

अथ शृङ्गोन्नतौ चन्द्रशुक्लस्य क्षयवृद्धिप्रश्नमाह—

शुक्लस्य द्विजराज एष महसो हान्या कुवृत्तः कुतः
सद्वृत्तत्वगतोऽप्यहो भ्रमभवाद्दोषातिसङ्गादिव।
संप्राप्याथ पुनस्त्रयीतनुमतस्तस्याश्रयेणैव किं
शुक्लस्य क्रमशस्तथैव महसो वृद्ध्यैति सद्वृत्तताम्॥१०॥

शृंगोन्नति में चन्द्रमा के शुक्ल भाग के क्षय वृद्धि संबंधि प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणक! यह द्विजराज चन्द्रमा गोलाकार होकर पौर्णमासी को पूर्णवृत्ताकार होकर किस कारण से कुत्सित वृत्त मंडल होता है? यहाँ 'अपि' शब्द भ्रमसूचक है। यह भ्रम, दोष के अतिसंग से है, और वह दोष रात्रि है। पौर्णमासी को पूर्ण चन्द्रमा इस दोष के अतिसंग में रहते हुए भी पूर्ण रहता है और इस अतिसंग के अनन्तर इसके शुक्ल भाग के तेज की हानि होती जाती है तथा इस प्रकार हानि होते हुए वह कुत्सित वृत्त वाला हो जाता है?

जिस प्रकार सद्वृत्त-सदाचारी ब्राह्मण द्विज के चंचल चित्त में भ्रम उत्पन्न होने से उनसे उत्पन्न दोषों के कारण पापों से अतिसंग होने पर उसके उज्जवल शुद्ध तेज की हानि होती है, उसी प्रकार चंद्रमा कुत्सित वृत्त हो जाता है। फिर पुनः सूर्य से थोड़ा-थोड़ा प्रकाश पाकर इसके अनन्तर उसके शुक्ल-तेज की वृद्धि होती है। यहाँ 'त्रयी' शब्द का अर्थ तीनों वेदों में वर्णित धर्म तथा सूर्य होता है। अतः यहाँ तेजहीन ब्राह्मण के तेज की वृद्धि भी पुनः (वेद) त्रयी ब्राह्मण के अनुग्रह से इसी प्रकार होती है। इस प्रकार चंद्रमा वृद्धि तथा क्षीणता को प्राप्त होता रहता है। आचार्य का प्रश्न यह है कि सूर्य से प्राप्त प्रकाश से किस प्रकार चन्द्रमा के शुक्लभाग की वृद्धि तथा ह्रास होता है?

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के गोलस्वरूपप्रश्नाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ भुवनकोशः

अथ प्रथमप्रश्नस्य पृथ्वीसंस्थानोपपत्तेरुत्तरं विवक्षुरादिसर्गे पृथिव्यादीनां तत्त्वानामादितत्त्वं निखिलजगज्जननैकबीजं परं ब्रह्म मनसा प्रणिपत्यादौ तावत् तज्जयमाह—

यस्मात् क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भेऽ-
हंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरञ्चे-
र्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत् तत्त्वमाद्यम्॥१॥

पृथ्वी की स्थिति संबंधि प्रथम प्रश्न के उत्तर भूत यह भुवनकोश अध्याय व्याख्या है। पृथ्वी आदि तत्त्वों के आदि तत्त्व अखिल जगज्जनक एक बीज परब्रह्म को मनसा प्रणाम करके प्रश्न की व्याख्या करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) तथा व्यक्त (महदादि) उसके अन्य रूप हैं। सबको क्षुब्ध करने वाला होने से काल उसका परमरूप है। वही इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) जगत के रूप से तथा इसके साक्षी पुरुष और महाकारण काल के रूप में स्थित है। प्रधान पुरुष व्यक्त काल में परब्रह्म के रूप पृथक्-पृथक्, संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार के प्रकाश तथा उत्पादन में कारण हैं।

इनमें से अव्यक्त कारण को जो कारण शक्ति विशिष्ट और नित्य सदा एकरस है, श्रेष्ठ जन प्रधान तथा सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं। वह रज, सत और तम रूप त्रिगुणमय और जगत् का कारण हैं तथा स्वयं अनादि एवं उत्पत्ति और लय से रहित है। श्रुति के मर्म को जानने वाले, श्रुतिपरायण ब्रह्मवेत्ता इसी अर्थ को लक्ष्य करके प्रधान के प्रतिपादक इस श्लोक को कहते हैं—

"नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिर्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्॥वि.पु."

अर्थात् उस समय (प्रलयकाल में) न दिन था, न रात्रि थी, न प्रकाश था, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अन्धकार था और न ही इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदि का अविषय एक प्रधान ब्रह्म और पुरुष ही था।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विष्णु परम रूप से प्रधान और पुरुष– ये दो रूप हुए। उसी के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों सृष्टि और प्रलय काल में संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तर का ही नाम काल है। बीते हुए प्रलयकाल में यह व्यक्त प्रपञ्च प्रकृति में लीन था, इसलिए प्रपञ्च के इस प्रलय को प्राकृत प्रलय कहते हैं। प्रलयकाल में प्रधान (प्रकृति) के साम्यावस्था में स्थित हो जाने पर और पुरुष के प्रकृति से पृथक् स्थित हो जाने पर ब्रह्म का कालरूप इन दोनों को धारण करने के लिए प्रवृत्त होता है। तदन्तर सर्गकाल उपस्थित होने पर उन परब्रह्म ने अपनी इच्छा से विकारी प्रधान और अविकारी पुरुष में प्रविष्ट होकर उनको शोभित किया। परमेश्वर अपनी सन्निधि मात्र से ही प्रधान और पुरुष को प्रेरित करते हैं।

सर्गकाल के प्राप्त होने पर गुणों की साम्यावस्थारूप प्रधान, जब ब्रह्म के क्षेत्रज्ञरूप से अधिष्ठित हुआ तो उससे महत्तत्व की उत्पत्ति हुई। उत्पन्न हुए महान को प्रधान तत्त्व ने आवृत्त किया। महत तत्त्व सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का है। किन्तु यह त्रिविध महत्तत्व प्रधान तत्त्व से सब ओर व्याप्त है। फिर त्रिविध महत्तत्व से ही वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और तामस भूतादि तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ। वह त्रिगुणात्मक होने से भूत ओर इन्द्रिय आदि का कारण है। प्रधान से जैसे महत्तत्व व्याप्त है वैसे ही महत्तत्व से वह अंहकार व्याप्त है। भूतादि नामक तामस अहंकार ने विकृत होकर शब्द-तन्मात्रा और उससे शब्द गुण वाले आकश की रचना की तथा उसे व्याप्त किया। फिर आकाश ने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्रा को रचा जिससे बलवान वायु हुआ उसका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द रूप आकाश ने वायु को आवृत्त किया है। फिर वायु ने विकृत होकर रूप-तन्मात्रा सृष्टि की रचना की। वायु से तेज उत्पन्न हुआ उसका गुण रूप कहा जाता है। वायु ने तेज को आवृत्त किया। फिर (रूप) तेज ने भी विकृत होकर रस-तन्मात्रा की रचना की जिससे रस-गुणवाला जल उत्पन्न हुआ। जल को (रूप)तेज ने आवृत किया। जल के विकार से गन्ध-तन्मात्रा की रचना की। उससे पृथ्वी उत्पन्न हुई जिसका गुण गन्ध माना गया।

इन-इन आकाशादि भूतों में तन्मात्रा अर्थात् केवल उनके गुण शब्द ही हैं। इसलिए वे गुणरूप (तन्मात्रा) ही हैं इनमें विशेष भाव नहीं हैं इसलिए उनकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अवशेष संज्ञा है। उनका सुख-दुःख या मोहरूप से अनुभव नहीं हो सकता। इस प्रकार तामस अहंकार से यह भूत तन्मात्रारूप सर्ग हुआ है।

दस इन्द्रियाँ तैजस अर्थात राजस अहंकार से और उनके अधिष्ठाता देवता वैकारिक अर्थात सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न हुआ कहते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (सात्त्विक) है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा पांचों भूत इस प्रकार बने हैं। भूतों की पृथक् पृथक् शक्तियाँ अधिष्ठित देवता हैं। इसलिए एक-दूसरे के आश्रय रहने वाले और एक ही संघात की उत्पत्ति के लक्ष्यवाले महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त प्रकृति के इन सभी विकारों ने पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण परस्पर मिलकर प्रधान तत्त्व के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति की। जल के बुल-बुले के समान भूतों से बढ़ा हुआ गोलाकार और जलपर स्थित महान अण्ड (हिरण्यगर्भ)ब्रह्म रूप अति उत्तम प्राकृत आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्त स्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भ रूप से स्वयं ही विराजमान हुए। उन महात्मा हिरण्यगर्भ का सुमेरु उल्ब, अन्य पर्वत, जरायु, तथा समुद्र गर्भाशयस्थ था। उस अण्ड में ही पर्वत और द्वियादि के सहित समुद्र, ग्रहों के सहित सम्पूर्ण लोक तथा देव, असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए। यह अण्ड इन पूर्वोक्त सात प्राकृत आवरणों से घिरा हुआ है।

उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुण का आश्रय लेकर इस संस्कार की रचना में प्रवृत्त होते हैं।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में आचार्योक्त बातों को ही भिन्न प्रकार से कहा गया है—

सृष्टिक्रमनिरूपणम्—

"वासूदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात् परोऽव्ययः॥१२॥
प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः।
सङ्कर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासु वीर्यवासृजत्॥१३॥
तदण्डमभवद् हैमं सर्वत्र तमसावृतम्।
तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः॥१४॥
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्विभुः।
सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वमस्मिन् प्रतिष्ठितम्॥१८॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माऽहङ्कारमूर्तिभृत्॥२१$\frac{1}{2}$॥
मनसः खं ततोवायुरग्निरापो धरा क्रमात्।
गुणैकवृद्धया पञ्चेति महाभूतानि जज्ञिरे॥२३॥
ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम्।
ऊर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ स्रोतोभ्यः प्रकृतीः सृजन्॥२६॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त प्रकार ही पुराणोक्त कथन किया है। यथा–

''आसीद्ध्वान्तमिदं ततोऽम्भसि बभूवाण्डं स्वरूपदिलं
तस्मिन् विश्वकृदर्कचन्द्रनयनो ब्रह्मा किलाभूत् पुरा।
द्रव्यादीन् कणभुक् प्रधानपुरुषौ साङ्ख्यौऽवदत् कारणं
विश्वस्यास्य तथा स्वभावमपरे कर्मार्थकालं जगुः॥४७॥
रजोगुणसमन्वितात् कमलजन्मनः प्राणिनो
भवन्ति भगवानवत्यपि च सत्ययुक्तो हरिः।
हरो हरति तामसीं समवलम्ब्य वृत्तिं परे
जगुस्त्रितयमप्यजः क्रियत इच्छयैवैककः॥४८॥''

इदानीं भूमेः स्वरूपमाह—

भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैर्वृत्तो वृतः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्।
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वं च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्॥२॥
सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरप्रसरैरिव॥३॥

भूमि का रूप बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— मिट्टी, वायु, जल, आकाश से युक्त यह तेजोमय वृत्ताकार पृथ्वी चंद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरु, शनि तथा नक्षत्र की वृत्ताकार कक्षाओं से आवृत्त होकर बिना किसी अन्य आधार के स्वशक्ति से आकाश में स्थित है। उसके पृष्ठ के ऊपर जगत विद्यमान है। इस पर दानव, मानव, देव, असुर सहित विश्व सदा स्थित हैं। सभी ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, देवस्थान आदि स्थित हैं, जिस प्रकार कदम्ब पुष्प ग्रंथि में तिर्यक (उर्धव) केसर लगी रहती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ के भूगोलाध्याय १७ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"गगनमरुदग्निजलमृण्मयो महाभूतगुणयुतः खस्थः।
कक्षाभिरावृतोऽयं भपञ्जरान्तश्च भूगोलः॥१॥
मध्येऽयस्कान्तानां यथा स्थितोऽयोगुडः खमध्यस्स्थः।
तद्वदनाधारोऽपि हि सर्वाधारो महीगोलः॥२॥"
तरुनगनगरसुरासुरनरैरयं केसरैरिव समन्तात्।
गोलः कादम्बो मधुकरीभिरिव सर्वतः प्रचितः॥६॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"शशिबुधसितार्क कुजगुरु शनि कक्षा वेष्टितो भ कक्षान्तः।
भूगोलः सत्त्वानां शुभाशुभैः कर्मभिरुपात्तः॥२॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विधुबुधसित सूर्योरेज्यपातङ्गि कक्षावलयपरिवृत्तोऽ
सावृक्ष कक्षोदर स्थं....."
आदर्शोदरसन्निभा भगवती विश्वम्भरा कीर्त्तिता,
कैश्चित् कूर्मपृष्ठसदृशी कैश्चित् सरोजा कृतिः॥अ.१५श्लो.८।
अस्माकं तु कदम्ब पुष्पनिचथग्रन्थेः समा
सम्मता सर्वत्रासुमतां चयेन निचिता तोयस्थस्थापिनाम्॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के भूगोल ५ अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कुर्मभिर्मृदुभुजां शुभाशुभैः व्योमवायुशिखितोयमृण्मयः।
भग्रहैस्सुपरिवेष्टितोऽम्बरे निर्मितस्त्ववनिगोलकोऽचलः॥१॥
लोहकान्तपरिवेष्टितो यथा खस्थितोऽपि न पतत्ययोगुडः।
तद्वदेव भखगैर्निवारिता नो पातत्यविधृताऽपि भूरियम्॥२॥
केसरैरिव समन्ततश्चितं स्यात्कदम्बकुसुमं यथा तथा।
सर्वतोऽमरनरोरगादिभिः जन्तुभिः परिवृता स्थिताधरा॥१२॥"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के त्रैलोक्यसंस्थानम—१३ अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।
खेऽयस्कान्तस्थो लोह इवाऽवस्थितो वृत्तः॥१॥
तरुनगनगरारामसरित्समुद्रादिभिश्चितः सर्वः।
विबुधनिलयः सुमेरुस्तन्मध्येऽधः स्थिता दैत्याः॥२॥
चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवाऽर्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः॥३६॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी भूगोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मनसः खं ततोवायुरग्निरापो धराक्रमात्।
गुणैकवृद्धया पञ्चेति महाभूतानि जज्ञिरे॥२३॥
गुणकर्म विभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात्।
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात्॥२७॥
ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाऽभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा॥३०॥
मन्दामरेज्य - भूपुत्र - सूर्य - शुक्रेन्दुजेन्दवः
परिभ्रमन्त्यधोऽधः स्थाः सिद्धा विद्याधरा घनाः॥३१॥
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमा शक्तिं ब्रह्मणो धारणाक्तिकाम॥३२॥"

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितरसमन्ततः कुसुमैः।
यद्वद्धि सर्वसत्त्वैर्जलजैस्स्थलजैश्च भूगोलः॥७॥"

इदानीं पुराणेषु भूमेराधारपरंपरा या पठिता तां निराकुर्वन्नाह—

मूर्तो धर्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था।
अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेः साष्टमूर्तेश्च मूर्तिः॥४॥

पुराणो में भूमि के आधार की जो परंपरा बताई गई है उसका निराकण—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि हम यह मानें कि मूर्त (कठोर, भारी) रूप पृथ्वी को कोई धारण करने वाला धर्ता है तो उस धर्ता को भी धारण करने वाला अन्य दूसरा धर्ता होगा, इसी प्रकार उसको भी धारण करने वाला कोई और अन्यधर्ता होगा। इस प्रकार धारक और धार्य की स्थिति की कल्पना में अंत में यही मानना पड़ेगा कि कोई अवस्था की स्थिति है जहाँ अंतिम धारक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्वशक्ति से ही स्थित है तथा उसको धारण करने वाला कोई नहीं है। अतः धारण करने वाली कल्पना सही नहीं है। भूमि का कोई अन्य आधार नहीं है ऐसा मानने से उसका निराधार स्थिति रहना ही भाव है। शेष (नाग) आदि नामक ईश्वर अंश की अंतरिक्ष में अवस्थित होने के लिए युक्ति कल्पित की है। भूमि भी उसी भाव से युक्त होने से भगवान अष्टमूर्ति शिव की भांति शक्ति कल्पित की गई है जो स्वयं शक्ति का केंद्र है। अतः यह भूमि, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश सूर्य और चंद्र के साथ यजमानात्मक महेश्वर की मूर्ति के समान शरीर धारण करके ईश्वर मूर्ति की भांति अंतरिक्ष में अवस्थित है। इस प्रकार शक्ति कल्पना की युक्ति का भाव है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मिथ्याज्ञानाधिकार २० में आचार्योक्त बात को ही अन्य प्रकार से कही है। यथा—

"सलिले विलयो मृदो भवेदिति गोरप्सु न युज्यते स्थितिः।
अथ पात्रगतेति तत् कथं न भवेद्यावदिलैव पार्थिवम्॥३६॥
यदि वाम्भसि संस्थिता मही सलिलं तद् द्युवदप्रतिष्ठितम्।
गुरुणोऽम्भसि चेत् स्थितिर्भवेत् क्षितिगोलस्यन किं विदायसि॥४०॥
कमठादिभिरुद्धृता मही यदि ते केन धृता नभः स्थिताः।
अत एषां वियति स्थितिर्यदि क्षितिगोलस्य तु केन वार्यते॥४१॥
परमात्मवशेन स्वस्थितिर्ग्रहचक्रस्य परिभ्रमस्तथा॥४६॥"

सूर्यसिद्धान्त के भगोलाध्याय में पृथ्वी को ब्रह्मा की धारणात्मक परम शक्ति से आकाश में अवस्थित बताया है। यह भास्करोक्त ही है। यथा–

"मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥३२॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"धर्ता धरित्र्या यदि हन्त मूर्त्तस्तस्यापरस्तस्य परस्ततो ऽन्यः।
एवं हि तेथामनवस्थितिः स्यादतोऽत्र युक्ता भुव एव शक्तिः॥२०॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही पृथ्वी की स्थिति कही है। यथा–

"निलाधाराः केचित् केचिल्लोका वसुन्धराधाराः।
वसुधा नान्याधारा तिष्ठति गगने स्वशक्तयै॥४॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं कथमियं भूमेः स्वशक्तिरित्याशङ्कां परिहरन्नाह—

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः॥५॥
आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे॥६॥

'पृथ्वी स्वशक्ति से स्थित है', इस कथन की शंका का परिहार—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार अग्नि और सूर्य में उष्णता, चंद्रमा में शीतलता है, जल में तरलता है, पाषाण में कठोरता है, वायु में गति है, ये सब स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। उसी प्रकार पृथ्वी में अचलता अर्थात स्थिरता का गुण स्वाभाविक (प्राकृतिक) है। इस विचित्र गुण के कारण यह स्थिर रह सकती है।

पृथ्वी में अपनी आकर्षण शक्ति के कारण, आकाश में स्थित भारी पदार्थ पृथ्वी की और स्वशक्ति से आकर्षित होकर उस पर गिरते हुए दिखाई देते हैं। लेकिन यह पृथ्वी चारों ओर से आकाश से घिरी हुई होने के कारण कहाँ पर गिरेगी? अर्थात यह अपने ही स्थान पर स्थित है, अपने विचित्र स्वाभाविक गुण के कारण। अतः पृथ्वी की इस आकर्षण शक्ति से भूमि का अधपतन और आकाश के नीचे स्थिति से नीचे गिरने की शङ्का निराधार है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर अध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उष्णत्वमर्कशिखिनो शिशरत्वमिन्दो काठिन्यमश्मनि नभस्वति चञ्चलत्वम्।
नैसर्गिकी च पयसि द्रवता तथेह निर्हेतुरेवमवनेः स्थितिरन्तरिक्षे॥२१॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भूगोलाधिकार १७ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"..... गुरुमेदिनीं व्रजति यद्वदिहास्मदवस्थितौ।
तलगतामितरेष्वषि तत्तथा न तलमस्ति भुवः क्व पतत्वसौ॥८॥
शिशिरता शशिनोऽर्कहविर्भुजोराशिशिरत्वममार्दवमश्मनाम्।
सततगस्य चलत्वमपांपतेः प्रकृतिरेव कुजादिनभःस्थितिः॥९॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. भूगोल ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"खं प्रयाति शिखिनः शिखा यथा खात् क्षितिं च गुरु संस्थितावहि।
सर्वतः कुवलयस्थितौ तथा नास्त्यधस्तलमतः क्व यात्वसौ॥७॥
उष्णताऽर्कशिखिनोरपां गतिः शीतता शिशिरगोरमार्दवम्।
अश्मनां सुनियतं निसर्गतः खस्थितिः खलु महीवियत्सदाम्॥९॥"

इदानीं बौद्धादियुक्तिमाह—

भपञ्जरस्य भ्रमणावलोकादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः।
खस्थं न दृष्टं च गुरु क्षमातः खेऽधः प्रयातीति वदन्ति बौद्धाः॥७॥
द्वौ द्वौ रवीन्दू भगणौ च तद्वदेकान्तरौ तावुदयं व्रजेताम्।
यदब्रुवन्नेवमनम्बराद्या ब्रवीम्यतस्तान् प्रति युक्तियुक्तम्॥८॥

बौद्धमत की युक्ती —

सूर्य-प्रभा टीका— बौद्धों का मानना है कि नक्षत्र अधिष्ठित गोल तथा ग्रहों का भूमि के चारों ओर भ्रमण करते हुए देखने से यह अनुभव से प्रतीत होता है कि भूमि आधार रहित है अर्थात वह किसी अन्य चीज पर टिकी हुई नहीं है। अन्यथा इनका (ग्रह नक्षत्रों) उदयास्त सिद्ध भ्रमण पृथ्वी का आधार होने से सिद्ध नहीं होता क्योंकि उनके उदयास्त और भ्रमण में पृथ्वी के आधार के कारण रुकावट होती।

और दूसरा यह मानना है कि कोई भी भारी वस्तु आकाश में स्थित क्यों नहीं दिखाई देती। क्योंकि पृथ्वी इतनी भारी होने पर यदि आकाश में बिना आधार के रह सकती है तो अन्य किसी भी भारी वस्तु को भी आकाश में स्थिर रहना चाहिये। ये अनुभव से सिद्ध है। अतः ब्रह्माण्ड के मध्य स्थित आकाश में स्थित भूमि प्रतिक्षण नीचे गिरती रहती है, जो भूमि पर स्थित प्राणियों को दिखाई नही देती।

उनके यह कहने से कि पृथ्वी लगातार गिर रही है उन्होंने आकाश के आवरण (की सीमा) को नकार दिया अर्थात आकाश को सीमा रहित मान लिया।

बौद्धों का यह भी मानना है कि दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा दो-दो ही अश्विन्यादि नक्षत्र तथा ग्रह हैं। ये एकान्तर से अर्थात् एक अहोरात्र में एक उदित होता है और दूसरी अस्त होता है फिर दूसरे दिन दूसरा उदय होता है और पहला अस्त होता है। इस प्रकार पुनः पुनः होता रहता है। इस प्रकार उनके कहने से वे अम्बर आवरण को न मानने से वे दिगम्बर कहलाते हैं। बौद्धों में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दिगम्बर भेद के मुखिया होने के कारण वे पहले बौद्ध कहलाते हैं जो युक्तियुक्त है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा--

"अधः पतन्त्याः स्थितिरस्ति नोर्व्या नभस्यनन्तेऽत्र वदन्ति जैनाः।
द्वौ द्वौ रवीन्दु द्विगुणं भसंस्थां चतुर्भुजस्तम्भनिभं च मेरुम्॥
दो चन्दा दो सुज्जा जैनवाक्यम्॥११॥"

वराहमिहिर ने पं.सि. के अध्याय १३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अर्हत्प्रोक्तेऽर्केन्दू द्वौ द्वावेकान्तरौ किलतौ।
यद्येवमर्कसूत्रात् किं ध्रुवचिन्हं भ्रमत्यह्ना॥८॥"

इदानीं तेषां युक्तिभङ्गमाह—

भूः खेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध मुधा कथम्।
जाता यातं तु दृष्ट्वापि खे यत् क्षिप्तं गुरु क्षितिम्॥९॥

बौद्धों की युक्ति का खण्डन—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि भूमि नीचे गिरती जाती है तो तीर आदि भारी वस्तु को ऊपर की ओर बलपूर्वक ऊपर फेंका जाता है वे वापस पृथ्वी पर नहीं आ सकते क्योंकि दोनों ही नीचे की ओर गमन करते हुए होते हैं, और यदि यह कहा जावे कि पृथ्वी की मन्द गति होती है और तीर की अधिक होती है तो यह संभव नहीं हो सकता क्योंकि जैसे भारी चीज शीघ्रता से गिरती है वैसे ही वह ऊपर भी अधिक जाती है तथा तीर आदि जो हल्के होते हैं वे अति लघु दूरी तक जाते हैं। अतः आचार्य बौद्ध मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि हे बौद्ध! पृथ्वी पर गिरती हुई वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखकर भी तुम्हारी बुद्धि में यह वृथा कल्पना किस प्रकार उत्पन्न हो गई?

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शरादिरूर्ध्वं निहितः कदा चिदायाति भूमिं न तदीयपक्षे।
विहङ्गमा न स्वकुलायमापुरसत् प्रलापो हि तदुक्तिरस्मात्॥१२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त कहा है। यथा–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"यदि च भ्रमति क्षमा तदा स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झितानिपतन्तः स्युरपांपतेर्दिशि॥४२॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो वरुणाशाभिमुखो व्रजेद् घनः।
अथ मन्दगमात्तदा भवेत् कथमेनेक दिवा परिभ्रमः॥४३॥"
"यदि गच्छति भूरधोमुखी गगने क्षिप्तमुपैति नो महीम्।
यदि चोर्ध्वमुपैति सा तदा निकटं किं न भवेत् भपञ्जरः॥३८॥"

अध्याय १७ भूगोलाधिकार में—

शिखिशिखा गगनं गुरुमेदिनीं व्रजति यद्वदिहास्मदवस्थितौ।
तलगतामितरेष्वपि तत्तथा न तलमस्ति भुवः क्व पतत्वसौ॥८॥

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के भूगोल ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"खं प्रयाति शिखिनः शिखा यथा खात् क्षितिं च गुरु संस्थितावि‌ह।
सर्वतः कुवलयस्थितौ तथा नास्त्यधस्तलमतः क्व यात्वसौ॥७॥"

इदानीं जैनयुक्तिभङ्गमाह—

किं गण्यं तव वैगुण्यं द्वैगुण्यं यो वृथाकृथाः।
भार्केन्दूनां विलोक्याह्ना ध्रुवमत्स्यपरिभ्रमम्॥१०॥

जैन मत का खण्डन—

सूर्य-प्रभा टीका— जब भरणी नक्षत्र में सूर्य रहता है तब उसके अस्त समय काल पर ध्रुवतारे की मत्स्य तिर्यक स्थित होती है। उसका उस समय पर मुख तारा पश्चिम की ओर रहता है और पुच्छ तारा पूर्व की ओर रहता है। इस प्रकार तब मुखतारा के सूत्र में रवि स्थित होता है और रात्रि के समाप्ति के समय पर मुखतारा परिवर्तित होकर पूर्व की ओर आ जाता है और पुच्छतारा पश्चिम की ओर आ जाता है। अतः तब मुखतारा गत सूत्र में सूर्य उदित होता हुआ दृश्य होता है। अतः दो-दो सूर्यों के होने की बात प्रमाणित (उपपन्न) नहीं होती। अतः आचार्य कहते हैं कि जैन मत में दो सूर्यों (आदि) के कहने में किस प्रकार किस एक की गणना में त्रुटि की गई है? इस प्रकार ध्रुव तारे की मत्स्य के परिभ्रमण को देखकर भी सूर्य चंद्र को दो-दो होना किस प्रकार अंगीकार (स्वीकार) किया गया है?

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में अन्य ताराओं की स्थिति से जैन मत का खण्डन किया है। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"द्वितयं दिनरात्रिनाथयोः कथमेकान्तरितं तदुद्व्रजेत्।
यदि किं ध्रुवतारकातिमेर्दिवसेनैव भवेत् परिभ्रमः॥४४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के यन्त्र परीक्षाध्याय में आचार्योक्त कहा है—

"भानि चतुष्पञ्चाशत् द्वौ द्वौ वर्केन्दवौ जिनोक्तं यत्।
ध्रुवमत्स्यस्यावर्त्तो भवति यतोऽह्ना ततस्तदसत्॥३॥"

इदानीं भूगोलस्य समतां निराकुर्वन्नाह—

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते॥११॥
यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिणभागके॥१२॥

भूमि के समतल होने की बात का निराकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— पुराणों में पृथ्वी को दर्पण के समान समतल कहा गया है। उसके मध्य में मेरु पर्वत कहा है तथा उसके चारों ओर जम्बू द्वीप एक लाख योजन व्यास का कहा गया है तथा उसके बाहर चारों ओर एक लाख योजन प्रमाण का क्षार सागर कहा है और उसके चारों ओर दो लाख योजन का अन्यदीप कहा गया है। उसके बाहर समुद्र फिर अन्य द्वीप, फिर उस द्वीप से दुगुणा द्वीप, फिर समुद्र से दुगुणा समुद्र। इस प्रकार सातवें पुस्कर द्वीप के मध्य में वलयाकार मानस उत्तर पर्वत है, उसके शिखर के ऊपर रवि के रथ का चक्र एक लाख योजन दूरी पर विषुवद्दिन में उत्तर गोल में उत्तर की ओर तथा दक्षिण गोल में दक्षिणी की ओर भ्रमण करता है।

ऊपरोक्त पुराणोक्त कथन का आचार्य युक्ति-युक्त खण्डन करते हुए कहते हैं कि यदि दर्पण के समान भूमि समतल होती और उसके ऊपर से बहुत दूर से सूर्य भ्रमण करता तो सूर्य सदा उदित अवस्था में ही प्राणियों को दर्श होता जैसे देवताओं को मेरु से सूर्य सदा उदित दिखता है। यदि मेरु पर्वत से अन्तर्हित (आच्छादक) रवि होता तो मेरु क्यों नहीं दिखाई देता अर्थात् वह दिखाई देना चाहिए। यदि मेरु के तट (किनारे-पास) से रवि उदित होता है तो पूर्व दिशा से उत्तर की ओर ही सूर्योदय होगा तो फिर मेरु के दक्षिण के भाग में वह उदित होता हुआ दिखाई कैसे देगा।

अतः भूमि के समतल होने की बात इस प्रकार उपपन्न (सिद्ध) नहीं होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त कहा है—

"यदुदेति रविः समन्ततः कथमाशास्तदमर्त्यभूभृतः।
प्राची प्रथमोदयेन चेत् तत्रैवास्तमयेन का भवेत्॥१४॥
केषां चिदुदग् दिवाकरः पुरतः पृष्ठगतः परस्य च।
इतरस्य तदैव दक्षिणः परमार्थात् ककुभो न कुत्रचित्॥१५॥
ककुभश्च सुमेरुभूभृतो युगलं चन्द्रमसोस्तथार्कयोः।४$\frac{१}{२}$।
अमितामवनीं प्रचक्षते सुसमां केचन दर्पणोपमाम्।५$\frac{१}{२}$।"

श्लो ३४ से ३७ में भी आचार्य से भिन्न तर्क भूमि के समतल होने के खण्डन रूप में दिये गये हैं।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में भूमि के समतल होने का खण्डन किया है। यथा—

"आदेर्शोदरसंनिभा भगवती विश्वंभरा कीर्तिता
कैश्चित् कैश्चन कूर्मपृष्ठसदृशी कैश्चित सरोजाकृतिः॥८॥
मुकुरतलसमा चेत् सर्वते मेदिनीयं कनकगिरिरयं तद्दृष्टियोग्या भवेन्नः॥९॥"

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में भी आचार्योक्त बात का सार कहा है। यथा—

"अल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात् सर्वतो मुखम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येनां चक्रकारां वसुन्धराम्॥५४॥"

अथ प्रत्यक्षविरोधशङ्कां परिहरन्नाह—

समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा॥१३॥

प्रत्यक्ष विरोध से शंका का निवारण—

सूर्य-प्रभा टीका— गणितज्ञों का कहना है कि किसी वृत्त का सौवाँ भाग समतल वत दृष्टिगोचर होता है। अतः पृथ्वी परिधि का भी सौवाँ भाग इसी प्रकार समतलवत दिखाई देता है। इसी प्रकार मनुष्य उसके पृष्ठ पर स्थित होकर सामने देखते हैं तो उन्हें पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग दूर तक समतल ही दिखता है। अतः उन्हें पृथ्वी के समतल होने का आभास होता है लेकिन वह समतल नहीं होती।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"प्रगुणः परिधे शतांशको गणितज्ञाः कथयन्ति दृश्यते।
प्रतिभाति तदा समा महीविषये यत्र तथैव गम्यते॥३५॥"

इदानीं स्वोक्तस्य भूपरिधिप्रमाणस्योपपत्तिमाह—

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात् तदक्षविश्लेषलवैस्तदा किम्।
चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणम्॥१४॥

स्व उक्त भूपरिधि प्रमाण से उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्ष देश से स्वदेश स्थान पृथ्वी पर जैसे-जैसे दक्षिण की ओर होता है वैसे-वैसे ख स्वस्तिक विषुवद् वृत्त से नत होता जाता है। उन दोनों अर्थात निरक्षदेश तथा स्वस्थान का अन्तर अक्षांश होता है। यह निरक्षदेश से पृथ्वी पर पसरी हुई योजन दूरी, अनुपात से प्राप्त होती है। किसी स्थान के अक्षांश ज्ञात करके उससे उत्तर की ओर अन्य एक स्थान ज्ञात करे। फिर उनके अंतरांशों के पुरान्तर योजन का अनुपात करे कि यदि इतने अंतरांश में इतने पुरान्तर योजन प्राप्त होते हैं तो चक्रांश (३६०°) में कितने होंगे? प्राप्त फल भूपरिधि योजन होंगे।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त प्रकार से ही कहा है। यथा—

"खरखषट्कुयमैर्मिताः कला ग्रहचक्रे वलये व्यवस्थिताः।
स्वफलस्य कुवृत्तयोजनैरनुपातादमिता कथं मही॥३२॥
यदि वृत्तवशेन गच्छताममिता भात्यथ भूरियोजना।
परितस्तु तदा तथाविद्या परिमाणं त्विदमेव नापरम्॥३३॥"

अथ तदेव दृढीकुर्वन्नाह—

निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात्।
तदन्तरं षोडशसंगुणं स्याद्भूमानमस्माद्बहु किं तदुक्तम्॥१५॥
शृङ्गोन्नतिग्रहयुतिग्रहणोदयास्तच्छायादिकं परिधिना घटतेऽमुना हि।
नान्येन तेन जगुरुक्तमहीप्रमाणप्रामाण्यमन्वययुजा व्यतिरेककेण॥१६॥

इस बात को दृढ़ करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्ष देशे से भूपरिधि का सोलहवें भाग तुल्य गणित के द्वारा अवन्ति प्रदेश का स्थान प्राप्त होता है। अर्थात्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३६०÷१६=२२।३० अंशादि अवन्ति के अक्षांश। अक्षांश को १६ से गुणा करने से (२२।३०×१६) योजन भूमान प्राप्त होता है।

आचार्य कहते हैं कि यह मेरे द्वारा कथित मान है। अब इसके अतिरिक्त मैं (आचार्य) और क्या कहे अर्थात् क्या प्रमाण देवें।

शृंगोन्नति, ग्रहयुति, गहण, ग्रहउदयास्त तथा ग्रहच्छाया आदि प्रत्येक की आचार्योक्त गणित का, उज्जयनि के उक्त अक्षांश के आधार पर आचार्य द्वारा साधित भूपरिधि के मान से, साधन करने से सही मान प्राप्त होते हैं। किसी अन्य मान से इनमें से कोई भी गणना सही नहीं होती। अतः आचार्योक्त भूपरिधि मान ही सही है। इससे आचार्योक्त बात दृढ़ होती है कि पृथ्वी दर्पण के समान चपटी न होकर गोलाकार है तथा सीमित प्रमाण की है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"अमिता यदि भूरियोजना वा क्षितिरह्ना परिवर्त्यते कथं भैः।
परिधेः खलु षोडशे स्थितांशे न च लङ्काविषयाद् भवत्यवन्ती॥३०॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त अवन्ति की स्थिति कही है–

"भूपरिधि चतुर्थभागे लङ्काभूमस्तकान क्षितितलाच्च।
लङ्कोउत्तरतोऽवन्ती भूपरिधेः पञ्चदश भागे॥९॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १९ भुवनकोष में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भूपरिधेरष्टयंशेऽवन्ती स्यात् सौम्यादिग्भागे॥४०॥"

इदानीं भूगोले पुरनिवेशमाह—

लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येऽथ याम्ये वाडवानलश्च॥१७॥
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसङ्घा और्वे च सर्वे नरकाः सदैत्याः॥१८॥
यो तत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि स्थितं च।
स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ये तिर्यगिवामनन्ति॥१९॥
अधः शिरस्काः कुदलान्तरस्थाश्छायामनुष्या इव नीरतीरे।
अनाकुलास्तिर्यगधः स्थिताश्च तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र॥२०॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूगोल में स्थानों का निवेश—

सूर्य-प्रभा टीका— पृथ्वी के मध्य में लङ्का, इसके ९० पूर्व में यमकोटि और ९० पश्चिम में रोमकपतन नाम का पुर है। इसके १८०° नीचे सिद्धपुर और ९० उत्तर में सुमेरु उत्तर ध्रुव है तथा ९० दक्षिण में वाडवानल पुर (दक्षिण ध्रुव) है। ये सब स्थान भूमध्यस्थ लङ्का के सापेक्ष कहे गये हैं।

भूगोल के पादों (चतुर्थ भाग) को अंतरित करने वाले स्थानों को छः गोल वाले कहे जाते हैं। मेरु पर देवता सिद्ध पुरुषों के साथ रहते हैं तथा दक्षिण ध्रुव पर सभी नर्क तथा दैत्यगण निवास करते हैं। जो लोग पृथ्वी पर जहाँ पर भी स्थित है वे अपने आप को पृथ्वी के ऊपर उसके ऊपरी भाग पर ही स्थित समझते हैं तथा दूसरों केा अपने नीचे स्थित अनुभव करते हैं। पृथ्वी के चतुर्थ भाग (पाद) में स्थित सभी लोग पृथ्वी पर आश्चर्य रूप से तिरछे स्थित होते हैं (यद्यपि पृथ्वी के धरातल पर तो वे उर्ध्व ही होते हैं)। पृथ्वी के आधे भाग के अन्तर पर स्थित मनुष्य परस्पर नीचे सिर करके स्थित होते हैं, जैसे किसी जलाशय के किनारे पर खडे होकर जल में देखने से जल में छाया में खड़ा दिखाई देने वाला व्यक्ति बिना किसी परेशानी के स्थित रहता है, उसी प्रकार बिना परेशानी के मनुष्य एक दूसरे के पृथ्वी के अधः भाग में एक दूसरे से नीचे की ओर सिर करके भी स्थित रहते हैं।

विशेष— वराहमिहिर ने पं.सि. के अध्याय १३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सलिलतटासन्नानां अवाङ्मुखी दृश्यते यथा छाया।
तद्वद् गतिरसुराणां मन्यन्ते तेऽप्यधो विबुधान्॥३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"क्षिति परिधिचतुर्थे प्राचि लङ्कानगर्या निवसति यमकोटिः पश्चिमे रोमकश्च।
उदगमरगिरिन्द्रो दक्षिणे वाडवाग्निः क्षितिपरिधिदलेऽधः पत्तनं सिद्धपुरम्॥३०॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी भूगोलाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः
अधस्तादसुरास्तद्वद् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः॥३५॥
समन्तान्मेरुमध्यात् तु तुल्य भागेषु तोयधेः।
द्विपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः॥३७॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा॥३८॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥३९॥
उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः॥४०॥
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठताः।
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः॥४१॥
सर्वत्रैव महिगोले स्वस्थानमुपरी स्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्ववाप्यधः॥५३॥
अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्।
भद्राश्वकेतुमालस्था लङ्कासिद्धपुरस्थिताः॥५२॥
उपर्थात्मानमन्योऽन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः॥५१॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भुगोलाध्याय १७ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''लङ्काप्राग् यमकोटिः पश्चाद्रोमकमधश्च सिद्धपुरम्।
मेरुः स्थित उत्तरतो दक्षिणतो दैत्यनिलयः स्यात्॥३॥
कुपरिधि पादान्तरगा मन्यन्ते तिर्यगन्योऽन्यम्॥४॥''
भूपरिधिदलान्तरगाः के नृच्छाये तथा तथोर्ध्वमघः।
सर्वेषामुपरि नभस्तदधो भूरुपरिते भूमेः॥५॥

आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''लंकाया यमकोटिः प्राक् पश्चाद्रोमकं तलस्थं च।
सिद्धपुरं भगणोऽयं भ्रमति पुराणां सदा शिरसि॥१४॥
क्षोणीं भित्वा मेरुर्निर्गत उभयत्र तन्मूले।
निवसन्त्यसुरा दनुजाः शिरोविभागे सदा देवाः॥६॥
मध्यन्तेऽन्योन्यं ते ह्यधः शिरस्कान् पुरः स्थितांस्तिर्यक्।
सुखगे कुन्दकपृष्ठे चरन्ति सर्वे यथाऽत्र वयम्॥७॥
अम्बरसंस्थित भूमे कोऽधोभागः क उर्ध्व उत्पार्श्वः।
सा कल्पनावधेः स्याल्लङ्का गोलोपरिस्थितोक्ताऽतः॥८॥''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के भूगोल ५ अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

लङ्काधः सिद्धपुरं प्राग्यमकोटी सुरोमकं पश्चात्।
याम्ये दैत्यावसतिः सुरनिलयो मेरुरुत्तरतः॥१०॥
दैत्यालयो जलस्थो मेरुः स्थलगः नराश्च तत्सीम्नि।
क्षितिपरिधिचरणसंस्थास्तिर्यग्गतांश्च मन्यन्तेऽन्योन्यम्॥११॥
दिनकरास्तमयोदययोर्दिशौ वरुणवज्रभृतोर्यमसोमयोः।
ध्रुववशात् कुरवास्तदधस्थितौ उपरि भानि भुवो नभसस्ततिः॥४॥''

यहाँ पूर्वादि चारों दिशाओं तथा उत्तरी तथा दक्षिणि ध्रुवस्थ स्थानों के बारे में विशेष व्याख्या की गई है। दक्षिण ध्रुव के लिए अन्योक्ति रूप में लंका का नाम कहा है जो भी पृथ्वी पर राक्षसों का ही स्थान था।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों पर दैवों तथा दैत्यों का स्थान आचार्योक्त प्रकार ही कहा है–

''खे भूगोलस्तदुपरि मेरौ देवाः स्थितास्तले दैत्याः।
खे भगणाक्षाग्रस्थावुपर्यधश्च ध्रुवौ तेषाम्॥३॥''

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त प्रकार ही ध्रुवादि कहे हैं। यथा—

''स्वमूर्धंग मेरुगतास्तमुत्तरं तथेतरं वाडवासिनो
जनाः वडवानलवासिनः दैत्याः।''

आर्यभट (प्रथम) ने आर्यभटीय के गोलपद में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''स्वर्मेनू स्थलमध्ये नरको वडवामुखश्च जलमध्ये।
अमरामरा मन्यन्ते परस्परमधःस्थितान्नियतं॥१२॥
उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमस्सवितुरेव सिद्धपुरे।
मध्यान्हो यवकोट्यां रोमकविषयेऽर्धरात्रस्स्यात्॥१३॥
स्थलजलमध्याल्लङ्का भूकक्ष्याया भवेच्चतुर्भागे।
उज्जयिनि लङ्कायास्तच्चतुरंशे समोत्तरतः॥१४॥''

आर्यभट (प्रथम) ने आर्यभटीय के गोलपाद में उत्तरी ध्रुव में मेरुस्थान पर देवता तथा दक्षिण ध्रुव को दैत्यों का स्थान वडवानल आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"देवाः पश्यन्ति भगोलार्धमुदङ्मेरुसंस्थितास्सव्यं।
अपसव्यगं तथार्धं दक्षिणवडवामुखे प्रेताः॥१६॥"

इदानीं द्वीपानां समुद्राणां च स्थानमाह—

भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः।
अर्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेशः॥२१॥
लवणजलधिरादौ दुग्धसिन्धुश्च तस्मादमृतममृतरश्मिः श्रीश्च यस्माद्बभूव।
महितचरणपद्मः पद्मजन्मादिदेवैर्वसति सकलवासो वासुदेवश्च यत्र॥२२॥
दध्नो घृतस्येक्षुरसस्य तस्मान्मद्यस्य च स्वादुजलस्य चान्त्यः।
स्वादूदकान्तर्वडवानलोऽसौ पाताललोकाः पृथिवीपुटानि॥२३॥
चलत्फणामणिगणांशुकृतप्रकाशा एतेषु सासुरगणाः फणिनो वसन्ति।
दीव्यन्ति दिव्यरमणीरमणीयदेहैः सिद्धाश्च तत्र च लसत्कनकावभासैः॥२४॥
शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं क्रौञ्चं च गोमेदकपुष्करे च।
द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति॥२५॥

द्वीप तथा समुद्रों के स्थान—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमि के उत्तरार्ध भाग में क्षार समुद्र के उत्तर दिशा में जम्बू द्वीप आचार्यों ने कहे हैं। इसके दूसरे अर्धभाग में अर्थात जहाँ क्षीर सागर तथा जम्बूद्विप के दक्षिण की ओर छः द्वीप स्थित हैं, लवण (नमकीन) समुद्र से आगे दुग्ध समुद्र हैं जिसमें से अमृत (सदा स्थित) और अमृत रश्मि चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। यहीं पर क्षीर सागर पर पद्म चरण पूज्य भगवान पद्म जन्मा ब्रह्मा तथा अन्य देवता और सर्वत्र वासि भगवान परब्रह्म विष्णु भी विराजमान रहते हैं।

दधि, घृत, इक्षु (ईख-गन्ना) रस, मद्य और स्वाद (मधुर) जल के अन्य सागर हैं। (पाँच ये तथा छठा दुग्ध सागर व सातवाँ क्षीर सागर मिलाकर सात सागर आचार्य ने कहे हैं।) स्वादु जल सागर के अन्दर वडवानल स्थित रहता है। पाताल लोग पृथ्वी के अन्दर स्थित हैं। फणों को हिलाने वाले (मणिधारी) नाग अपने फणों में प्रकाश से युक्त मणियों को धारण करके दैत्यों के समूह के साथ यहाँ रहते हैं जिनकी मणियों से पाताल में प्रकाश रहता है। शाक, शाल्मल, कौश, क्रौञ्च तथा गोमेदक और पुष्कर द्वीप (पूर्वोक्त) दो-दो समुद्रों के बीच में स्थित है। इस प्रकार पृथ्वी पर सात द्वीप स्थित है।

मेरु पृष्ठ पर स्थित देवता, मेरु पर रात्रि के अभाव के समय जब उनकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संभोगेच्छा होती है तब स्वर्णक्रान्ति युक्त रमणीय देह वाली बालायें तथा वे सिद्ध गण तथा देवता परस्पर क्रीड़ा में रत होते हैं। ये बालायें निज काम भाव की शांति के लिए स्वर्ग से आकर क्रीडा करती हैं।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। अध्याय १५ यथा—

''लवणजलधिराद्यो दुग्धसिन्धुर्द्वितीयस्तदनु दधिसमुद्रस्सर्पिरब्धिश्चतुर्थः।
अथ रसनिधिरिक्षोः पञ्चमोऽन्य सुराया जलधिरथ तदन्ते सप्तमः स्वादुतोयः॥३६॥''
जम्बूद्वीपोलवणजलधेर्मध्यतो मेरुमध्यः शाकस्तस्माद्बहिरथ कुशः क्रौञ्चनामा ततश्च।
शाल्मल्याख्यो भवति परितश्चाथ गोमेद संज्ञस्तस्माद्बाह्ये मुनिभिरुदितः सप्तमः पुष्कराव्य॥३३॥

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १९ भुवनकोशाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''क्षाराम्भोधिर्दक्षिणे व्यक्षगानां जम्बूद्वीपं तस्य सौम्ये मही या।
क्षाराम्भोधेर्दक्षिणे क्षीरसिन्धुः शाकद्वीपं मध्यमाहुस्तयोश्च॥१॥
क्षीराम्भोर्दक्षिणे ऽब्धिश्च दध्नः कौशद्वीपं मध्यभूमिस्तयोर्या।
दध्नः सर्पिर्दक्षिणे क्रौञ्चमन्तः शाल्मल्याख्यं स्यात् ततोऽब्धी रसोदः॥२॥
गोमेदं स्याद् द्वीपमस्मात् सुराब्धिस्तस्माद् याम्ये पुष्करं पुष्कराख्यात्।
स्वादूदःस्याद् दक्षिणे वाडवोऽस्मिन् दैत्यावासो यातना दुष्कृतीनाम्॥३॥
भूगोलान्तः सप्त पातालदेशास्ते चावासा दानवानामहीनाम्।५$\frac{१}{२}$।
लङ्कादेशात् क्षारसिन्धोश्च सौम्ये जम्बद्वीपे ज्यावदम्भोधितज्ज्यः।७$\frac{१}{२}$।''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है—

''दुग्धक्षरोद्ध्योः शाकद्वीपं यदन्तेर तस्य॥१०॥
दधिदुग्धोदधिमध्ये कुशं दधिस्नेहयोस्तथा क्रौञ्चम्।
इक्षुरसस्नेहजयोर्मध्ये स्याच्छाल्मलीद्वीपम्॥११॥
इक्षरसमद्यमध्ये गोमेदं पुष्करं सुरोदध्योः।
तदुदकमध्ये वहिनर्दैत्यास्तत्तीरमेरुमूलस्थाः॥१२॥''

इदानीं जम्बूद्वीपमध्ये गिरिनिवेशवशेन नव खण्डान्याह—

लङ्कादेशाद्धिमगिरिरुदग्हेमकूटोऽथ तस्मात्
तस्माच्चान्यो निषध इति ते सिन्धुपर्यन्तदैर्घ्याः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एवं सिद्धादुदगपि पुराच्छृङ्गवच्छुक्लनीला
वर्षाण्येषां जगुरिह बुधा अन्तरे द्रोणिदेशान्॥२६॥
भारतवर्षमिदं ह्युदगस्मात् किन्नरवर्षमतो हरिवर्षम्।
सिद्धपुराच्च तथा कुरु तस्माद्विद्धि हिरण्मयरम्यकवर्षे॥२७॥
माल्यवांश्च यमकोटिपत्तनाद्रोमकाच्च किल गन्धमादनः।
नीलशैलनिषधावधी च तावन्तरालमनयोरिलावृतम्॥२८॥
माल्यवज्जलधिमध्यवर्ति यत् तत् तु भद्रतुरगं जुगुर्बुधाः।
गन्धशैलजलराशिमध्यगं केतुमालकमिलाकलाविदः॥२९॥
निषधनीलसुगन्धसुमाल्यकैरलमिलावृतमावृतमाबभौ।
अमरकेलिकुलायसमाकुलं रुचिरकाञ्चनचित्रमहीतलम्॥३०॥

जम्बू द्वीप में पर्वत निवेश के नौ खण्ड—

सूर्य-प्रभा टीका— भूगोलार्ध के उत्तर की ओर जम्बूद्वीप है इससे क्षीर सागर की संधि निरक्षदेश है। वहाँ पर रोमक, सिद्धपुर, यमकोटि (तथा लंका) आदि चार नगर भूपरिधि के चतुर्थांश अन्तर पर अर्थात चारों दिशाओं में कहे गये हैं। इन सभी चारों नगरों के उत्तर दिशा की ओर मेरु है। लंका के उत्तर में हिमवान नामक पर्वत पूर्व से पश्चिम तक समुद्र में फैला हुआ है। इसके उत्तर में हेमकूट पर्वत है जो समुद्र पर्यंत तक फैला हुआ है। इसके उत्तर में निषध नामक पर्वत है। इन पर्वतों के मध्य में द्रोणि देश, वर्ष संज्ञक है जिसके आरम्भ में भारत वर्ष है जिसके उत्तर में किन्नवर्ष संज्ञक तथा इसके उत्तर में हरिवर्ष संज्ञक प्रदेश है। इसी प्रकार सिद्धपुर के उत्तर की ओर शृङ्गवान नाम का पर्वत है, उससे उत्तर में श्वेत गिरि पर्वत, उससे उत्तर में नीलगिरि पर्वत है। इन सभी का विस्तार समुद्र पर्यंत है। इन पर्वतों के मध्य सर्वप्रथम कुरुवर्ष है इसके उत्तर में हिरण्मय है, इसके उत्तर में रम्यक वर्ष है।

उस यमयोटि पुर के उत्तर की ओर माल्यवान नाम का पर्वत है। यह निषध और नील पर्वत तक फैला हुआ है। इसके और समुद्र के मध्य में भद्राश्व वर्ष है। इसी प्रकार रोमक पर्वत के उत्तर में गन्धमादन है, इसके तथा समुद्र के बीच में केतुमाल नगर है।

इसी प्रकार निषध, नील, माल्यवद, गन्धमादन, ऐरावत और इलावृत नाम के नौ खण्ड हैं। ये स्वर्गभूमि हैं, अतः यह देवताओं का क्रीड़ाघर है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गालाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उत्तरायतगिरिश्च माल्यवान् कीर्तितः स यमकोटिपत्तने।
रोमके च खलु गन्धमानो नीलशैल निषधावधी च तौ॥३८॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ के भूगोलाध्याय १७ तथा भुवनकोशाध्याय १९ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लङ्का यमकोटिः पश्चाद्रोमकमधःश्च सिद्धपुरम्।
मेरु स्थितः उत्तरतो दक्षिणतो दैत्यनिलयः स्यात्॥३॥" भूगो.॥

भुवनकोशाध्याय १९

लंकादेशात् क्षारसिन्धोश्च सौम्ये जम्बूद्वीपे ज्यावदम्भोधितज्ज्यः।
प्रालेयाद्रिः संगलस्तत्पयोर्ध्योर्मध्येखण्डं चापरं भारताख्यम्॥८॥
हेमकूटउदगायतो नगात् किंमनुष्यमनर्योयदन्तरम्।
उत्तरे च निषधस्ततो नगादन्तरे च हरिसंज्ञितं तयोः॥९॥
शृंगवानपि तु सिद्धपत्तनादुत्तरस्तुहिनशैलवत् स्थितः।
क्षारवारिनिधिशृंगमध्यगं चापवच्च कुरुखण्डमुच्यते॥१०॥
श्वेतशैलमपि चौतरे ततः प्राहुरन्तरनयोर्हिरण्मयम्।
नीलशैलमत उत्तरस्थितं रम्यमूचुरनयोर्यदन्तरम्॥११॥
नीलशैलनिषधान्तरोपगां गामुशन्ति शकलत्रयीकृताम्।
गन्धशैल उदगत्र रोमकान् माल्यवांश्च यमकोटिपत्तनात्॥१२॥
गन्धशैलजलराशिमध्यगं केतुमालमिह खण्डमीरितम्।
माल्यवज्जलधिमध्यवर्ति यत् तच्च भद्रयुतमश्वमुच्यते॥१३॥
माल्यवन्नगसुगन्धशैलयोर्मध्य संस्थितमिलावृत्ताह्वयम्।$\frac{१}{२}$॥

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में कुछ बातें आचार्योक्त कही हैं। यथा–

"समतान्मेरुमध्यात् तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देव निर्मिताः॥३७॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्ष नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा॥३८॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥३९॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः ॥४०॥
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः।
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः ॥४१॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम अध्याय में में आचार्योक्त कहा है—

''हिमहेमकूटगिर्योर्मध्ये किंपुरुषकं खण्डम् ॥१६॥
निषधाद्रिहेमकूटाचलयोर्मध्ये स्थितं च हरिवर्षम्।
शृंग्यद्रिसिद्धपुरयोः कुरुखण्डं चापवन्ध्ये ॥१७॥
शृंडिश्चेताचलयोर्यदन्तरं तद्विरण्मण्यं वर्षम्।
श्वेताद्रिनीलगिर्योर्मध्ये रम्याह्वयं वर्षम् ॥१८॥
तेऽप्पचलाः पूर्वापरजलराश्यन्तास्तु विज्ञेयाः ॥
मेरोर्याम्यो निषधः सौम्यो नीलस्तदन्तरं तुल्यम् ॥१९॥
प्राग् माल्यवान् सुराद्रेर्दीर्घो नीलाद्रिनिषधपर्यन्तः।
तद्वन् पश्चाद्गन्धाचलस्तयोरन्तरं तुल्यम् ॥२०॥''
यमकोटेर्भद्राश्वं माल्यवदवसानकं वर्षम्।
रोमकगन्धाचलयोर्यदन्तरं केतुमालाख्यम् ॥२१॥
मेरुतलेचतरस्रं तदिलावृतसंज्ञकं ज्ञेयम्।
भद्राश्वकेतुमाले ज्ञेये चतुरस्रके खण्डे ॥२२॥
इतराणि तु वर्षाणि क्षेत्रफलैस्तुल्यरुपाणि।

इदानीं मेरुसंस्थानमाह—

इह हि मेरुगिरिः किल मध्यगः कनकरत्नमयस्त्रिदशालयः।
द्रुहिणजन्मकुपद्मजकर्णिकेति च पुराणविदोऽमुमवर्णयन् ॥३१॥
विष्कम्भशैलाः खलु मन्दरोऽस्य सुगन्धशैलो विपुलः सुपार्श्वः।
तेषु क्रमात् सन्ति च केतुवृक्षाः कदम्बजम्बूवटपिप्पलाख्याः ॥३२॥
जम्बूफलामलगलद्रसतः प्रवृत्ता जम्बूनदी रसयुता मृदभूत् सुवर्णम्।
जाम्बूनदं हि तदतः सुरसिद्धसङ्घाः शश्वत् पिबन्त्यमृतपानपराङ्मुखास्तम् ॥३३॥
वनं तथा चैत्ररथं विचित्रं तेष्वप्सरो नन्दननन्दनं च।
धृत्याह्वयं यद्धृतिकृत् सुराणां भ्राजिष्णु वैभ्राजमिति प्रसिद्धम् ॥३४॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सरांस्यथैतेष्वरुणं च मानसं महाह्रदं श्वेतजलं यथाक्रमम्।
सरःसुरामारमणश्रमालसाः सुरा रमन्ते जलकेलिलसाः ॥३५॥
सद्रत्नकाञ्चनमयं शिखरत्रयं च मेरौ मुरारिक्रपुराणिपुराणि तेषु।
तेषामधः शतमखज्वलनान्तकानां रक्षोऽम्बुपानिलशशीशपुराणि चाष्टौ॥३६॥

अब पर्वतों के स्थान बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— इस (पूर्वोक्त) इलावृत के मध्य में स्वर्ण तथा रत्नमय कर्णाभूषण की जैसे मेरु पर्वत है। इस पर्वत के तीन शिखर हैं जहाँ पर देवताओं के रहने का स्थान है। इन शिखरों पर विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव के रहने के स्थान हैं। इन (शिखरों) का वर्णन पुराणविदों (व्यासादि) ने किया है। द्रुहिण ब्रह्मा का उत्पत्ति स्थान विष्णु भगवान का नाभी कमल है तद्रूप पृथ्वीपद्म है जिससे संबंधित है। कर्णिका कमल के अन्दर स्थित पीतवर्णा केसर की आवृत्ति है जो प्रसिद्ध है। इस प्रकार मेरु के ऊपर जहाँ ब्रह्मा अवस्थित है उसका नाम 'द्रुहिजन्मेति' है। उत्पत्ति काल में जिस प्रकार विष्णु के नाभी कमल में ब्रह्मा स्थित थे उसी प्रकार सृष्टिकाल में पृथ्वीकमल कर्णिका में ब्रह्मा स्थित है यह द्योतित होता है। कर्णिका से यहाँ केसर युक्तमूल देश है।

इन शिखरों के नीचे समन्तादि इन्द्रीलोक पालों के पुर स्थित हैं। मेरुपर्वत के चारों ओर पर्वतों के आधार हैं जो यमकोटि की दिशा से क्रमशः मन्दर पर्वत, सुगन्ध पर्वत, विपुलपर्वत तथा सुपार्श्व पर्वत हैं। इन पर्वतों में क्रमशः कदम्ब, जम्बू, वट तथा पीपलिका के ध्वज वृक्ष हैं। जम्बू वृक्षों के पके हुए फलों के रस की जम्बू नदी बहती है जिससे इलावत वर्ष की मिट्टी स्वर्णमय हो जाती है। अतः स्वर्ण को जम्बूनद भी कहते हैं। वहाँ पर रहने वाले देव सिद्ध गणों के समूह सभी नित्य उस जम्बूफल के अमृत से भी उत्तम रस को पीते हैं। इस वृक्षों के आश्रय भूत पुरोक्त प्रसिद्ध सर्वअवगत वन, मन्दर पर्वत पर चैत्ररथ नामक आश्चर्यकारक है और गन्धमादन पर्वत पर अप्सराओं को आनन्द देने वाला नन्दन उद्यान है। विपुल पर्वत पर धृति नामक वन है। दैत्यों के द्वारा किये जाने वाले उपद्रवों से त्रस्त देवता यहाँ पर सर्वतो भद्र कल्याण के लिए घृत एकत्रित करते थे। अतः उससे उत्पन्न नाम का यह वन है। सुपार्श्व पर्वत में वैभ्राज नामक देदीप्तमान प्रसिद्ध वन है। यहाँ मयूर, हंस, शुक (तोता), सारिका (मैना) तथा अनेक प्रकार के कूजना (कूकना) करने वाले पक्षी शोभायमान होते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस प्रकार चैत्ररथ, नन्दनक, धृति तथा वैभ्राज वन हैं।

लेकिन वन सरोवर के बिना अच्छे नहीं लगते हैं, अतः इनमें सरोवर भी हैं। ये यथा क्रम अरुण, मानस, महाह्रद तथा श्वेतजल हैं। इनके होने का पुराण प्रमाण है। इन सरोवरों में देवता लोग अप्सराओं के साथ मनोविनोद की कामना से जल क्रीडा करते हैं।

रत्न काञ्चन से युक्त मेरुपर्वत पर स्थित विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव के तीनों शिखरों के (जिनके नाम क्रमशः वैकुण्ठ धाम, शातकुम्भा तथा शिवलोक हैं) नीचे पुराणोक्त, आठ दिशाओं में आठ और अन्य नगर स्थित हैं जिनके नाम पूर्व में इन्द्र की अमरावति नगरी, आग्नेय में वह्न की तेजोवत नगरी, दक्षिण में यम की संयमिनि नगरी, नैर्ऋत्य में राक्षसों की कृष्णाङ्गना नगरी, पश्चिम में वरुण की श्रद्धावती नगरी, वायव्य में वायुदेव की गन्धवति नगरी, उत्तर दिशा में कुबेर (शशीनः) की महोदया नगरी, ईशान दिशा में महेश्वर भगवान (शिव) की नगरी यशोवती है (ये पुराणोक्त हैं)। इनके नीचे आठो दिक्पालों की आठों दिशाओं में नगरियाँ हैं। इनके मध्य भाग में सिद्ध महात्माओं की नगरी है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्यय १५ में आचार्योक्त कहा है—

"हरिविरिञ्चमहेश्वर मन्दिरै कनकरत्नमयैस्त्रिदशालयः।
त्रिशिखरो गिरिरेष विराजते शतमखादिदिगीशपुरावृतः॥४५॥
तेषूद्यानं चैत्रपूर्वरथं च गीर्वाणस्त्री नन्दनं नन्दनं च।
अन्यद्धृत्याख्यं च वैभ्राजसंज्ञं विभ्राजन्ते तानि कल्पद्रुमैश्च॥४३॥
सरोरुणा भाह्वयमेषु मानसं महाह्रदं चापि सितोदसंज्ञितम्।
व्रजन्ति येषु प्रतिवासरं स्त्रियः सहाप्सरोभिजैलकेलिलालसाः॥४२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भुवनकोशाधिकार १९ में आचार्योक्त कहा है—

"मेरुरत्र शकले प्रतिष्ठितो रत्नकाञ्चनमयः सुरालयः॥१४॥
माल्यवत् ककुभि तस्य मन्दरोगन्धयुक्तनिषधस्य मादनः।
नीलदिश्यय सुपार्श्वपर्वतः पर्वतश्च विपुलोऽन्यदिग्गतः॥१५॥
अरुणाख्यमथैषु मानसं क्रमशश्चापि महाह्वदं सरः।
ससितोदममुनि बिभ्रति श्रियमब्तेर्विहगैश्च काञ्चनैः॥१६॥
कदम्बजम्बूवटपिप्पलाह्वयान् वदन्ति तेष्वेन तरुन मनीषिणः।
वनं तथा चैत्ररथं सुनन्दनं धृत्याह्वयं भ्राजमतीव सुन्दरम्॥१८॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिभिः सुमेरुः शिखरैर्विराजिते सुरालयै काञ्चनतारनिर्मितैः।
महेशपद्मासनविष्णुधामभिः सविस्तृतैर्योजनमुच्छ्रितैरपि॥१६॥
महेन्द्रवह्नयन्तकरक्षसामधो जलेशवाताधिपशूलिनां क्रमात्।
पुराणि शेषामरमन्दिराणि च त्रिविष्टपं शास्ति च पाकशासनः॥२०॥''

सूर्य सिद्धान्त के भूगोलाध्याय में जो थोड़ा सा कहा है वह आचार्योक्त ही है। यथा—

''अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः॥३४॥
उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः।
अधस्तादसुरास्तद्वद् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः॥३५॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

धत्तूरपुष्पतुल्यो ह्युपरि विभागोऽमराचलस्यास्ति।
तत् प्राच्यामाधार स्तम्भवदचलोऽस्ति मन्दरोनाम॥२५॥
तद्वच्च गन्धमादन संज्ञो याम्ये विभागेऽस्ति।
विपुलः पश्चिमभागे सुपार्श्वसंज्ञस्तथोत्तरतः॥२६॥
एषु च कदम्बजम्बूवटपिप्पलसंज्ञकाः क्रमाद्वृक्षाः।
सन्त्यथ तज्जम्बूफलरसतो जम्बूनदी जाता॥२७॥
चैत्ररथं नन्दनकं धृतिवैभ्राजे वनानि च क्रमशः।
अरुणं मानससंज्ञं महाहदं श्वेतकं सरांस्येषु॥२८॥
भद्रतुरगभारतवर्षकेतुमालककुरुन् याता॥२९॥
ब्रह्माच्युतगौरीशा मेरोः शिखरत्रये वसन्त्येते।
तदधः शक्रप्रमुखा वसन्ति देवाः स्वकाष्ठासु॥४२॥

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में मेरु तथा नन्दनवन के लिए कहा है। यथा—

''मेरुर्योजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः।
नन्दनवनस्य मध्ये रत्नमयस्सर्वतोवृत्तः॥११॥''

तत्रान्यं विशेषमाह—

विष्णुपदी विष्णुपदात् पतिता मेरौ चतुर्धास्मात्।
विष्कम्भाचलमस्तकशस्तसरः संगतागता वियता॥३७॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सीताख्या भ्रदाश्वं सालकनन्दा च भारतं वर्षम्।
चक्षुश्च केतुमालं भद्राख्या चोत्तरान् कुरुन् याता॥३८॥
याकर्णिताभिलषिता दृष्टा स्पृष्टावगाहिता पीता।
उक्ता स्मृता स्तुता वा पुनाति बहुधापि पापिनः पुरुषान्॥३९॥
यां चलिते दलिताखिलबन्धो गच्छति वल्गति तत्पितृसङ्घः।
प्राप्ततटे विजितान्तकदूतो याति नरे निरयात् सुरलोकम्॥४०॥

अन्य विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— भगवान् विष्णु के पदों (पैरों) से निकल कर आकाशमार्ग से गंगा नदी चारों ओर स्थित विष्कम्भ रूप चारों पर्वतों पर स्थित मेरुपर्वत पर गिरती हुई भूगोल पर गिरती है। इससे नरक में गये हुए पितृगण यम पाश के बंधन से छूट जाते हैं। यह मेरु पर्वत से इस पर चारों दिशाओं में स्थित सरोवरों में गिरती है। गंगा अरुणसरोवर से मिलकर सीता नाम की हुई इलावत प्रदेश को पवित्र करती हुई भद्राश्ववर्ष में आती है तथा अलकनन्दा नाम से भारत वर्ष में आती है। चक्षु, केतुमाल और उत्तर की ओर से भद्राश्व तथा उत्तर में कुरु प्रदेश होती हुई जाती है।

इस के नाम श्रवणमात्र से, इच्छा करने मात्र से, आदरपूर्वक दर्शन मात्र से शरीर के स्पर्श मात्र से, समस्त शरीर के सभी अंगों पर जल डालने से और पीने से, उच्चारणमात्र से, ध्यान करने मात्र से और कई प्रकार से स्तुति करने से पापियों के पापों का नाश करके उनको पापमुक्त करके शुद्ध कर देती है। जिससे हमारे मन में हर्ष उत्पन्न होता है कि अब हमारी ऊर्ध्व गति अर्थात् उच्च गति (स्वर्गप्राप्ति आदि) हो जावेगी।

इस प्रकार गंगा के प्रति उपक्रम करने से उस मनुष्य के सभी पितृगण (पूर्वज) दलित और अखिल बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं तथा उनकी सद्गति हो जाती है। गंगा तीर पर बैठकर गंगा के बल से (यमराज के दूतों को मुष्टि घात से भगाकर) मनुष्य कुल सहित नरक लोक से स्वर्ग लोग में जाते हैं। अर्थात गंगा तीर बैठकर मनुष्य जब धार्मिक मोक्ष देने वाली क्रियायें करता है तो उनके बल से यमराज के दूत उस मनुष्य के कुल सहित पितृगणों को नरक से स्वर्ग में भेज देते हैं।

आर्यभट्ट (द्वि) ने भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में नदियों के लिए आचार्योक्त नाम बताये हैं। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"सीता नन्दा चतुर्भद्रा नद्यो विनिः सृतास्तेभ्यः॥२८$\frac{१}{२}$॥

इदानीं भारतस्यापि मध्ये नवखण्डानि सप्त कुलाचलांश्चाह—

ऐन्द्रं कशेरुशकलं किल ताम्रपर्णमन्यद्गभस्तिमदतश्च कुमारिकाख्यम्।
नागं च सौम्यमिह वारुणमन्त्यखण्डं गान्धर्वसंज्ञमिति भारतवर्षमध्ये॥४१॥
वर्णव्यवस्थितिरिहैव कुमारिकाख्ये शेषेषु चान्त्यजजना निवसन्ति सर्वे।
माहेन्द्रशुक्तिमलयर्क्षकपारियात्राः सह्याः सविन्ध्य इह सप्त कुलाचलाख्याः॥४२॥

भारत के अन्दर नो खण्ड तथा सात कुलाचल (पर्वत)—

सूर्य-प्रभा टीका— भारत के अन्दर नो खण्ड क्रमशः (१) ऐन्द्र (२) कशेरु (३) ताम्रपर्ण (४) गभस्तिमद (५) कुमारिका (६) नाग (७) सौम्य (८) वारुण और अन्तिम (९) गान्धर्व नामक खण्ड हैं।

इनमें से एक कुमारिका नामक खण्ड में वर्णव्यस्था प्रचलित है तथा शेष में अन्य सभी नीच जातियाँ रहती हैं।

भारत वर्ष में सात पर्वत क्रमशः (१) माहेन्द्र (२) शुक्ति (३) मलय (४) ऋक्ष (५) पारियात्रा (६) सह्य तथा (७) विन्ध्या हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भुवनकोशाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ऐन्द्रं कशेरुश्च सताम्रपर्ण गभस्तिमत् खण्डमतश्च कन्या।
ससौम्यनागाह्वयवारुणं च गान्धर्वमेतान्यथ भारताख्ये॥२४॥
माहेन्द्रशुक्त्याह्वयसह्यविन्ध्याः सपारियाता मलयर्क्षसंज्ञौ।
कुलाचला वर्णचतुष्कयुक्ते कुमारिकाख्येऽन्त्यजवन्त्यथाष्टौ॥२५॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"माहेन्द्रपारियात्रर्क्षमलयविन्ध्याः सशुक्तिसह्याश्च॥२३॥
भारतवर्षे गिरयो मैनाकश्चाष्टमोऽम्भोधौ।
ऐन्द्रादिकानि खण्डान्यन्यान्यपि सन्ति भारते वर्षे॥२४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ऐन्द्रं कशेरुकमत खलु ताम्रवर्ण खण्डं गभस्तिदमनं च कुमारिकाख्यम्।
सौम्ये च नागमथ वारुणनामधेयं गान्धर्व संज्ञमिति भारतमेव वर्षे॥४६॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुलाचल सप्त महेन्द्र शुक्ति सह्यर्क्षविन्ध्या मलयाचलश्च।
स पारियात्रोऽत्र च कन्यकाख्ये वर्णव्यवस्था नहि सेतुरत्र॥४७॥''

इदानीं लोकव्यस्थामाह—

भूर्लोकाख्यो दक्षिणे व्यक्षदेशात् तस्मात् सौम्योऽयं भुवः स्वश्च मेरुः।
लभ्यः पुण्यैः खे महः स्याज्जनोऽतोऽनल्पानल्पैः स्वैस्तपः सत्यमन्त्यः॥४३॥

लोकव्यवस्था—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्षदेश से दक्षिण गोलार्ध भूर्लोक, तथा उत्तरी गोलार्ध भुवः और मेरु स्वर्गलोक है। अर्थात् जम्बू द्वीपात्मक भूर्लोक भुवर्लोक है। भूर्लोक के निरक्षदेश की तह में दक्षिण की ओर जलसंज्ञक है। जम्बूद्वीप भूवर्लोक में निरक्षदेश के उत्तर में स्थित है। यह लघुवशिष्ट सिद्धान्तोक्त अनुसार है। बड़े पुण्य करने से इनकी तथा आकाश में स्थित इनसे ऊपर के लोक क्रमशः महः, जनः, तपः तथा अन्तिम सत्य लोक की प्राप्ति होती है। आचार्य कहते हैं यह सब पुराणों पर आधारित कहा गया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भूवनकोशाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''विषुवद्यम्ये लोकः पातालगतश्च भूरिति प्रथितः।
भुव इति मानव गम्यः स्वरिति सुमेरुः सुकृतिनां धाम॥२८॥
उपरि महस्तदनु जनस्ततस्तपः सत्यलोक उपरिष्टात्।
अधिकाधिकपुण्यवतां क्रमशः स्थानान्यमी लोकाः॥२९॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''भवति विषुवद्याम्यो लोको रसातल(ग) श्च
भूषयमपि भुवो मेरुः स्वः स्यान्महश्च तथोपरि॥४८॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''व्यक्षाद्दक्षिणभागे भूर्लोकोऽयं भुवः सौम्ये।
स्वर्गो मेरुर्गगने ऽप्युपर्युपरि संस्थिताश्चान्ये॥४१॥
तदुपरि नियतः प्रवहो वायुर्विचरति भमण्डलव्यापी।
तेन भ्रमणं भानां तदुपरि तु महर्जनतपः सत्याः॥४५॥''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं दिग्व्यवस्थितिमाह—

लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात् तदा दिनार्धं यमकोटिपुर्याम्।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव॥४४॥
यत्रोदितोऽर्कः किल तत्र पूर्वा तत्रापरा यत्र गतः प्रतिष्ठाम्।
तन्मत्स्यतोऽन्ये च ततोऽखिलानामुदक्स्थितो मेरुरिति प्रसिद्धम्॥४५॥

दिशा व्यवस्था बता रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— लङ्कापुर में सूर्य का यदि उदय हो तो दिनार्ध यमकोटि में पूरा होता है तथा उसके नीचे सिद्धपुर में अस्तकाल और रोमक प्रदेश में रात्रि का आधा भाग होता है। पृथ्वी के जिस स्थान पर सूर्य उदित होता है वह वहाँ की पूर्व दिशा है तथा उससे पीछे जहाँ सूर्य गत (अस्त) होता है वह पश्चिम दिशा है। इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा के दोनों ओर मत्स्य बिन्दुओं पर अन्य दिशायें हैं। उत्तर की ओर के बिन्दु का नाम मेरु प्रसिद्ध है तथा दक्षिण में कुमेरु बिन्दु होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रकशनोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लंकाया रव्युदये दिनावसानं हि सिद्धपुरे।
यमकोट्यां दिवसार्धं रोमकनगरेऽर्धरात्रं स्यात्॥३६॥
उदितो यत्रार्कः सा पूर्वाऽस्तं याति पश्चिमा तत्र।
सर्वत्र तद्विचिन्त्यं दिक्सिद्धै मेरुरुत्तरवान्॥४०॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भूगोलाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उदयमेति यदा पुरि रक्षसां व्रजति सिद्धपुरेऽस्तमयं तदा।
दिनदलं यमकोटिपुरे रवी रजनिम्यमुपैति च रोम के॥१२॥"

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय १२ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भद्राश्वोपरिगः कुर्याद् भारते तूदयं रविः।
रात्र्यर्धे केतुमाले तुं कुरावस्तमयं तदा॥७०॥"

अर्थात् जब भद्राश्व वर्ष में यमकोटि नगर के खमध्य पर सूर्य होता है उस समय भारतवर्ष में लंका क्षितिज पर सूर्योदय होता है। उस समय केतुमाल वर्ष अर्थात् रोमक पत्तन में मध्यरात्रि तथा कुरुवर्ष अर्थात् सिद्धपुर में सूर्यास्त होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमयस्सवितुरेवसिद्धपुरे।
मध्यान्हो यवकोट्यां रोमकविषये ऽर्धरात्रस्यात्॥१३॥"

इदानीं विशेषमाह—

यथोज्जयिन्याः कुचतुर्थभागे प्राच्यां दिशि स्याद्यमकोटिरेव।
ततश्च पश्चान्न भवेदवन्ती लङ्कैव तस्याः ककुभि प्रतीच्याम्॥४६॥
तथैव सर्वत्र यतो हि यत् स्यात् प्राच्यां ततस्तन्न भवेत् प्रतीच्याम्।
निरक्षदेशादितरत्र तस्मात् प्राचीप्रतीच्यौ च विचित्रसंस्थे॥४७॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— जैसे उज्जयनी से पृथ्वी के चतुर्थांश भागतुल्य पूर्व में यम कोटी होती है तो यमकोटि से पश्चिम में उज्जयिनी नहीं होती जिस प्रकार यमकोटि से पृथ्वी के चतुर्थांश भाग तुल्य में लङ्का होती है।

इष्ट प्रदेश से उत्तराभिमुख मेरु स्थान तथा निरक्षाभिमुख दक्षिण स्थान को मिलाने वाली रेखा बनाकर उसकी मत्स्य से पूर्वापर साधित करे। इस प्रकार करने से जहाँ पूर्व भाग पर वह काटे वहाँ से पुनः उत्तर-दक्षिण साधित करके इसका पूर्वापर साधित करने से वह उस पूर्वापर (पूर्वसाधित) पर पतित नहीं होता, उसका अलग स्थान आता है। अर्थात् इससे यह पता चलता है कि उत्तर-दक्षिण रेखा बदलने से पूर्वापर रेखा बदल जाती है। इस प्रकार सर्वत्र उत्तर-दक्षिण रेखा से यदि यमकोटि पूर्व में है तो यमकोटि से उत्तर दक्षिण रेखा पर सर्वत्रस्थान पश्चिम दिशा में नहीं होते। क्योंकि निरक्षदेश पर स्थित विभिन्न स्थानों से होकर जाने वाली उत्तर-दक्षिण रेखाओं के प्रत्येक स्थान की पूर्वापर रेखा भिन्न-भिन्न होती है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मेरौ रविभ्रमति भुजगतः समन्तादाशा न काचिदपि तत्र विचारणीया।
पूर्व हि दर्शनमुपैति स चेह पूर्वा तत्रास्ततो भवति सैव कथं प्रतीची॥"

इदानीं चक्रभ्रमणव्यवस्थामाह—

निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ ध्रुवौ नरः पश्यति दक्षिणोत्तरौ।
तदाश्रितं खे जलयन्त्रवत् तथा भ्रमद्भचक्रं निजमस्तकोपरि॥४८॥
उदग्दिशं याति यथा यथा नरस्तथा तथा खान्नतमृक्षमण्डलम्।
उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेस्तदन्तरे योजनजाः पलांशकाः॥४९॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

योजनसंख्या भांशैर्गुणिता स्वपरिधिहृता भवन्त्यंशाः।
भूमौ कक्षायां वा भागेभ्यो योजनानि च व्यस्तम्॥५०॥

चक्र भ्रमण व्यवस्था—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्ष देशस्थ प्राणियों को अपने क्षितिज मण्डल में ही उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव स्थित दिखाई देते हैं तथा उनके ऊपर का आकाश जलयंत्र के समान तथा अपने मस्तक के ऊपर (नक्षत्र) भचक्र भ्रमण करता हुआ दिखाई देता है।

उत्तर दिशा की ओर वहाँ से जैसे-जैसे जाते है, वैसे-वैसे ही अक्ष मण्डल में नक्षत्रचक्र नत होता हुआ दिखाई देता है और उत्तर ध्रुव उन्नत दिखाई देता है। अपने स्थान के अक्षांश निरक्ष देश से जितने अंतर पर होते हैं उतने योजन पलांश होते हैं। योजन संख्या को ३६० से गुणा करके भूपरिधि योजन से विभक्त करने से स्वस्थान के अक्षांश प्राप्त होते हैं। यदि भूपरिधि योजन में ३६० अंश प्राप्त होते हैं तो अभीष्ट (अपसार) योजन दूरी में कितने अंश होंगे? इस प्रकार अनुपात करने से यह प्राप्त होता है। और यदि अनुपात करें कि ३६० अंश परिधि में भूपरिधि प्राप्त होती है तो अभीष्ट अक्षांश में कितनी होगी? इस प्रकार प्राप्तफल निरक्ष देश और स्वदेश के अन्तर योजन प्राप्त होते हैं। अर्थात

$$\text{अपसार योजन (स्व तथा निरक्ष स्थान अन्तर योजन)} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{अक्षांश}}{३६०}$$

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''याम्योत्तरस्थौ क्षितिजाश्रितौ ध्रुवौ सदैव पश्यन्ति निरक्षदेशजाः।''५४॥

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''क्षितिलग्ने ध्रुवतारे पश्यति पुरुषो निरक्षदेशस्थः।२९$\frac{१}{२}$।
अक्षांशका ध्रुवोन्नतिभाग भूमेर्निरीक्षकस्थाने॥३१॥
अक्षांशैः संगुणितं मध्यं परिधिं भजेद्भचक्रांशैः॥३३॥
लब्धो योजननिचयो निरक्षनिजदेशयोर्मध्ये।
याम्योत्तरनगरान्तरयोजनगणितं तदक्षविश्लेषम्॥३४॥
गतनै विभेजल्लब्धं मध्यमपरिधेर्भवेन्मानम्।$\frac{१}{२}$।''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय १२ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"निरक्षदेशसंस्थानामुभये क्षितिजाश्रये ॥४३॥

अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः ॥$\frac{१}{२}$॥

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः।
निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते ॥७२॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गालाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अन्यत्र सर्वतो दिशमुन्नमति भपञ्जरो ध्रुवो नमति।
लङ्कायामुडुचक्रं पूर्वापरगंध्रुवौ क्षितिजे ॥५॥
अक्षांश कुपरिधिवधान्मण्डलभागाप्त योजनैर्विषुवत्।
नतभागयोजनैरवेमुपरि सूर्योऽन्यदनुपातात् ॥१०॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहभ्रमसंस्थानाधिकार १८ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"निरक्षदेशोपरिगौ ध्रुवावुभौ स्वदक्षिणोदक्क्षितिजप्रसक्तौ।
सदात्र पश्यन्ति तदुत्तरं सुराः स्वमूर्ध्वगं दक्षिणमिन्द्रशत्रवः ॥४॥
सदैव दैत्यैस्तनयैस्तथादितेर्भचक्रमुर्वीजगतं प्रदृश्यते।
न दृश्यतेऽपक्रमवृत्तदक्षिणं दलं सुरैर्नान्यदपीतरै क्वचित् ॥५॥
सुरासुराणां विषयाद् यतो यतो यथा यथा गच्छति यश्च कश्यन।
स तत्र तत्रोन्नतमृक्षमण्डलं तथा तथा पश्यति खान्नतं ध्रुवम् ॥६॥
भवेत् खमध्याद् ध्रुवकस्य या नतिर्भञ्जरस्योन्नतिरेव साथवा।$\frac{१}{२}$।"

अतस्तत्र ध्रुवर्क्षसंस्थानमाह—

सौम्यं ध्रुवं मेरुगताः खमध्ये याम्यं च दैत्या निजमस्तकोर्ध्वे।
सव्यापसव्यं भ्रमदृक्षचक्रं विलोकयन्ति क्षितिजप्रसक्तम् ॥५१॥

ध्रुव तथा भचक्र की स्थिति—

सूर्य-प्रभा टीका— उत्तरीध्रुव, मेरुपृष्ठस्थ मनुष्य के अपने खमध्य में तथा दक्षिण ध्रुव दैत्यों के अपने मस्तक के ऊपर होता है। उत्तरी ध्रुव से देखने से भचक्र सव्य तथा दक्षिण ध्रुव से देखने पर अपसव्य क्रम से अपने क्षितिज में घूमता हुआ दिखाई देता है।

विशेष— सूर्य सिद्धान्त के भूगोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यथा—

"सव्यं भ्रमति देवानामपसव्यं सुरद्विषाम्।
उपरिष्टाद् भगोलोऽयं व्यक्षे पश्चान्मुखः सदा॥५५॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सौम्यमपमण्डलार्धे मेषाद्यं सव्यगं सदा देवाः।
पश्यन्ति तुलाद्यर्धं दक्षिणमपसव्यगं दैत्याः॥७॥"
ध्रुवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम्॥४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सौम्यं हि मेषाद्यपमण्डलार्धं पश्यन्त्यमी सव्यगमेव देवाः।
तुलादिकं दक्षिणमन्यदर्धं सदैव दैत्यास्त्वपसव्यवर्ति॥५५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहभ्रमसंस्थानाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सदैव नित्यं प्रहवहेण वायुना निरक्षदेशोत्परिगो भपञ्जरः।
स्वपश्चिमाशाभिमुखोऽपि नीयतेऽसुरामराणामपसव्यसव्यगः॥३॥"

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"देवाः पश्यति भगोलार्धमुदंमेरु संस्थितास्सव्यं।
अपसव्यगं तथार्धं दक्षिण बडवामुखि प्रेताः॥१६॥"

इदानीं भूपरिधिमानं प्राक्कथितमपि विशेषार्थमनुवदति स्म—

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय-४९६७

स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिका १५८१$\frac{१}{२४}$।

पृष्ठक्षेफलं तथा युगगुणत्रिंशच्छराष्टाद्रयो ७८५३०३४

भूमेः कन्दुकजालवत् कुपरिधिव्यासाहतेः प्रस्फुटम्॥५२॥

पूर्वकथित भूपरिधिमान से विशेष अर्थ कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व में भूपरिधि का मान ४९६७ योजन तथा व्यास १५८१$\frac{१}{२४}$ योजन कहा है। भूपृष्ठफल ७८५३०३४ गेंद के ऊपर जाल के समान होता है। यह भूपरिधि को व्यास से गुणा करने से प्राप्त होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्योक्त व्यासमान १५८१$\frac{१}{२४}$ के पूर्णांक को व्यास मानकर वृत्त की परिधि के १००वें भाग से ज्या उत्पत्ति की विधि से ज्या साधन करे। जितने संख्यक विभाग की ज्या हो उसको उतनी संख्या से गुणा करने से परिधि का मान प्राप्त होता है। अतः वृत का १०० वाँ भाग सरल रेखावत होता है और २०००० व्यास में ६२८३२ परिधि का मान आर्यभट ने स्वीकार किया है। इसी प्रकार श्रीधराचार्य और ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने व्यास के वर्ग को दश के वर्गमूल से गुणा करके परिधि का मान स्थूल स्वीकार किया है।

$$\text{पृष्ठ क्षेत्रफल} = \frac{३९२७}{१२५०} \times \text{व्यास} \times २ \text{ त्रिज्या}$$

$$= \frac{३९२७}{१२५०} \times (१५८१)^२ = ७८५३०३४ \text{ वर्गयोजन प्राप्त}$$

होता है। अर्थात् पृष्ठ क्षेत्रफल = परिधि × व्यास सूत्र प्राप्त होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवन कोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त सूत्र दिया है। जिसमें अपनी-अपनी भूपरिधि मान से उसका पृष्ठ क्षेत्रफल ज्ञात कर सकते हैं। यथा—

"परिधिघ्नो व्यासः स्यात् कन्दुकजालोपमं कुपृष्ठफलम्॥३८॥"

अन्य आचार्यों ने भी यही सूत्र कहा है।

लल्लोक्तस्य नगशिलीमुखबाणभुजङ्गमेत्यादेर्भूपृष्ठफलस्य दूषणमाह—

दुष्टं कन्दुकपृष्ठजालवदिलागोले फलं जल्पितं
लल्लेनास्य शतांशकोऽपि न भवेद्यस्मात् फलं वास्तवम्।
तत् प्रत्यक्षविरुद्धमुद्धतमिदं नैवास्तु वा वस्तु वा
हे प्रौढा गणका विचारयत तन्मध्यस्थबुद्ध्या भृशम्॥५३॥

लल्लोक्तभूपृष्ठफल २,८५,६३,३८,५५७ वर्गयोजन में दूषण कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— लल्लाचार्य ने गेंद के पृष्ठ के समान पृथ्वी गोल का जो दोष युक्त मान कहा है वह केवल व्यर्थप्रलाप (बकवास) है। वह वास्तविक पृष्ठफल के शतांश तुल्य भी शुद्ध नहीं है। गणित की प्रत्यक्षता के विरुद्ध यह मान लल्ल ने कहा है जो वास्तव में नहीं है। अतः आचार्य कहते हैं कि हे प्रौढ़गणक! आप अपनी बुद्धि से इस पर गहराई से विचार करेंगे कि कौन सी गणना सही है? इस प्रकार आचार्य ने विद्वानों से आग्रह किया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सद्युक्तिः—

यत् परिध्यर्धविष्कम्भं वृत्तं कृतं किलांशुकम्।
तेनार्धश्छाद्यते गोलः किंचिद्वस्त्रेऽवशिष्यते ॥५४॥
गोलक्षेत्रफलात् तस्माद्वस्त्रक्षेत्रफलं यतः।
सार्धद्विगुणितासन्नं तावदेवापरे दले ॥५५॥
एवं पञ्चगुणात् क्षेत्रफलात् पृष्ठफलं खलु।
नाधिकं जायते तेन परिधिघ्नं कुतः कृतम् ॥५६॥
वृत्तक्षेत्रफलं यस्मात् परिधिघ्नं न युक्तिमत्।
दुष्टत्वाद्गणितस्यास्य दुष्टं भूपृष्ठजं फलम् ॥५७॥

पूर्वोक्त के साधन की सही विधि—

सूर्य-प्रभा टीका— गोल की परिधि के आधे के तुल्य व्यास मान के वृत्त तुल्य वस्त्र को उस गोल पर लपेटने से उस गोलार्ध के ढक जाने पर भी कुछ वस्त्र शेष रह जाता है। इस प्रकार करने से गोल व्यास के वृत्त वस्त्र क्षेत्रफल से गोलार्ध का पृष्ठफल २$\frac{१}{२}$ गुणित के लगभग होता है और इतना ही दूसरे गोलार्ध के लिए होगा। इस प्रकार वस्त्र के वृत्त के क्षेत्रफल से पांच गुणा से अधिक गोल का पृष्ठफल नहीं होता, न्यून ही होता है। तब फिर वृत्तफल तथा गोल परिधि के गुणा के तुल्य गोलपृष्ठ फल कैसे होगा? जैसा कि लल्लाचार्य ने 'वृत्तक्षेत्रफलं परिधिघ्नं समंततो भवति गोलपृष्ठफलम्' कहा है। गणित में गहन त्रुटि होने से भूपृष्ठफल जो लल्लाचार्य ने साधित किया है वह भी त्रुटिपूर्ण है।

लेकिन वृत्त के क्षेत्रफल का चार गुणा गोल का पृष्ठफल होता है अर्थात् गोल के व्यास और परिधि के गुणा के तुल्य होता है।

अथान्यथा प्रतिपाद्यते—

गोलस्य परिधिः कल्प्यो वेदघ्नज्यामितैर्मितः।
मुखबुध्नगरेखाभिर्यद्वदामलके स्थिताः ॥५८॥
दृश्यन्ते वप्रकास्तद्वत् प्रागुक्तमपरिधेर्मितान्।
ऊर्ध्वार्धः कृतरेखाभिर्गोले वप्रान् प्रकल्प्येत् ॥५९॥
तत्रैकवप्रकक्षेत्रफलं खण्डैः प्रसाध्यते।
सर्वज्यैक्यं त्रिभज्यार्धहीनं त्रिज्यार्धभाजितम् ॥६०॥
एवं वप्रफलं तत् स्याद्गोलव्याससमं यतः।
परिधिव्यासघातोऽतो गोलपृष्ठफलं स्मृतम् ॥६१॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्य प्रकार से प्रतिपादन—

सूर्य-प्रभा टीका— आँवले के फल के समान किसी गोलाकार पृष्ठ पर उसके मुख से तल तक रेखायें खींचने से उनके बीच का क्षेत्र वृत्ताकार अर्थात् वलयाकार दिखाई देता है। गोल की संख्या के तुल्य इन वलयाकार भागों को कल्पित करके उनमें से एक क्षेत्र का क्षेत्रफल साधित करके सभी के योग तुल्य गोलपृष्ठ क्षेत्रफल होता है। धीवृद्धिदग्रंथ में कहे अनुसार एकपाद में २४ ज्यायें कल्पित की हैं। अतः गोल की परिधि २४×४=९६ कल्पित करके एक एक हाथ दूरी पर ऊपर से नीचे रेखायें खींचने से ९६ वप्राकार क्षेत्र बनावें। उस एक वप्र के आधे में एक-एक हाथ दूरी पर तिर्यग्रेखा खेंचने से ज्या संख्या तुल्य (२४) खण्ड कल्पित करे। यहाँ प्रत्येक जीवा में प्रथक्-प्रथक् त्रिज्या से भाग देने से प्राप्तफल तिर्यग्रेखा के मान के तुल्य होता है और नीचे की ओर खड़ी रेखा एक हस्त तुल्य होती है और ऊपरीगत रेखायें ज्यावशात कहीं-कहीं कुछ न्यून होती है लेकिन शेष सर्वत्र लम्ब एक हाथ तुल्य मान का होता है। लीलावति में क्षेत्रव्यवहार अध्याय में चतुर्भुजों के फल आनयन के श्लोक २५ में आचार्य ने कहा है कि 'चतुर्भुजेऽन्यत्र समानलम्बे लम्बनं निघ्नं कुमुखैक्यखण्डम्'' अर्थात जिन चतुर्भुजों में भुजायें असमान हों लेकिन लम्ब समान हो वहाँ चतुर्भुज का क्षेत्रफल मुख और आधार के योग के आधे को लंब से गुणा करने से प्राप्तफल होता है। इस सूत्र द्वारा सभी खंडों के फलों का योग करने से उस वप्रकार्ध का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसका दुगुणा करके एक वप्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसके साधन के लिए आचार्य ने सूत्र दिया है।

$$\text{एक वप्र का क्षेत्रफल} = \frac{\text{सर्व ज्याओं का योग} - \frac{\text{त्रिज्या}}{२}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{२}}$$

यहाँ सर्वज्या योग = ५४२३३ होता है। इसमें से त्रिज्यार्ध = १७१९ घटाने से शेष ५४२३३ – १७१९ = ५२५१४ प्राप्त हुआ। इसमें त्रिज्यार्ध = १७१९ का भाग देने से प्राप्तफल ३०।३३ गोल के व्यास तुल्य एक वप्रका का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस ३०।३३ व्यास से परिधि का मान = $\frac{३०।३३ \times ३९२७}{१२५०}$ = ९६।

यही हमने प्रारंभ में परिधि का मान माना था।

इस प्रकार सभी (९६) वप्रका क्षेत्रों का क्षेत्रफल = व्यास × परिधि

यही सूत्र भास्कराचार्य ने लीलावति के वृत्तव्यवहार में श्लोक ४३ में कहा है। लेकिन यह सूत्र भास्कराचार्य का स्वयं का नहीं है।

पूर्व श्लोक ५२ की व्याख्या में हमने आर्यभट (द्वि.) द्वारा कहा हुआ यही सूत्र उद्धृत किया है वह भी ध्यान रखें।

इदानीं भूमेः प्रलयभेदौ प्रलयांश्चाह—

वृद्धिर्विधेरह्नि भुवः समन्तात् स्याद्योजनं भूभवभूतपूर्वैः।
ब्राह्मे लये योजनमात्रवृद्धेर्नाशो भुवः प्राकृतिकेऽखिलायाः॥६२॥
दिने दिने यन्म्रियते हि भूतैर्दैनंदिनं तं प्रलयं वदन्ति।
ब्राह्मं लयं ब्रह्मदिनान्तकाले भूतानि यद्ब्रह्मतनुं विशन्ति॥६३॥
ब्रह्मात्यये यत् प्रकृतिं प्रयान्ति सर्वाण्यतः प्राकृतिकं कृतीन्द्राः।
लीनान्यतः कर्मपुटान्तरत्वात् पृथक् क्रियन्ते प्रकृतेर्विकारैः॥६४॥
ज्ञानाग्निदग्धाखिलपुण्यपापा मनः समाधाय हरौ परेशे।
यद्योगिनो यान्त्यनिवृत्तिमस्मादात्यन्तिकं चेति लयश्चतुर्धा॥६५॥

पृथ्वी के प्रलयभेद—

सूर्य-प्रभा टीका— प्राणियों का प्रतिदिन होने वाला नाश मृत्यु आदि दैनंदिन प्रलय है। एक हजार चतुर्युग बीतने पर जब ब्रह्मा जी का एक दिन समाप्त हो जाता है उस समय तीनों लोकों सहित सृष्टि का जो संहार (लय) होता है वह ब्राह्मलय अथवा नैमित्तिक प्रलय है। इस समय पुण्यक्षीण तथा पापी यह लोक कालवश ब्रह्मशरीर में प्रवेश कर जाता है। ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख में, बाहों में क्षत्रिय, दोनों ऊरुओं में वैश्य तथा दोनों पैरों में शूद्र प्रवेश कर जाते हैं। इसके पश्चात् ब्रह्मा की रात्रि पूर्ण हो जाने पर पुनः ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना के लिए चिंतन करने पर उनके मुखादि स्थानों से चारों वर्ण ब्राह्मण आदि अपने अपने कर्मों से उत्पन्न होते हैं। इस प्रलय में भुवलोक के योजन मात्र वृद्धि का विलय होता है, समस्त का नहीं। और जब ब्रह्मा की आयु के अन्त में प्रलय होती है तब वह महाप्रलय कहलाती है।

इस प्रलय में ब्रह्मामें ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्ड में पञ्च भौतिक, भूमि का जल

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में, जल का तेज में, तेज का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का अहंकार में तथा अहंकार का महत्तत्व में, महत्त्व का प्रकृती में इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति से भिन्न विपरीत क्रम में प्रलय हो जाती है। इसी प्रकार सभी सात आवरण रूप भुवन लोक के हैं वे सब भी परस्पर लीन हो जाते हैं। न्यूनाधिक से रहित जो सत्वादि तीनों गुणों की साम्यावस्था है उसी को प्रकृति कहते हैं और इसी का नाम प्रधान है। यह प्रधान ही सम्पूर्ण जगत का परम कारण है। यह प्रकृति व्यक्त और अव्यक्त रूप से सर्वमयी है, इसलिए अव्यक्त में व्यक्त रूप लीन हो जाता है।

आध्यात्मिक, अधिदैविक और अधिभौतिक तीनों प्रकार के पापों को जानकर ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होने पर पण्डित जनों द्वारा इनके द्वारा (ज्ञान और वैराग्य) इस सृष्टि का आत्यन्तिक प्रलय होता है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शिरोमणि के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है–

"दिने विरिञ्चस्य विवृद्धिरुर्व्याः स्याद्योजनं जन्तु तृणाभिवृद्धया।
तस्यैव रात्रौ खलु कृत्रिमाया मृदो विनाशः प्रलयाम्बुवृष्ट्या॥२९॥"

अथ ब्रह्माण्डगोलमाह—

भूभूधरत्रिदशदानवमानवाद्या ये याश्च धिष्ण्यगगनेचरचक्रकक्षाः।
लोकव्यवस्थितिरुपर्युपरि प्रदिष्टा ब्रह्माण्डभाण्डजठरे तदिदं समस्तम्॥६६॥

ब्रह्माण्डगोल—

सूर्य-प्रभा टीका— बर्तन रूपी ब्रह्माण्ड के गर्भ में भूमि, पर्वत, देवता, दानव, मानव आदि तथा नक्षत्र ग्रह तथा इनकी भ्रमण कक्षायें, एक के ऊपर एक अवस्थित भू, भुव, स्वः से ऊपर सत्यलोक आदि सभी अपने-अपने स्थान पर अवस्थित है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ब्रह्माण्डभाण्डोदरवर्तिकृत्स्नमेतद्यदुक्तं क्रमशो यथाऽत्र।
तस्यैव ब्राह्म्यः परिधिः खकक्षा विवस्वतः सा महसां च सीमा॥४१॥"

इदानीमन्योदितं ब्रह्माण्डमानं पूर्वं कथितमपि प्रसङ्गादनुवदति स्म—

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि-१८७१२०६९२०००००००
र्ज्योतिश्शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तद्ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं
केचित् प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥६७॥
करतलकलितामलकवदमलं सकलं विदन्ति ये गोलम्।
दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसः स परिधिरुदितस्तैः ॥६८॥
ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि।
यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः ॥६९॥

पूर्व कथितब्रह्माण्ड मान आदि का प्रसङ्गवश पुनः कथन—

सूर्य-प्रभा टीका— इसी ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के कक्षाध्याय के श्लोक १ से ३ की व्याख्या देखें। यहाँ ६७ से ६९ तक आचार्य ने उन्हीं तीन श्लोकों को पुनः कहा है।

इति गोलाध्याये भुवनकोशः

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के भुवनकोशाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ मध्यगतिवासना

इदानीं भूमेरुपरि सप्तवायुस्कन्धास्तानाह—

भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वः स्यादुद्वहस्तदनु संवहसंज्ञकश्च।
अन्यस्ततोऽपि सुवहः परिपूर्वकोऽस्याद्वाह्याः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः॥१॥
भूमेर्बहिर्द्वादशयोजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्।
तदूर्ध्वगो यः प्रवहः स नित्यं प्रत्यग्गतिस्तस्य तु मध्यसंस्था॥२॥
नक्षत्रकक्षाखचरैः समेतो यस्मादतस्तेन समाहतोऽयम्।
भपञ्जरः खेचरचक्रयुक्तो भ्रमत्यजस्रं प्रवहानिलेन॥३॥

भूमि के ऊपर सात प्रकार की वायु की परतें—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमि गोल के ऊपर क्रमशः सात प्रकार की वायु की परतें एक के ऊपर एक भुवायु, प्रवह इसके ऊपर उद्वह, इसके ऊपर संवह, इसके ऊपर सुवह, इसके ऊपर परिवह तथा सबसे ऊपर परावह हैं। ये सात प्रकार की वायु एक एक के ऊपर एक विचरण करती हैं ऐसा पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

भूमि के बाहर चारों ओर बारह (१२) योजन दूरी तक भुवायु का गोल है जिसमें बादल, विद्युत आदि भी स्थित हैं। इस भुवायु गोल के ऊपर प्रवह वायु का गोल है जो पश्चिमाभिमुख पृथ्वी के चारों ओर नित्य (विचरण) संचारित रहती हैं। इसकी गति मध्यम गति मानी गई है अर्थात इसकी गति नियत है न तो अनियत गति है और न ही अनियत इस की दिशा है, सदा पश्चिमाभिमुख रहती है।

भपञ्जर में नक्षत्र तथा अपनी अपनी कक्षा क्रम में सप्त ग्रह ऊर्ध्वक्रम में स्थिति सहित समाहित होकर प्रवह वायु के द्वारा भ्रमण करते रहते हैं। नक्षत्रों की (स्वयं की) गति नहीं होती है। वे सदा स्थिर रहते हैं जब कि ग्रहादि प्रवह वायु वश पश्चिमाभिमुख निरंतर स्वस्वकक्षा में भ्रमणशील रहते हैं।

आचार्य ने श्लोक २ में 'आद्यम्' शब्द को अन्य आचार्योक्त 'उल्का, इन्द्र धनुष, गन्धर्व नगर' आदि के लिए प्रयुक्त किया है, जो पुराणोक्त भी हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कठयोजनानि भूमेर्भूवायुर्भ्रमति सर्वकाष्ठासु।
तत्रैवाम्बुदकार्मुकनिर्घातपुरादयः सन्तिः ॥४४॥
तदुपरि नियतः प्रवहो वायुर्विचरित भमण्डलव्यापी।$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्धीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहभ्रमसंस्थानाधिकार १८ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"आवहः प्रवह उद्वहस्तथा संवहः सुपरिपूर्वकौ वहौ।
सप्तमस्तु पवनः परावहः कीर्तितः कुमरुदावहोऽपरैः ॥१॥
सदैव नित्यं प्रवहेण वायुना निरक्षदेशोपरिगो भपञ्जरः।
स्वपश्चिमाशाभिमुखोऽपि नीयतेऽसुरामराणामपसव्यसव्यगः ॥३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"निर्घातोल्काघनसुरधनुर्विद्युदन्तः कुवायोः सन्दृश्यन्ते खनगरपरीवेषपूर्व तथान्यत्॥५२॥
नौस्थोऽनुलोमगमनादचलं यथा न चामन्यते चलति नैवमिलाभ्रमेण।
लङ्कासमापरगतिप्रचलद्भचक्रमाभाति सुस्थिरमपीति वदन्ति केचित्॥१५॥
यद्येवमम्बरचरा विहगाः स्वनीडमासादयन्ति न खलु भ्रमणे धरित्र्याः।
किञ्चाम्बुदा अपि न भूरिपयोमुचः स्युर्देशस्य पूर्वगमनेन चिराय हन्त॥१६॥
भूगोलवेगजनितेन समीरणेन केत्वादयोऽप्यपरदिग्गतयः सदा स्युः।
प्रासादभूधरशिरांस्यपि सम्पतन्ति तस्माद्भ्रमत्युडुगणस्त्वचलाऽचलैव॥२७॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ध्रुवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलाक्षिप्तम्॥४॥"

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के गोलपाद में भपञ्जर का पश्चिमाभिमुख भ्रमण कहा है। यथा—

"उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुनाक्षिप्तः।
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरस्सग्रहो भ्रमति॥१०॥"

इदानीं ग्रहाणां पूर्वगतिमनुपलक्षितामपि दृष्टान्तेन दृढीकुर्वन्नाह—

यान्तो भचक्रे लघुपूर्वगत्या खेटास्तु तस्यापरशीघ्रगत्या।
कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या यान्तो न कीटा इव भान्ति यान्तः॥४॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रहों की पूर्वाभिमुखगति अनुपलक्षित होने से दृष्टान्त द्वारा इसको दृढ़ता से कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहों की पूर्वाभिमुख गति लघु तथा उसके विपरीत पश्चिमाभिमुख गति शीघ्रतर होती है। अतः जिस प्राकर कुम्हार का चक्र शीघ्रगति से भ्रमण करता है और उस पर बैठा एक कीट यदि उसके विपरीत दिशा में गतिमान हो तो कीट सहित चक्र की शीघ्रगति के कारण कीट की विपरीत लघु गति दृष्टिगोचर नहीं होती है, उसी प्रकार ग्रहों की पूर्वाभिमुख लघु गति दृष्टि को दृष्ट नहीं होती।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ज्योतिश्चक्रं प्रवहमरुता भ्राम्यते प्रत्यगेतत्
तत्स्थाः शश्वद्गगनगतयो यान्ति यान्तस्तथैव॥५३।"

इदानीं मध्यगतिवासनां विवक्षुरादौ तावद्भदिनपूर्वकं रवेः स्फुटसावनदिनमाह—

समं भसूर्यावुदितौ किलाक्ष्यां षष्ट्या घटीनामुदितं पुनर्भम्।
रविस्ततः स्वोदयभुक्तिघातात् खाभ्रष्टभू १८०० लब्धसमासुभिश्च॥५॥
समागतासुसंयुता रवेस्तु षष्टिनाडिकाः।
स्फुटं द्युरात्रमुद्गमाद्द्युभुक्तितश्च तच्चलम्॥६॥
षष्ट्या घटीनां भदिनं सदाक्ष्यां तद्भुक्तितुल्यासुयुतं खराशोः।
स्यान्मध्यमं सावनमेवमब्दे तत्संख्यका भभ्रमतो निरेका॥७॥

मध्यगतिवासना आरंभ करने से पहले सूर्य के नक्षत्र दिन से स्फुट सावन दिन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— किसी दिन सूर्य तथा किसी नक्षत्र (तारा) के एक साथ उदय होने के पश्चात् दूसरे दिन पुन साठ (६०) घटी पश्चात नक्षत्र के उदय हो जाने पर भी सूर्य का उदय नहीं होता वरन कुछ समय पश्चात होता है। इस समय अन्तराल को रविस्थित राशि के स्वादेय मान से गुणा करके राशिकला मान १८०० से विभक्त करने से अनुपात द्वारा प्राप्त फल सूर्य की स्फुट गति कला क्रांतिवृत्त में पूर्वाभिमुख गति होती है। इस प्रकार प्राप्त असु तुल्य सयम पश्चात् नक्षत्र के उदय के बाद सूर्य का उदय होता है। अतः नक्षत्र उदय के साठ घटियों से इतने समय अधिक तुल्य स्फुट दिनरात (अहोरात्र) होता है। इस प्रकार पूर्व (पीछे) में उदित होते हुए पूरी राशि का उदय होता है। इसी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकार अन्य ग्रहों के लिए भी होता है। पुनः साठ घटी सूर्य की मध्यम भुक्ति तुल्य सावन दिनरात कहते हैं यह मध्यमगति है। इस प्रकार वर्ष के अन्त में जितने स्फुट सावन दिन होते हैं वे मध्यमान से होते हैं। गति में ह्रास तथा वृद्धि तुल्य हो जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि नित्य रवि की गति लिप्ता नक्षत्र गति से जितनी लिप्ता अधिक होती है उतना अधिक एक सावन दिन होता है। अतः नक्षत्र दिवस संख्या में से एक दिवस कम करने से सूर्य (आदि ग्रहों) के सावन दिनसंख्या एक वर्ष में होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"चन-घटिकमहोरात्रं तन्नाक्षत्रं यतोधिष्ण्यम्॥५४॥
प्रवहानिलवेगवशात् पुनरुदयं याति वा निजस्थानम्।
उदयात् पुनरुदयः स्यात् सावनदिवसेन भेषु नित्योऽसौ॥५५॥"
भदिनं सूर्यादीनां निजगति लिप्तासुभिः सहितम्।
सावनदिनं तु चित्रं स्फुटभुक्तेश्चञ्चलत्वेन॥५६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यगतिवासनाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"नित्यं रविगति लिप्तासमासुभिः सावनो भावः।
यस्माद्रविभगणदिनान्यतः सरूपाणि भाहाः स्युः॥१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के गोलवासना ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सूर्यभुक्तिकलिकासमासुभिः सावनो भदिवसाद्यतोऽधिकः।
तेन सूर्यपरिवर्तसावना भोदयाः स्युरिनपर्ययैर्युताः॥१॥"

इदानीं वर्षमध्ये सावनसंख्यामाह—

पञ्चाङ्करामास्तिथयः खरामाः सार्धद्विदस्राः कुदिनाद्यमब्दे।
अस्यार्कमासोऽर्कलवः प्रदिष्टस्त्रिंशद्दिनः सावनमास एव॥८॥

वर्ष में सावन दिन संख्या—

सूर्य-प्रभा टीका— एक सौर वर्ष में ३६५ सावन दिन १५ घटी ३० पल २२ विपल तथा ३० प्र.वि. होते हैं। इसका बारहवाँ भाग सौर मास होता है तथा ३० सावन दिनों का सावन मास होता है।

इसकी उपपत्ति पूर्व में गणिताध्याय के मध्यमाधिकार में बता दी गई है—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"चैत्रादिः खाग्निदिनैः षड्विंशतिनाडिकाधिकैरेकः।
मासः सहस्ररश्मेर्धृतिविघटीसंयुतैर्भवति॥३॥"

यहाँ आचार्य ने भास्करोक्त वर्ष मान ही मान कर उसमें १२ मास संख्या का भाग देकर प्राप्त मास का मान यहाँ कह दिया है जिस बात को भास्कराचार्य ने ज्ञात करने के लिए छात्रों पर छोड़ दिया था।

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि.के गोला. के गोलवासना ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"धृतिः पलाधिकषड्भुज नाडिकाभ्यधिकसावनमासि रवेर्यतः।२$\frac{१}{२}$।"

(१८) (२६)

इदानीं चान्द्रमासमाह—

कालेन येनैति पुनः शशीनं क्रामन् भचक्रं विवरेण गत्योः।
मासः स चान्द्रोऽङ्कयमाः कुरामाः पूर्णेषव २९।३१।५० स्तत्कुदिनप्रमाणम्॥९॥

सूर्य-प्रभा टीका— दर्शांत काल अर्थात अमावस्यान्त काल पर सूर्य तथा चंद्रमा की युति होती है। उसके पश्चात् दोनों पूर्व की ओर गमन करते हैं। चन्द्रमा की पुनः सूर्य से जितने समय पश्चात् चक्रकला २१६०० तुल्य भचक्र में गति करते हुए युति होती है उतने समय अन्तराल को चान्द्रमास कहते हैं। यह २९ दिन.३१ घटी ५० पल तुल्य सावन दिनों के मान का होता है।

उपपत्ति प्रमाण—

अनुपात के द्वारा चान्द्रमास का मान ज्ञात कर सकते हैं, कि यदि चंद्र सूर्य के गतिअंतर कला में एक सावनदिन प्राप्त होता है तो चक्र कला २१६०० तुल्य अन्तर में कितना समय लगेगा? प्राप्तफल चान्द्र मास का मान होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"यावत्कालेन शशी प्रविशति सूर्यं स शीतगोर्मासः।४०$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"घटिकाष्टाविंशत्या दशपलयुतयोनिते सावने मासे।
रविचन्द्रमसोर्योगो भवति स मासस्तु चान्द्रमासः॥२॥"

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के काल क्रिया पाद में सौरवर्ष, चांद्रमास, सावन दिन तथा नक्षत्र दिन को परिभाषित किया है। यथा--

"रविभगणाख्यब्दा रविशशियोगा भवन्ति शशिमासाः।
रविभूयोगा दिवसा भावर्ताश्चापि नाक्षत्राः॥१५॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के गोलवासना ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नाडिकाभिरिभबाहु (२८) भिर्यतो दिक् (१०) पलैस्समधिकाभिरुनिते।
मासि सावन इनेन्दुसङ्गमो दृश्यतैणधरमासकश्च सः॥२॥"

इदानीमधिमासोपपत्तिमाह—

चान्द्रोनसौरेण हतात् तु चान्द्रादवाप्तसौरैर्दशनैर्दलाढयैः ३२।१६।
मासैर्भवेच्चान्द्रमसोऽधिमासः कल्पेऽपि कल्प्या अनुपाततोऽतः॥१०॥
सौरान्मासादैन्दवः स्याल्लघीयान् यस्मात् तस्मात् संख्यया तेऽधिका स्युः।
चान्द्राः कल्पे सौरचान्द्रान्तरे ये मासास्तज्ज्ञैस्तेऽधिमासाः प्रदिष्टाः॥११॥

अधिमास की उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने श्लोकों का क्रम यहाँ विपरीत दिया है। ग्यारहवें श्लोक का अर्थ स्वकृत वा.भा. में प्रथम दिया है तदन्तर श्लोक १० की व्याख्या की है।

सौरमास के मान से चान्द्रमास का मान लघुत्तर होने से कल्प में चांद्रमासों की संख्या सौरमासों की संख्या से अधिक होती है। अतः कल्प के चांद्र और सौर मासों का अन्तर जितना होगा तत्तुल्य चान्द्र अधिमास संख्या होगी। इन्हें ही अधिमास कहते हैं।

अतः चान्द्र तथा सौर मासों के अंतर से चान्द्र मास के मान तथा सौर मासों की संख्या के गुणनफल में भाग देने से प्राप्तफल ३२।१६ सौर मासों में एक चान्द्र अधिक मास होता है। कल्प में अधिमास संख्या ज्ञात करने के लिए अनुपात से ज्ञात करेंगे।

प्रमाण—

एक सौरमास की सावन दिन संख्या तथा चांद्रमास की सावन दिवसंख्या का अन्तर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

$$= \frac{\text{सौरवर्ष मान सावन दिन संख्या}}{१२} - \text{चान्द्रमास सावन दिन संख्या}$$

$$= \frac{३६५।१५।२२।३०}{१२} - २९।३१।५० = ०।५४।२७।३१।५२।२०$$

अतः अनुपात किया कि चांद्र सूर्य मास के ०।५४।२७।३१।५२।२० सावन दिन तुल्य अन्तर में यदि एक सौर मास होता है तो २९।३१।५० सावन दिन तुल्य चान्द्रमास में कितने सौर मास होंगे?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{२९।३१।५०}{०।५४।२७।३१।५२।३०} = ३२।१५।३१।२८ = ३२।१६$$

स्वल्पांतर से, सौरमास संख्या हुई।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविशशिमासवियोगेऽधिकमासाः स्युर्विधोर्मासाः।
सौरेभ्यो बहवोऽतः सौरान्मासाल्लघुश्चान्द्रः॥४२॥
तस्माद्दर्शविरामादुपरिष्टाद्येन कालेन्।
मध्योऽर्कसंक्रमः स्यात सोऽधिकमासाग्रजः कालः॥४३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सौरान्मासादैन्दवः स्याल्लघीयान् यस्मात्तेनोन्मीयमानास्तु सौराः।
यान्त्याधिक्यं तेषु ये चातिरिक्तास्तज्ज्ञैस्तस्मात्तेऽधिमासाः प्रदिष्टाः॥६५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यगति वासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"चान्द्रान्मासात् पातङ्गोमासो यस्मात् सदाभ्यधिकः।
अधिमासकस्ततः स्यात् पञ्चरसैः शीतगोः पक्षैः॥४॥"

यहाँ आचार्य ने ६५ पक्ष कही हैं तथा भास्कराचार्य ने ३२।१५।३१ को स्वल्पांतर से ३२।१५ मास कह दिया है। बात एक ही है।

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के कालक्रिया पाद में अधिमास कहे हैं। यथा—

"अधिमासका युगे ते रविमासेभ्योऽधिकास्तु ये चान्द्राः।५$\frac{१}{२}$।"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. के गोला. के गोलवासना ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''विधुभवादधिकोऽयमतोऽर्कजैः षडगनन्द (९७६) दिनैरधिमासकः॥३॥''

इदानीमवमोपपत्तिमाह—

शशाङ्कमासोनितसावनेन ०।२८।१०
त्रिंशद्धृता लब्धदिनैस्तु चान्द्रैः।
रुद्रांशकोनाब्धिरसैः ६३।५४।३३ क्षयाहः
स्यात् सावनोऽतश्च युगेऽनुपातात्॥१२॥

अब इस की उपपत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— युग के चान्द्रमास के चान्द्रदिन (तिथि) तथा सावन दिनों का अन्तर अवमदिन कहा जाता है। अतः एक चान्द्रमास के ३० कुदिन तथा सावन दिन २९।३१।५० का अन्तर ०।२८।० सावन दिनादि अवम दिन में ३० चान्द्र तिथि प्राप्त होती है तो पूरा एक अवम दिन कितने चान्द्र तिथि दिनों में प्राप्त होगा? प्राप्तफल = चान्द्रतिथि = $\frac{१ \times ३०}{०।२८।०}$ = ६३।५४।३३ होता है।

अर्थात् ६३।५४।३३ चान्द्र तिथियों में पूरा एक अवम दिन प्राप्त होता है। यह सावनात्मक दिन संख्या है क्योंकि खण्ड (०।२८।०) का स्वरूप सावनात्मक कल्पित किया है। इससे अनुपात द्वारा कल्प के लिए मान ज्ञान कर सकते हैं।

विशेष— आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के कालक्रियापाद में अवम (क्षय) दिन को परिभाषित किया है। यथा—

''शशिदिवसा विज्ञेया भूदिवसोनास्तिथिप्रलयाः॥६॥''

इदानीमधिमासस्य चान्द्रत्वमवमस्य सावनत्यमभिधायाहर्गणात् कल्पगतमानेतुं विलोमविधिना यान्यवमान्यानीतानि ये चाधिमासास्तेषां विशेषमाह—

सौरेभ्यः साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवाः।
चेच्चान्द्रेभ्यस्तदा सौरास्तच्छेषं तद्वशात् तथा॥१३॥
सावनान्यवमानि स्युश्चान्द्रेभ्यः साधितानि चेत्।
सावनेभ्यस्तु चान्द्राणि तच्छेषं तद्वशात् तथा॥१४॥

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गसाधन द्वारा साधित सौर दिवस से (चान्द्र)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अधिमास साधित करने से जो अधिमास प्राप्त होते हैं वे चांद्रमास शेष रहने से चान्द्रमास होते हैं और चान्द्रदिन से (सौर) अधिमास साधित करने से सौर मास शेष रहने से सौर मास होते हैं तथा इस प्रकार प्राप्त अधिमासों के शेष भी तदवत् ही होते हैं।

प्रमाण— अहर्गण से प्राप्त इष्ट चान्द्र दिन से साधित अधिमास में—

$$\frac{\text{कल्प सौरमास} \times \text{गत चान्द्र दिन}}{\text{कल्प चान्द्र दिन}} = \text{अधिमास} + \frac{\text{अधिशेष}}{\text{क. चा. दि.}}$$

यहाँ प्राप्त अधिमास सौरमास हैं तथा अधिशेष भी सौरात्मक ही है।

अहर्गण से प्राप्त इष्ट सौर दिन से साधित अधिमास में—

$$\frac{\text{कल्प चांद्राधिमास} \times \text{गत सावन दिन}}{\text{कल्प कुदिन}} = \text{अधिमास} + \frac{\text{अधिशेष}}{\text{क. कु.}}$$

यहाँ प्राप्त अधिमास चान्द्रमास हैं तथा अधिशेष भी चान्द्रात्मक ही है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''कल्पेन्दुदिवसयाताधिमासघातोऽधिशेषयुतः ॥३५॥
कल्पाधिमासभक्तो लब्धं तुहिनांशुदिवसाः स्युः।
कल्पार्कदिवसयाताधिमासघातोऽधिमासशेष युतः॥३६॥
कल्पाधिमासभक्तो लब्धं याता दिनेशदिवसाः स्युः।
एभिः कल्पगतावममासद्युगणादयः साध्याः॥३७॥''

आर्यभट ने यहाँ निम्नलिखित सूत्र कहे हैं जो पूर्वोक्त से प्राप्त किये जा सकते हैं—

क.अधिमा × इ.चा.दि = गअधिमा. × क.चा.दि + अधि.शे.

$$\text{इष्ट चांद्र दि.} = \frac{\text{गत अधिमास} \times \text{कल्प चां. दि.} + \text{अधिशे}}{\text{कल्प अधिमास}}$$

इदानीं विशेषः प्रश्नाध्याये—

अहर्गणस्यानयनेऽर्कमासाश्चैत्रादिचान्द्रैर्गणकान्विताः किम्।
कुतोऽधिमासावमशेषके च त्यक्ते यतः सावयवोऽनुपातः॥१५॥

अस्यप्रश्नस्योत्तरमाह—

दर्शावधिश्चान्द्रसमो हि मासः सौरस्तु संक्रान्त्यवधिर्यतोऽतः।
दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम्॥१६॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दर्शान्ततो यातितिथिप्रमाणैः सौरैस्तु सौरा दिवसाः समेताः।
यतोऽधिशेषोत्थदिनाधिकास्ते त्यक्तं तदस्मादधिमासशेषम्॥१७॥
तिथ्यन्तसूर्योदययोस्तु मध्ये सदैव तिष्ठत्यवमावशेषम्।
त्यक्तेन तेनोदयकालिकः स्यात् तिथ्यन्तकाले द्युगणोऽन्यथातः॥१८॥

अब विशेष प्रश्नाध्याय—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण आनयन करने में सौरमासों में चैत्रादि चान्द्रमास युक्त करके गणना क्यों की गई है? और अधिमास अवशेष को क्यों त्याग दिया गया है? और सावयव अनुपात क्यों किया गया है?

इस प्रश्न का उत्तर–

मध्यममान से जब अमावस्या का अंत होता है तो चांद्रमास का भी अंत (समाप्त) होता है और मध्यम सूर्य की जिस दिन संक्रान्ति होती है तब संक्रांति काल पर सौर मास की समाप्ति होती है। रविमासों तथा चान्द्रमासों के अन्तर के अनन्तर जितनी तिथियाँ सावयव होती है वह अधिमास शेष तिथियाँ होती हैं क्योंकि सौर चान्द्रमासों का अन्तर अधिमास संज्ञक हेाता है। अहर्गण आनयन में गताब्द को बारह (१२) से गुणा करने से सौरमास प्राप्त होते हैं। इनमें चैत्रादि से गत चान्द्रमासों को सौर मास तुल्य मान कर उनमें जोड़ने से वे भी संक्रांति युक्त मास हो जाते हैं। इनको ३० से गुणा करके गत तिथि तुल्य सौर दिवस मान कर इनमें युक्त करते हैं। अतः सौर चांद्र के अन्तर में जितना अधिक होता है वह अर्थात् उतना अन्तर तुल्य अधिमास शेष के दिन प्राप्त होते हैं। इसलिए सौर चान्द्र के अंतर तुल्य, अधिमास शेष में से कम करते हैं। अतः अधिमास आनयन में अनुपात से प्राप्त अधिमास के दिन बना कर अधिशेष दिनों को उनमें युक्त करने से वे सौर से चांद्र दिवस हो जाते हैं। इस प्रकार यहाँ अधिमास शेष दिनों को अधिक युक्त कर दिया है। अतः उनको घटाना होगा। इसी कारण से अधिमास शेष को त्याग दिया जाता है।

उपरोक्त को गणित सूत्र रूप में करके बताते हैं। गताब्द तथा गत चान्द्रमास एवं इष्ट गत तिथि द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से सौर दिवस (गव.×१२+गत चान्द्रमास तुल्य सौर मास) × ३० + गत तिथि = इष्ट सौर दिन प्राप्त करके अनुपात किया कि यदि युग सौर दिनों में युगाधिमास पाते हैं तो इष्ट सौर दिन में क्या? इस प्रकार प्राप्त फल–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

$$\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{इष्ट सौर दिन}}{\text{युसौर दिन}} = \text{गताधिमास} + \frac{\text{अधिशेष}}{\text{युसौर दिन}}$$

यहाँ पहले गत सौर मास में चैत्रादि गत चान्द्रमास तुल्य सौर मास जोड़े थे इसलिए सौर-चाँद्र के अन्तर तुल्य अधिशेष अधिक जोड़ा गया था। अतः अनुपातगत अधिशेष को यदि छोड़ देते हैं तो उस त्रुटि, जो पहले अधिशेष तुल्य अधिक लेने से हुई थी, का निराकरण हो जायेगा। अतः केवल गताधिदिन को इष्ट सौर दिन में जोड़ने से तिथ्यन्तकालिक चान्द्र अहर्गण होगा। इष्ट सौर दिन + गताधिदिन = तिथ्यन्त कालिक चान्द्र अहर्गण।

अब अवमशेष त्याग का कारण बताते हैं। तिथ्यन्त के अनन्तर जितनी घटियाँ सूर्योदय के पूर्व रहती हैं वह अवम शेष घटियाँ होती हैं। क्योंकि चान्द्रसावन का अन्तर अवम दिन होता है। यदि अवमशेष का त्याग न करके लब्ध अवमशेष घटियों को तिथियों में से कम करते हैं तो तिथ्यन्त के काल का अहर्गण प्राप्त होता है, लेकिन हमें अहर्गण सूर्योदय कालिक साधित करना होता है। अतः तिथ्यन्त काल के अहर्गण में अवमशेष घटी युक्त करने से उदय काल का अहर्गण प्राप्त होता है। लेकिन अवमशेष को पहले ही हम जोड़ चुके हैं, अतः यहाँ दुबार नहीं जोड़ कर उसको त्याग दिया जाता है।

इसको गणित क्रिया द्वारा व्यक्त करके बताते हैं। पूर्वप्राप्त तिथ्यन्त कालिक चान्द्र अहर्गण से अनुपात किया कि यदि युग चान्द्र दिन में युग अवम दिन प्राप्त होते हैं तो इष्ट चान्द्र दिन में क्या? प्राप्तफल–

$$\frac{\text{युग अवम} \times \text{इष्ट चांद्र दिन}}{\text{युग चांद्र दिन}} = \text{गत अवम} + \frac{\text{अवशेष}}{\text{यु.चां.}}$$

इसको इष्ट चान्द्र अहर्गण में से घटाने से तिथ्यन्त कालिक अहर्गण =

$$\text{इष्ट चांद्र अहर्गण} - \text{गत अवम} - \frac{\text{अवशेष}}{\text{यु.चां}}$$

इसमें इष्ट अवमशेष जोड़ने से सूर्योदय कालिक अहर्गण =

$$\text{इष्ट चांद्र अहर्गण} - \text{गत अवम} - \frac{\text{अवशेष}}{\text{यु.चां}} + \frac{\text{अवशेष}}{\text{यु.चां}}$$

= यु.चां.अ – गतावम = सूर्योदय कालिक अहर्गण।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"चैत्र सितादेरिन्दोर्वर्षादिर्भास्करस्य मेषादेः।
प्र-घ्नोऽब्दौधो यद्यपि चैत्राद्यातैर्युतः कृतो मासैः॥४४॥
सौरस्तथापि जातो मासौघो मध्यमार्कमासान्ते।
यस्मादधिमासाप्त्यै भास्करमासव्रजच्छेदः॥४५॥
रविमासान्तभवाः स्युस्ततोऽधिमासास्तग्रदिवसाश्च।
तैरधिमासाग्रभवैर्दिवसैर्हीनोऽर्कमासौघः॥४६॥
दर्शान्ते स भवेदिनमासव्रातस्त्वयं युक्तः।
अधिमासैः साग्रदिनैर्दर्शान्ते स्याच्छशाङ्कःमासगणः॥४७॥
तस्मादृणधनसाम्यादधिमासाग्रं परित्यक्तम्।
एतदभीष्टतिथौ वा ज्ञेयस्तत्रार्कवासराश्छेदः॥४८॥"
तिथयश्चान्द्रा दिवसा रव्युदया मेदिनीदिवसाः।
कल्पे बहवश्चान्द्रस्ततो लघीयान् क्वहाच्चान्द्रः॥५०॥
क्षितिदिन शशिदिन विवरं क्षयदिवसाः सयुस्ततस्तिथिविरापात्।
येन समयेन भास्करउदयं कुरुतेऽवमाग्रजः सभवेत॥५१॥
शशिदिवसास्त्रेराशिकतः स्यादवमादिकं यस्मात्।
तस्मात् साग्रैरवमै रहितस्तिथिसञ्चयो द्युगणः॥५२॥
तिथ्यन्तजोऽवमाग्रेण विना स्याद्भास्करोदयजः।
गततिथि सूर्योदययोरन्तरमवमाग्रकं यस्मात्॥५३॥
तस्मात् क्षयदिनसिद्धै युताः क्रियन्ते गतास्तिथयः।$\frac{१}{२}$।"

अथोदयान्तराख्यकर्मोपपत्तिमाह—

अहर्गणो मध्यमसावनेन कृतश्चलत्वात् स्फुटसावनस्य।
तदुत्थखेटा उदयान्तराख्यकर्मोद्भवेनोनयुताः फलेन॥१९॥
लङ्कोदये स्युर्न कृतास्तथाद्यैर्यतोऽन्तरं तच्चलमल्पकं च।

उदयान्तर कर्म की उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— जो अहर्गण साधन किया जाता है वह मध्यम मानीय सावन अहर्गण होता है क्योंकि स्फुट सावन दिन चलायमान होते हैं। अतः उनको अनुपात विधि के द्वारा साधित (स्फुट) नहीं कर सकते। युगारंभ से वर्तमान वर्षादि के पूर्व तक जो अहर्गण के मध्यम सावन दिन हैं वे स्फुट

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सावन होते हैं। किंतु वर्तमान रवि वर्षादि के आगे के जितने सावन दिन हैं वे स्फुट नहीं होते। अतः मध्यम सावन अहर्गण से उत्पन्न (साधित) ग्रहों में मध्यम तथा स्पष्ट सावन दिनों के अन्तर से प्राप्त (साधित) ग्रहों की अल्प चाल ऊन युक्त करने से वे लङ्का पर सूर्योदय कालिक प्राप्त होते हैं। लङ्का पर सूर्य मध्यम सूर्योदय होता है।

(उदयान्त असु के मध्य में भी ग्रह की कुछ गति होती है। उस गति को भास्कराचार्य ने ग्रहण नहीं किया है। अतः भास्करोक्त उदयान्तर आनयन कितना शुद्ध है विद्वान् विचार करें।)

अथोदयान्तरकर्माह—

मध्यार्कभुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककलासमानाः॥२०॥
तदन्तरं यत् स्फुटमध्ययोस्तद्द्युपिण्डयोः स्याद्विवरं गतिघ्नम्।
हृतं द्युरात्रासुभिरासलिप्ताहीना ग्रहाश्चेदसवोऽल्पकाः स्युः॥२१॥
तदन्यथाढ्यास्तु निजोदयैश्चेत् भुक्तासुपूर्वं विहितं तदानीम्।
कृतं तथा स्याच्चरकर्ममिश्रं कर्म ग्रहाणामुदयान्तराख्यम्॥२२॥

उदयान्तर कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— सायन सूर्य के मेषादि से आरंभ राश्यादि के भुक्त असुओं के निरक्षोदय मानों १६७०, १७९५, १९३५ आदि का योग करके उनमें सूर्य की वर्तमान राशि के भुक्त अंशादि को उस राशि के उदयमानों से गुणा करके ३० से विभक्त करके प्राप्तफल को युक्त करने से मध्यम सूर्य के भुक्त असु होते हैं। नक्षत्र दिनान्त मान के पश्चात् इतने असु पश्चात् लङ्का में मध्यमसूर्योदय होता है और इसी सूर्योदय कालिक ग्रहों का साधन किया जाता है तथा अहर्गण आनयन के सिद्धान्त से साधित अहर्गण मध्यम सूर्य कला तुल्य असुकाल तक के नक्षत्र दिनान्त के आगे तक का होता है। अतः असु तथा कला मानों में जितना अन्तर होता है उतना सूर्योदय में अन्तर होता है। अतः इसको उदयान्तर काल कर्म कहते हैं।

इन उदयान्तर असुओं को ग्रह गति से गुणा करके सूर्य के सावन अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि कला को ग्रह में यदि कला से असु अल्प हो तो ऋण करे तथा अधिक हो तो धन करे। इस प्रकार करने से ग्रह निरक्ष देश में स्पष्ट होते हैं। यदि स्वदेश के लिए अर्थात् निरक्ष देश के अनन्तर किसी अन्य स्थान के ग्रह स्पष्ट करें तो वे स्वदेश के राशि उदयमानों

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्वारा पूर्ववत करें तथा इस प्रकार क्रिया करने से प्राप्त ग्रह स्पष्ट चर कर्म युक्त ही प्राप्त होते हैं स्पष्ट सूर्य के लिए भुक्त असु, स्वयोदय असु लिए गये हैं तथा पूर्वोक्त कर्म किये गये हैं तो वह सूर्य (ग्रह) स्पष्ट उदयान्तर, भुजान्तर तथा चर कर्म तीनों कर्मों से युक्त होता है।

उदयान्तर कर्म जो यहाँ कहा गया है वह यदि नहीं किया जावे तो जितना उसका अन्तर एक पाद के मध्य में पड़ता है वह एक पाद अन्त (३ माह) में विपरीत अल्प होकर शून्य हो जाता है अर्थात् वर्ष के एक चरण अर्थात् ३ माह के अन्त में घटते-घटते शून्य हो जाता है। यह ३ माह (एक पाद) के मध्य तक बढ़कर परम हो जाता है तथा उसके पश्चात घटते हुए ३ माह (एक पाद) के अंत में पुनः शून्य हो जाता है। क्योंकि सूर्य एक माह में एक राशि चलता है अतः तीन माह में तीन उदित राशियों के उदय असुमानों का योग १६७०+ १७९५+१९३५=५४०० होता है तथा तीन राशियों की उदयकला ३×६०'×३०° = ५४०० होती है। अतः प्रत्येक पदान्त में उदयान्तर काल शून्य हो जाता है।

श्रीपति ने सि.शे. ग्रंथ में उदयान्तर कर्म को ही दृष्टि में रखकर सर्वप्रथम दृग्गणितैक्य के लिए चन्द्रमा में संस्कार विशेष करने के लिए कहा था। यह आचार्योक्त उदयान्तर संस्कार ही है। यथा–

"त्रिभविरहितचद्रोच्चेन भास्वद् भुजज्या
गगननृपविनिघ्नी भत्रयज्याविभक्ता।
भवति चर फलाख्यं तत् पृथक्स्थं शरघ्नं
हतमुडुपतिकर्ण त्रिज्यायोरन्तरेण॥१॥
परमफलमवाप्तं तद्धनर्णं पृथक्स्थे
तुहिनकिरणकर्णे त्रिज्यकोनाधिकेऽथ।
स्फुटदिनकर हीनादिन्दुतो या भुजज्या
स्फुट परमफलघ्नी भाजिता त्रिज्जया ऽऽप्तम्॥२॥
शशिनि चरफलाख्यं सूर्यहीनेन्दुगोलात्
तदृणमुत धनं चेन्दुच्चहीनार्क गोलम्।
यदि भवति हि साम्यं व्यस्तमेतद्विधेयं
स्फुट गणित दृगैक्यं कर्तुमिच्छभिरत्र॥३॥

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानस में चंद्रमा में इसी प्रकार के संस्कार को कहा है। यथा–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"इन्दुच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा तिभवाविधोः।
गुणो व्यर्केन्दुदोः कोट्योरूप पञ्चाप्तयोः क्रमात्॥
फले शशाङ्कतद्गत्योर्लिप्ताद्ये स्वर्णयोवेधे।
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तो स्वर्णसाम्यवधेऽन्यथा॥"

म.म. सुधाकर द्विवेदी के अनुसार उदयान्तर भुजान्तर संस्कार से जो ग्रह स्पष्ट होते हैं वे वस्तुतः स्पष्ट ग्रह नहीं होते। यह विषय ब्र.गु. के नतकर्म के कहने से तथा नतकर्म साधन कारक भास्करोक्त लेख से ज्ञात होता है। आकास्थ ग्रहादि भूवायु गोल में परिणत होकर हम लोगों को स्पष्ट (प्रत्यक्षीभूत) होते हैं। इसलिए स्पष्टीकरण से जो स्पष्ट ग्रह आते हैं उनमें जितना संस्कार करने से भूवायु गोल परिणत स्पष्टग्रह हो उसी को नतकर्म कहना उचित है। ब्र.गु. से पूर्ववर्ति आचार्यों ने इस विषय में कुछ नहीं कहा। नतकर्म संस्कार की आवश्यकता शायद अधिक है।

इदानीं देशान्तरस्वरूपमाह—

येऽनेन लङ्कोदयकालिकास्ते देशान्तरेण स्वपुरोदये स्युः।
देशान्तरं प्रागपरं तथान्यद्याम्योत्तरं तच्चरसंज्ञमुक्तम्॥२३॥

देशान्तर का स्वरूप—

सूर्य-प्रभा टीका— इस प्रकार उदयान्तर कर्म के द्वारा जैसे ग्रह लंका में सूर्योदय कालिक होते हैं वैसे ही देशान्तर कर्म के द्वारा ग्रह स्वस्थान के क्षितिज पर सूर्योदय कालिक होते हैं। देशान्तर दो तरह का होता है एक पूर्वापर जिसको यहाँ देशान्तर कहा गया है तथा दूसरा याम्योत्तर होता है, यह चर संज्ञक है।

यत्र तावत् पूर्वापरमाह—

यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः।
आदौ प्रागुदयोऽपरत्रविषये पश्चाद्धि रेखोदयात्
स्यात् तस्मात् क्रियते तदन्तरभवं खेटेष्वृणं स्वं फलम्॥२४॥

इनमें से यहाँ पूर्वापर का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जो लंका, उज्जयनि के ऊपर से होते हुए कुरुक्षेत्रादि देशों को स्पर्श करता हुआ सूत्र मेरु स्थान तक जाता है, उसको भुव की मध्य रेखा कहते हैं। इस रेखास्थ देशों में सूर्योदयास्त से पूर्व दिशा में स्थित

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देशों में सूर्य का उदय तथा अस्त पहले होता है तथा पश्चिम में स्थित देशों में बाद में होता है। इनके सूर्योदयास्तों का काल उनके, मध्य रेखा से अन्तर योजन स्पष्ट भूवेष्ट के अनुपात द्वारा ज्ञात कर लेते हैं कि यदि स्फुट परिधि योजन में ६० घटियाँ प्राप्त होती हैं तो मध्य रेखा तथा स्वस्थान के मध्य योजन अन्तर में कितनी होगी? प्राप्तफल घटी अन्तर होता है। मध्यगति से चलते हुए ग्रह का इससे अनुपात करते हैं कि यदि ६० घटी में ग्रह की गतिकला प्राप्त होती है तो देशान्तर घटी में कितनी होगी? यह अनुपात अन्य प्रकार से योजन से भी कर सकते हैं कि यदि स्फुट परिधि योजन में ग्रह गतिकला प्राप्त होती है तो देशान्तर योजन में कितनी होगी? दोनों प्रकार से प्राप्त कला फल को ग्रह में, इष्ट स्थान पूर्व में हो तो ऋण तथा पश्चिम में हो तो धन कर देते हैं। इस प्रकार उस स्थान पर, मध्य रेखा पर सूर्योदय के पश्चात्, सूर्योदय कालिक ग्रह होते हैं।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रेखार्कोदयकालाद् प्राक्प्राच्यां दृश्यते यतः सूर्यः।
रेखार्कोदयतोऽसौ तस्माद्देशान्तरफलमृणमुक्तम्॥६१॥
रेखा पश्चिमतोऽर्क पश्चाद्दृश्यस्ततो धनं तत्र।
एवं सर्वखगानां देशान्तर संस्कृतिः कार्या॥६२॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"पश्चात् पश्चादर्कः प्राक् प्राक् च यतोऽभ्युदेति रेखायाः।
तद्देशान्तरजातं तेन स्वमृणं ग्रहे क्रियते॥६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लंकासमयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्याः।
देशान्तरोनयुक्त रेखायाः प्रागपरदेशेषु॥३५॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लेखा स्वपुरान्तर्योजनसंख्या श्रुतिस्तु लोकोक्ता।
तद्दोः कृतिविवरपदं कोटिदेशान्तरं प्रोक्तम्॥५॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देशान्तरगतिघातात्कुवृत्तलब्धं विशोध येत्पुरतः।
देयं कलादिपश्चाल्लेखाया मध्यमे द्युचरे॥६॥''

''प्राक् प्रागुदेति द्युमणिः कुमध्यात् पश्चाच्च पश्चात्फलमप्यतोऽस्मात्।
ग्रहेक्षयः स्वं क्रियतेऽत एव उक्तो ध्रुवक्षिप्तिरिहाद्यकालात्॥५॥ गोला.४॥''

इदानीं भूगोले स्फुटपरिधिप्रदेशं स्फुटतानुपातं चाह—

स्वदेशमेर्वन्तरयोजनैर्यल्लम्बांशजैर्मेरुगिरेः समन्तात्।
वृत्तं स्फुटो भूपरिधिर्यतः स्यात् त्रिज्याहतो लम्बगुणः कृतोऽस्मात्॥२५॥

भूगोल की स्फुट परिधि से स्वदेशीय स्फुट परिधि का अनुपात—

सूर्य-प्रभा टीका— स्वस्थान से मेरुगर्भ तक का अन्तर योजन लंबांश है और निरक्ष देश से स्वस्थान का अन्तर योजन अक्षांश होता है। मेरु से लंबांश योजन पर जो वृत्त बनता है व स्फुट भू परिधि है तथा मध्य परिधि निरक्षदेश पर बनने वाले वृत्त की परिधि है। इससे स्वस्थान की स्फुट परिधि कुछ न्यून होती है। उसका आनयन करते हैं। मध्य परिधि की त्रिज्या तुल्य व्यासार्ध है तथा उतने व्यासार्ध से स्वस्थान पर जितनी लंबज्या है उतनी स्फुट परिधि की व्यासार्ध है। इनसे त्रैराशिक किया कि यदि त्रिज्या तुल्य व्यासार्ध में मध्यम परिधि प्राप्त होती है तो लंबज्या में कितनी?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{मध्यम परिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \text{स्वदेशीय स्पष्ट भूपरिधि होती है।}$$

सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''लम्बज्याघ्नस्विजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः।
तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता॥६०॥
कलादि तत्फल प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्।
रेखाप्रतीचीसंस्थाने प्रक्षिपेत् स्युः स्वदेशजाः॥६१॥''

इति गोलभाष्ये मध्यगतिवासना

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के मध्यमगतिवासनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ छेद्यकाधिकार

इदानीं गोलं विवक्षुरादौ ज्योत्पत्तिकथने कारणमाह—

पटो यथा तन्तुभिरूर्ध्वतिर्यग्रूपैर्निबद्धोऽत्र तथैव गोलः।
दोः कोटिजीवाभिरमुं प्रवक्तुं ज्योत्पत्तिमेव प्रथमं प्रवक्ष्ये॥१॥

गोल के लिए कुछ कहने से पूर्व सर्वप्रथम ज्योत्पत्ति के लए कहने का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार से वस्त्र ऊर्ध्व तथा तिर्यक धागों के द्वारा बना हुआ होता है उसी प्रकार गोल भी ऊर्ध्वतिर्यक रूप कोटिज्या तथा ज्या की स्थिति के द्वारा ग्रहादियुक्त गोल के स्वरूप का प्रतिपादित करते हुए सर्वप्रथम आचार्य जीवा साधन के द्वारा ग्रहों की स्थिति को सिद्ध करने के लिए स्पष्टीकरणवासनात्मक गोलाधारित शोधन सूक्ष्म में कह रहे हैं। बिना तन्तुस्वरूप के ज्ञान के वस्त्र के स्वरूप का ज्ञान तथा बिना ज्या स्वरूप के ज्ञान के गोल का ज्ञान नहीं हो सकता, अतः आचार्य सर्वप्रथम ज्योत्पत्ति के लिए कह रहे हैं।

इदानीं जीवाक्षेत्रसंस्थानं तावदाह—

इष्टा त्रिज्या सा श्रुतिर्दोर्भुजज्या कोटिज्या तद्वर्गविश्लेषमूलम्।
दोः कोट्यंशानां क्रमज्ये पृथक् ते त्रिज्याशुद्धे कोटिदोरुत्क्रमज्ये॥२॥
ज्याचापमध्ये खलु बाणरूपा स्यादुत्क्रमज्या त्रिभमौर्विकायाः।
वगार्धमूलं शरवेदभागजीवा ततः कोटिगुणोऽपि तावान्॥३॥
त्रिभज्यकार्धं खगुणांशजीवा तत्कोटिजीवा खरसांशकानाम्।
क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलाद्दलं तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यात्॥४॥
त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी वा।
तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां कोटेश्च कोट्यंशदलस्य चैवम्॥५॥
एवं त्रिषट्सूर्यजिनादिसंख्या अभीष्टजीवाः सुधिया विधेयाः।
त्रिज्योत्थवृत्ते भगणाङ्किते वा ग्राह्या अभीष्टा विगणय्य जीवाः॥६॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जीवा का क्षेत्र संस्थापन—

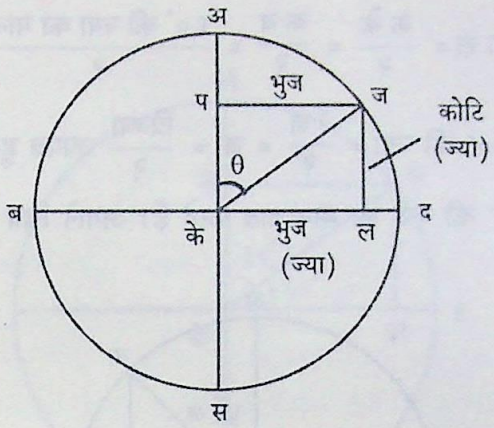
सूर्य-प्रभा टीका— वृत्त की इष्ट त्रिज्या कर्ण तथा ज्या भुज होती है। इनके वर्गों के अन्तर का मूल कोटिज्या होती है। जीवा तथा कोटि के अंशों की क्रमज्या अर्थात् ज्या को पृथक्-पृथक् त्रिज्या में से घटाने से क्रमशः कोटि तथा ज्या की उत्क्रमज्या होती है।

ज्या तथा चाप के मध्य जो बाणरूप भाग होता है व उत्क्रमज्या होती है। त्रिज्या के वर्ग के आधे का मूल ४५ अंश की ज्या होती है और इतना ही ४५° की कोटिज्या का मान होता है। त्रिज्या के आधे के तुल्य ३० अंश की ज्या का मान होता है और इतना ही ३० अंश की कोटि ६०° की ज्या का मान होता है। अर्थात् कोटि ज्या ६०° = $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$ होता है।

ज्या तथा उत्क्रमज्या के वर्गों के योग के मूल का आधा उसके आधे अंशों की ज्या होती है। त्रिज्या तथा उत्क्रमज्या के गुणा के आधे का मूल उसके आधे आधे अंशो की ज्या होती है। इससे उनके आधे अंशों की और कोटि ज्या से कोटि के अंशों के आधे की ज्या होती है। इस प्रकार २४ वीं के आधे ४५° की १२ वीं, इसके आधे अंश २२°३०' की छठी तथा इसके आधे अंश ११°१५' की तृतीय संख्यक ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं और इनकी कोटि अंश से कोटि अंश के आधे की ज्या ज्ञात कर सकते हैं। इस प्रकार त्रिज्या मान से उत्पन्न वृत्त जिस पर चक्र अंश अर्थात् ३६०° अंकित हो के द्वारा अभीष्ट संख्यक जीवट का मान ज्ञात कर सकते हैं।

उपपत्ति— आचार्योक्त बात को चित्र द्वारा व्यक्त करते हैं। इष्ट व्यास का एक ३६० अंश अंकित करके अ ब स द वृत्त बनावें। इस का चौथाई-चौथाई प्रत्येक भाग ९० अंश का होता है। इसका एक ऐसा चौथाई भाग अ ज द के लिया। के इस वृत्त का केंद्र है। माना अभीष्ट अंश θ है जिसकी ज्या का मान ज्ञात करना है अतः वृत्त पर कोण ज के प = θ लिया तथा ज से व्यास रेखा ब के द पर लंब ल ज डाला इसी प्रकार दूसरी लम्ब रेखा अ प के स पर ज से लंब ज प डाला।

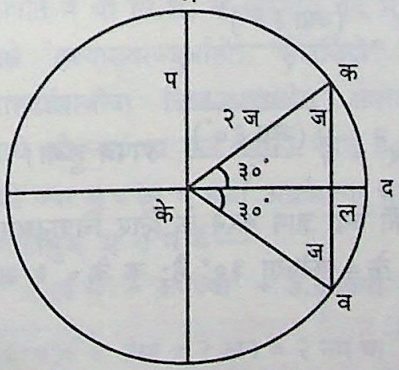
CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA



इस प्रकार समकोण त्रिभुज ज ल के में प ज = के ल =भुज, ज ल = प के = कोटि तथा के ज =त्रिज्या =कर्ण है। अभीष्ट चाप अ ज का कोटि चाप ज द है। अभीष्ट चाप अ ज की ज्या =पज=के ल है तथा कोटि चाप ज द की ज्या = ज ल= प के है। यह अभीष्ट चाप की ज्या तथा कोटिज्या समकोण त्रिभुज ज ल के तथा ज प के की भुज तथा कोटि है तथा त्रिज्या कर्ण है। अतः समकोण त्रिभुज में भुज^२+कोटि^{२} = कर्ण^२ अतः चित्र द्वारा भुजज्या^{२} + कोटिज्या^{२} = त्रिज्या^{२}

चित्र में त्रिज्या अ के – कोटि प के = अ प बाण रूप है। यह भुज ज्या की उत्क्रमज्या कहलाती है। इसी प्रकार ल द = के द – के ल = कोटि उत्क्रमज्या है।

माना कि अभीष्ट वृत्त में ३० अंश का चाप क द है जिसकी ज्या = क ल का मान ज्ञात करना है। त्रिभुज क के ल तथा के ल व तुल्य हैं अतः रेखागणित द्वारा क ल = ल व = ज माना। अतः क के = २ ज।

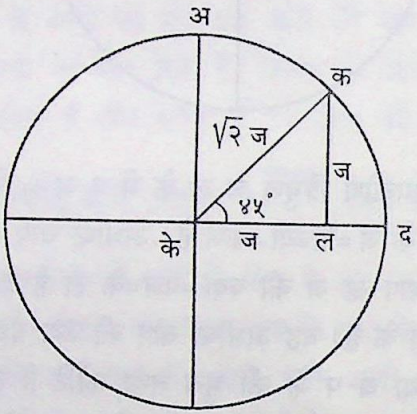


CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतः क ल = $\frac{\text{क के}}{२}$ = $\frac{\text{क व}}{२}$ = $\frac{९०^\circ \text{ की ज्या का मान}}{२}$

अतः ३०° की ज्या = $\frac{२ \text{ ज}}{२}$ = ज = $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$ उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार ४५° की ज्या का मान ज्ञात करते हैं। अगले चित्र द्वारा–



क के = $\sqrt{\text{क ल}^२ + \text{के ल}^२}$ = $\sqrt{\text{ज}^२ + \text{ज}^२}$ = $\sqrt{२}$ज

चाप क द = ४५° की ज्या = क ल = ज

= $\frac{\sqrt{२} \text{ ज}}{\sqrt{२}}$ = $\frac{\text{क के}}{\sqrt{२}}$

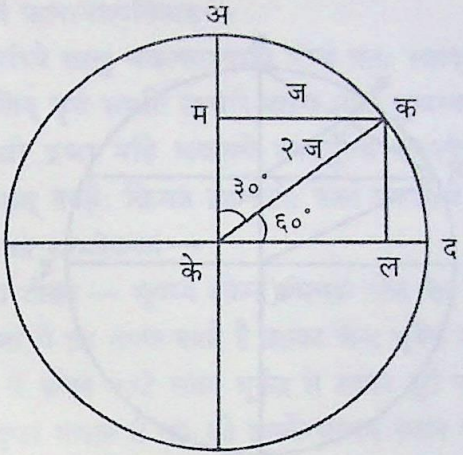
ज्या ४५° = $\frac{९०^\circ \text{ की ज्या}}{\sqrt{२}}$

$(\text{ज्या } ४५^\circ)^२$ = $\frac{(\text{ज्या } ९०^\circ)^२}{२}$

अतः ज्या ४५° = $\sqrt{\frac{(\text{ज्या } ९०^\circ)^२}{२}}$ उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार ६०° की ज्या ज्ञान करने के लिए चित्रानुसार यदि म क = ज = ज्या३०° है तथा म के = कोज्या ३०° है; क के = २ ज होता। उपरोक्त की भांति।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA



अतः क ल = $\sqrt{\text{क के}^२ - \text{के ल}^२}$

क ल = ज्या ६०° = म के = $\sqrt{(\text{त्रिज्या})^२ - (\text{ज्या ३०°})^२}$

= $\sqrt{(\text{कोटिज्या ३०°})^२}$ = कोज्या ३०°

अथवा चित्र द्वारा क ल = ज्या ६०° = म के = कोज्या ३०° है। उपपन्न हुआ।

किसी वृत्त में समषड भुज स्थित हो तो उसकी एक भुजा के तुल्य उस वृत्त का व्यासार्ध होता है। इस प्रकार बनने वाले समषडभुज की प्रत्येक भुजा के द्वारा वृत्त केंद्र पर ६०° का कोण बनता है। अतः उस ६०° के आधे की ज्या का मान इसकी एक भुजा का आधा है जो वृत्त के व्यासार्ध अर्थात् त्रिज्या के तुल्य होती है।

इसके लिए श्रीपति ने भी सि.शे. के अध्याय १६ में कहा है। यथा–

''क्षेत्रे षडस्रे हृदयाख्यरज्जुर्बाहोः गोलविदो वदन्ति।
वृत्ते परीणाहषडंशजीवा विष्कम्भखण्डेन समोपलब्धे॥११॥''

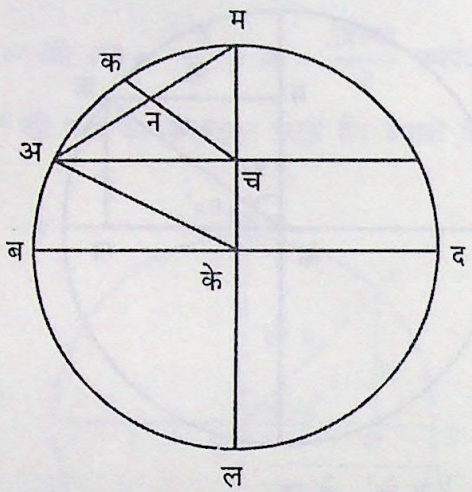
भुजांश के आधे की ज्या का मान साधन करते हैं। चित्र में अ क म कोई भुजांश है। इसकी ज्या भु = अ च तथा उत्क्रमज्या भुज = च म है।

अतः समकोण त्रिभुज अ च म में—

अच^२ + चम^२ = अ म^२ = क्रमज्या^{२} + उ.क्र.ज्या^{२} = अ म^२

या $\sqrt{\text{अ च}^२ + \text{च म}^२}$ = अम = २ अन = २ नम या $\frac{\text{अ म}}{२}$ = अन = नम

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA



माना न अम का मध्य बिन्दु है।

अतः अ म $\frac{१}{२}$ = अ क

अतः ज्या अ क = $\frac{१}{२}$ अ म = $\frac{\sqrt{\text{क्रमज्या}^२ + \text{उ.क्र.ज्या}^२}}{२}$ उपपन्न हुआ।

उपरोक्त चित्र में ही क्योंकि मच × चल = अ च^२ रेखागणित प्रमेय से।

अतः म च (त्रि − मच) = अच^२

या मच × त्रि − मच^२ = अ च^२

या म च × त्रि = अ च^२ + म च^२

या म च × त्रि = अम^२

अ च म समकोण त्रिभुज है।

या $\frac{\sqrt{\text{उ.क्र.} \times \text{त्रिज्या}}}{२}$ = $\frac{\text{भुज}}{२}$ = $\frac{\text{अम}}{२}$ = अ न = न म उपरोक्त द्वारा।

अ न = अर्धांश कीज्या = $\frac{\text{भुज}}{२}$ = $\frac{\sqrt{\text{उ.क्र.} \times \text{त्रिज्या}}}{२}$ उपपन्न हुआ।

इस सूत्र द्वारा आचार्योक्त प्रकार से ८ वीं से आधी अंश की ४ थी, इससे आधे अंश की दूसरी ज्ञात कर सकते हैं। इसी प्रकार २० वीं से १० वीं, १० वीं से ५ वीं ज्ञात कर सकते हैं। इत्यादि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं स्पष्टीकरणे फलस्योत्पत्तिमाह—

भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यं यतः स्याद्-
यस्मिन् वृत्ते भ्रमति खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये।
भूस्थो द्रष्टा नहि भवलये मध्यतुल्यं प्रपश्येत्
तस्मात् तज्ज्ञैः क्रियत इह तद्दोः फलं मध्यखेटे॥७॥

फल की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमध्य (केन्द्र) भचक्र गोल का तो केंद्र है लेकिन जिस वृत्ताकार कक्षा में ग्रह भ्रमण करते हैं उसका केन्द्र भूकेंद्र नहीं होता। अर्थात् ग्रह अपनी कक्षा में भ्रमण करते समय भूकेंद्र से समान दूरी पर नहीं रहते। इस कारण से भूस्थ दृष्टा भचक्र में ग्रह को उसके मध्यम स्थान पर नहीं देख पाते किन्तु वे अन्यत्र दिखाई देते हैं। इस प्रकार दिखाई देने से उसका अन्तर होता है अर्थात् जितने अन्तर पर वह ग्रह दिखाई देता है वह उस ग्रह का भुजफल कहा जाता है। अतः इस भुजफल को ज्ञात करके मध्यग्रह में संस्कार करते हैं तब वह ग्रह गणितागत स्पष्ट स्थान पर दिखाई देता है।

एवमेकेनैव श्लोकेन संक्षेपाच्छेद्यकसर्वस्वमुक्त्वेदानीं किंचित् सविस्तरं छात्रान् प्रत्याह—

पूर्वापरायतायां तद्भित्तावुत्तरपार्श्वके।
दर्शयेच्छिष्यबोधार्थं लिखित्वा छेद्यकं सुधीः॥८॥

इस प्रकार एक श्लोक में संक्षेप में आचार्य ने सब कुछ कह दिया है। अतः उसको किंचित विस्तृत रूप में छात्रों को बताये जाने के लिए—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वापर गत किसी समतल दीवार पर किसी योग्य आचार्य के द्वारा उसके उत्तर तथा पीछे (दक्षिण दिशा) की ओर समतल भाग पर छेद्यक लिखकर छात्रों को समझाया जाना चाहिये।

इदानीं कालविलम्बेन प्रतारणपरं वाक्यमिति ज्ञात्वा शिष्यैः पुनः पृष्टः सन्नाह—

दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियं यदृषिभिर्ब्राह्मं वसिष्ठादिभिः
पारंपर्यवशाद्रहस्यमवनीं नीतं प्रकाश्यं ततः।
नैतद्द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचाराचिरावासिनां
स्यादाहुः सुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्झतः॥९॥

सूर्य-प्रभा टीका— बहुत काल तक शिष्य की सभी प्रकार से परीक्षा करके सुशिष्य को जान कर उसको अंत में इस (शास्त्र) के ज्ञान

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

से सम्पन्न करे— यह दिव्य ज्ञान अतीन्द्रिय है अर्थात् इसको इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जा सकता। ऋषिमुनियों, ब्रह्मा, वसिष्ठ आदि ने अपनी परम्परा द्वारा इसके रहस्य को भली भांति व्यवहार किया तथा जाना और प्रकाशित किया है। अतः इसके ज्ञान को किसी द्वेषि, कृतघ्न, दुर्जन, दुराचारी तथा अधिक काल तक गुरुकुल में रहने वाले को नहीं दिया जाना चाहिये। वे इसको जानने के योग्य नहीं होते। ऐसे लोगों को इस का ज्ञान देने से सुकृतों का क्षय होता है। मुनिकृत नियम सीमाओं का उल्लंघन उचित नहीं होता है।

विशेष— श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय २० में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भक्ताय शिष्याय चिरोषिताय गुणोपपन्नाय च देयमेतत्।
भ्रात्रे च मित्राय च सूनवे च सुदुर्लभं छेद्यकगोलतन्त्रम्॥२७॥
प्रतिकश्चुककृत्कृतघ्नविद्द्विड्वपिताधार्मिकमूर्खदुर्जनेभ्यः।
इह तन्त्ररहस्यमप्रमेयं ददतः स्यात् सुकृतायुषोः प्रणाशः॥२६॥"

इदानीं विलिख्य छेद्यकमाह—

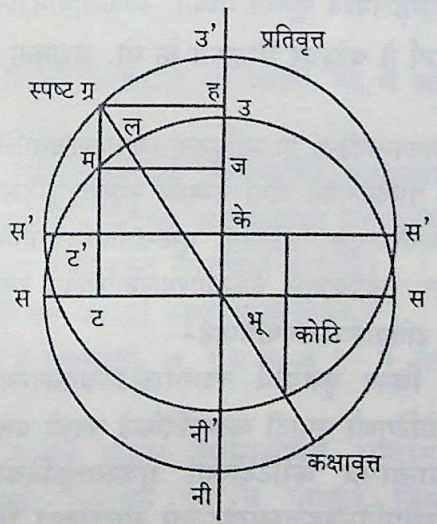
त्रिभज्यकासंमितकर्कटेन कक्षाख्यवृत्तं प्रथमं विलिख्य।
तन्मध्यतो मध्यमखेटभुक्तितिथ्यंशमानेन महीं सुवृत्ताम्॥१०॥
कक्षाख्यवृत्ते भगणाङ्कितेऽत्र दत्त्वोच्चखेटौ क्रियतोऽथ रेखा।
कुमध्यतुङ्गोपरिगा विधेया तिर्यक् ततोऽन्या सुधिया कुमध्ये॥११॥
उच्चोन्मुखीमन्त्यफलज्यकां च दत्त्वा कुमध्याद्विलिखेत् तदग्रे।
त्रिभज्ययैव प्रतिमण्डलाख्यं सैवोच्चरेखा त्वपरात्र तिर्यक्॥१२॥
तुङ्गोर्ध्वरेखा खलु यत्र लग्ना तत्रोच्चमस्मिन् प्रतिमण्डलेऽपि।
ततो विलोमं खलु तुङ्गभागैर्मेषादिरस्मात् खचरोऽनुलोमम्॥१३॥
देयस्तदुच्चान्तरमत्र केन्द्रं दोर्ज्योच्चरेखाखगयोश्च मध्ये।
तिर्यक्स्थरेखाखगयोस्तु कोटिः सोर्ध्वाधरा बाहुगुणस्तु तिर्यक्॥१४॥

छेद्यक को लिखकर बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या तुल्य व्यासार्ध का कर्कटक की सहायता से सर्व प्रथम इष्ट छेद्यक ग्रह का एक कक्षा वृत्त बनावें और इसके मध्य में ग्रह की मध्यम गति के पन्द्रहवें अंश तुल्य दूरी पर उक्त वृत्त के केन्द्र से एक बिन्दु लेकर उस पर एक (छोटा सा) वृत्त बनावे, यह भूमि संज्ञक वृत्त है। लम्बन तथा नति दर्शन के लिए यही भूमि है तथा अन्य सभी के लिए वह बिन्दु रूप

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ही भूमि है। उस कक्षा वृत्त में ३६० अंश अंकित करे तथा इसमें ग्रह के अभीष्ट स्थान और मेष राशि के आरम्भ बिंदु मानकर मध्यम ग्रह के उच्च स्थान पर चिन्ह लगावें। भू बिन्दु से ग्रह के उच्च बिंदु तक एक रेखा खेंचे यह उच्च रेखा है। इस भूमध्य उच्च रेखा पर दोनों और मत्स्य बिन्दु द्वारा एक अन्य तिर्यक् (लंबवत्) रेखा भूमध्य से खेंचे। ग्रह की अन्त्यफलज्या तुल्य भूमध्य बिंदु से उच्च रेखा पर एक बिंदु लेकर उस पर त्रिज्यातुल्य अर्धव्यास कर कर्कटक की सहायता से एक वृत्त बनावे, यह प्रतिमण्डल वृत्त हैं। इस पर भी उच्च रेखा को आगे बढ़ाकर मिलावे तथा इस पर भी प्रति वृ.केंद्र से पूर्व की भांति लंबवत रेखा खेंचे। प्रतिमण्डल में भी ३६० अंश के निशान लगावे। इस वृत्त में जहाँ उच्च रेखा स्पर्श करती है वहाँ प्रतिमण्डल का उच्च बिन्दु कल्पि करे। इससे उच्च राशि के अंश तुल्य विलोम अर्थात पीछे की ओर मेष का आरंभ बिन्दु कल्पित करे तथा ग्रह का स्थान भी इसी अनुलोम भाग में मेषारंभ से चिन्हित करे। यहाँ इस प्रकार ग्रह तथा उच्च स्थानों का अन्तर केन्द्र संज्ञक है। उच्च रेखा से ग्रह तक लम्बवत रेखा ज्या संज्ञक हैं। प्रतिमण्डल के मध्य में इस लंबवत रेखा तथा ग्रह का अन्तर कोटिज्या है। यह ऊध्वरिखा होती है यह बाहु अर्थाज ज्या (भुज) के लंबवत होती है।



चित्र में प्रतिमण्डल वृत्त का केन्द्र के तथा कक्षा वृत्त का केंद्र भू है। म कक्षा वृत में स्थित मध्यम ग्रह है। म ज रेखा के उ उ' उच्च रेखा पर लम्ब

सि० ३९-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रूप है यह ज्या है तथा प्रतिवृत्तस्थ ग्रह ग्र की इस लम्ब रूप रेखा से ऊर्ध्वाधर दूरी ज ह=अं.फ. ज्या है। ग्र ह रेखा उच्च रेखा पर लम्ब है। कोण म भू उ उ' ग्रह का केन्द्र संज्ञक है। सस तथा स' स' रेखायें उच्च रेखा के लम्बवत रेखायें हैं। के भू=ट ट' अन्त्यफलज्या है। उ तथा उ' कक्षावृत्त तथा प्रतिमण्डल वृत्त के क्रमशः उच्च स्थान हैं। ट ग्र = कोटि है।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १४ छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

निजकक्षावृत्तं यत्तस्माद् व्यासार्धमण्डलं विलिखेत्।
तद् द्वादशराश्यङ्कयं तस्योर्वी मध्यतः कल्प्या॥७॥
द्युचरस्यान्त्यफलज्यासमानमपि वर्धितं नयेत् सूत्रम्।
भूमध्यात् स्वाभिमुखं त्रिभज्यया केन्द्रवृत्तमत्र लिखेत्॥८॥
परमफलजीवया स्वोच्चनीचवृत्तं लिखेत् स्वकक्षाग्रे।
स्वोच्चसमानो मध्यो यदा तदोच्चे ग्रहस्थानम्॥९॥
भवति सदा बाहुज्या ग्रहनीचोच्चरेखान्तः॥१८॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त के स्फुटगति वासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कक्षा मण्डलमध्यं भूमध्ये मध्यमः स्वकक्षायाम्॥२३$\frac{१}{२}$॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गो. छेद्यकम् में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"गृहभागकलाङ्कितां हि स्वांकक्ष्यां व्यासदलादथालिखेत्।
द्युसदां परिकल्पयेत क्षमां तन्मध्ये नृमुखोद्धृतिक्षमाम्॥१॥
खचरान्त्यफलस्य शिञ्जिनीं भूकेन्द्रान्निजतुङ्गगामिनीम्।
प्रवितत्य तदग्रकादलं कक्ष्यामण्डलमालिखेत स्वकम्॥२॥"

इदानीं फलानयन इतिकर्तव्यतोपपत्तिमाह—

मध्यस्थरेखे किल वृत्तयोर्ये तदन्तरालेऽन्त्यफलस्य जीवा।
तदूर्ध्वतः कोटिगुणो मृगादौ कर्क्यादिकेन्द्रे तदधो यतः स्यात्॥१५॥
अतस्तदैक्यान्तरमत्र कोटिर्दोर्ज्या भुजस्तत्कृतियोगमूलम्।
कर्णः कुमध्यप्रतिमण्डलस्थखेटान्तरे स्पष्टखगो हि दृश्यः॥१६॥
कक्षाख्यवृत्ते श्रुतिसूत्रसक्ते फलं च मध्यस्फुटखेटमध्ये।
मध्येऽग्रगे स्पष्टखगादृणं तत्पृष्ठस्थिते स्वं क्रियते ततश्च॥१७॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्य-प्रभा टीका— इन कक्षावृत्त तथा प्रतिवृत्त के मध्यस्थ जो आड़ी रेखायें हैं उनका सर्वत्र अन्तर अन्त्यफलज्या तुल्य होता है। अन्त्यफलज्या के अग्रबिन्दु के ऊपर की ओर प्रतिवृत्त में जो कोटिज्या है वह मकरारंभ केन्द्र पर होती है और कर्क्यादि केंद्र पर अधःगत होती है। अतः कोटिज्या में अन्त्यफलज्या का योग-वियोग करने से ग्रह कक्षा मध्यगत तिर्यग (खडी) रेखा कोटि होती है। कोटि के तल तथा भूमध्य का अन्तर ज्या है वह भुज है। इस भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। ग्रह तथा भूमध्य के अन्तर सूत्र को कर्ण कहते हैं। यह सूत्र कक्षा मंडल में जहाँ लगता है वहाँ स्फुट ग्रह होता है। स्फुट और मध्य ग्रह का अन्तर फल संज्ञक होता है। भूमध्य तथा प्रतिमण्डलस्थ ग्रह अन्तर पर ही स्पष्ट ग्रह कक्षा वृत्त में दिखता है। मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह आगे रहने से फल को मध्यम ग्रह में धन तथा पीछे रहने पर फल को ऋण करते हैं। इस प्रकार मन्दफल ग्रह मन्दस्फुट तथा शीघ्रफल से स्फुट ग्रह प्राप्त होता है।

पूर्व श्लोक के चित्र में ग्रह = मज = केंद्रज्या।

भू ग्र = कर्ण। म ट = कोटिज्या = भू ज। म ल = फल संज्ञक है।

श्लोक १० से १७ तक की व्याख्या के लिए गणिताध्याय के स्पष्टाधिकार के श्लोक २७ से २९ की व्याख्या देखें। ये दोनों श्लोक पुञ्ज एक ही हैं।

विशेष— **श्रीपति ने सि.शे.** के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''ग्रहपरफलमौर्व्या दत्तयोर्ध्वे कुमध्यात् प्रतिवलयमिदं स्याद्व्यासखंडेन वृत्तम्।
भवति हि निजकक्षामण्डलाग्रे यदन्यत् परफलगुणवृत्तं स्वोच्चनीचाख्यमेतत्॥२॥''
ऊनाधिकं पश्यति मध्य माच्च स्फुटं नरस्तद्विवरं फलं हि।
ऋणंधनं च क्रियतेऽत एव मध्यग्रहे स्पष्टबुभुत्सुभिस्तत्॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधी. वृ. ग्रंथ के अ १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''स्पष्टं पश्यति यस्मात् मध्यादूनाधिकं नरस्तस्मात्।
विवरं तयोः फलमृणं धनं च मध्यग्रहे क्रियते॥१५॥''
कोटिफलमुपरि यस्माद् वान्त्ये प्रथमे पदे भवेत् त्रिगुणात्।
मध्यमयोश्च यतोऽधस्ततो युतिर्वान्तरं कोटिः॥१७॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूग्रहमध्ये कर्णः स्वकर्णमध्यग्रहान्तरे च फलम्।
भवति सदा बाहुज्या ग्रहनीचोच्चरेखान्तः॥१८॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु. सि. के स्फुटगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कोटिफलं व्यासार्धात् पदयोराद्यन्तयोर्भवत्युपरि।
द्वितृतीययोर्यतोऽधस्तद्युक्तोनं ततः कोटिः॥२७॥
अनुलोमं मध्यसमं भूस्थः पश्यति यतो न कक्षायाम्।
स्पष्टं तन्मध्यान्तरमृणं धनं वा ग्रहे मध्ये॥२६॥"

आर्यभट ने आर्यभटीय के काल क्रियापाद में आचार्योक्त कहा है।

"कक्ष्याप्रतिमण्डलगा भ्रमन्ति सर्वे ग्रहास्स्वचारेण।१६$\frac{१}{२}$।
कक्ष्यामण्डलतुल्यं स्वं-स्वं प्रतिमण्डलं भवत्येषां।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं घनभूमध्यादतिक्रान्तं॥१८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिज्यकायां पदैस्तत् फलमथखलु कोटेः कोटिसिद्धयै विधेयम्।
कोटिबाहु फल्वर्ग समासाद्यत्पदं तदिह कर्णमवेहि।
नीचोच्चसंज्ञकवलयस्य च विस्तारार्ध कोटिज्यका ऽन्त्यफलजेन गुणेन कार्या।
युक्तो हीन सहिता च पदक्रमेणेति.....॥"

सूर्यसिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शीघ्रं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम्॥४०॥
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः।$\frac{१}{२}$।"

ब्र.गु. ने ब्र. स्फु. के स्फुटगत्य उत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अन्त्यफलज्याग्रात् स्यात् पदयोराद्यन्तयोरुपरि कोटिः।
द्वितृतीययोरधस्तात् तदन्तरैक्यं ततः कोटिः॥१३॥"

इदानीं मन्दस्फुटं मध्यमं प्रकल्प्य शीघ्रफलं यत् साध्यते तदुपपत्तिमाह—

मध्यो हि मन्दप्रतिमण्डले स्वे मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले च।
भ्रमत्यतश्चञ्चलकर्मणीह मन्दस्फुटो मध्यखगः प्रकल्प्यः॥१८॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मन्दस्फुट ग्रह को मध्यम ग्रह मान कर शीघ्र फल साधन की उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यमग्रह अपने प्रतिमण्डल वृत्त में तथा मन्दस्फुट ग्रह अपने शीघ्रपतिमण्डल में भ्रमण करता है।

पूर्वप्राप्त मन्दस्फुट ग्रह में, उसको मध्यम ग्रह मान कर, पूर्वोक्त मंद कर्म प्रकार से शीघ्रकर्म का संस्कार करे।

इदानीमुच्चोपपत्तिमाह—

भ्रमन् ग्रहः स्वे प्रतिमण्डले नृभिः स यत्र कक्षावलये विलोक्यते।
स्फुटो हि तत्रास्य फलोपपत्तये प्रकल्पितं तुङ्गमिहाद्यसूरिभिः॥१९॥
यः स्यात् प्रदेशः प्रतिमण्डलस्य दूरे, भुवस्तस्य कृतोच्चसंज्ञा।
सोऽपि प्रदेशश्चलतीति तस्मात् प्रकल्पिता तुङ्गगतिर्गतिज्ञैः॥२०॥
उच्चाद्भषट्कान्तरितं च नीचं मध्यः स्वनीचोच्चसमो यदा स्यात्।
कक्षास्थमध्योपरि कर्णसूत्रपातात् स्फुटो मध्यसमस्तदानीम्॥२१॥

सूर्य-प्रभा टीका— अपने प्रतिवृत्त में भ्रमणशीलग्रह को मनुष्य उसके कक्षावृत्त में जहाँ देखता है वह स्फुट होता है। वहाँ फल की उत्पत्ति होने से पूर्वाचार्यों ने एक ग्रह-उच्च स्थान की कल्पना की है। यह ग्रहप्रतिमण्डल में पृथ्वी से बहुत दूर एक स्थान माना है जिसकी उच्च संज्ञा कही गई है। यह उच्च स्थान भी चलायमान है अतः इसको चलायमान मानकर इस उच्च स्थान की गति ज्ञात की गई है। इस उच्च स्थान से छः राशि अन्तर पर नीच स्थान होता है। मध्यग्रह के स्व नीच-उच्च बिन्दुओं पर मध्य ग्रह तथा स्पष्ट ग्रह समान होते हैं और कक्षा के मध्य में कर्णसूत्र पतित स्थान पर मध्यम ग्रह से स्फुट ग्रह प्राप्त होता है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मध्यः स्वकक्षा परिधौ स्फुटस्तु स्वकेंद्रवृत्ते भ्रमतिद्युचरी।
द्रष्टा स्फुटं पश्यति मध्यतुल्यं भान्तस्थिते भार्धगते च केन्द्रे।
यस्मादभावोऽत्र फलस्य तस्मात भवेद् ग्रहस्योर्ध्वमधः स्थितस्य॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कक्षावृत्ते मध्यः स्वकेन्द्रवृत्ते ग्रहः स्पष्टः॥१२॥
मध्यतुल्यं स्पष्टं भान्तगते भार्धगेऽपि वा केन्द्रे।
द्रष्टा पश्यति यस्मात् मध्यस्यातः फलाभावः॥१४॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के स्फुटगति वासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रतिपादनार्थमृच्चं प्रकल्पितं ग्रहगतेस्तथा पातः।
भुक्तेरुनाधिकता मानस्य च भवति कर्णवशात्॥३०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. छेद्यकम् में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यमैव भवति स्फुट भुक्तिः खेचरे वलयसङ्गमुपेते।
मध्यमः स्फुटसमः परमोच्चे मन्दनीय नीकटत्वमुपेते॥७॥"

इदानीमन्यदाह—

उच्चस्थितो व्योमचरः सुदूरे नीचस्थितः स्यान्निकटे धरित्र्याः।
अतोऽणुबिम्बः पृथुलश्च भाति भानोस्तथासन्नसुदूरवर्ती॥२२॥

अन्य बात—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह उच्च स्थान पर स्थित होने के कारण भूमि से अति दूर स्थित होता है अतः उसका बिंब भूमि पर स्थित मनुष्यों को लघु दिखाई देता है तथा नीच स्थान पर स्थित होने के कारण ग्रह भूमि के अति निकट स्थित होता है अतः उसका बिंब मनुष्यों को वृहद दिखाई देता है। इसी प्रकार सूर्य बिंब भी पृथ्वी के समीप तथा दूरवर्ति रहने पर वृहद तथा लघु दिखाई देता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अत एव द्युचरणामगुता भवति क्रमान्महत्वं वा।
सवितुश्चासन्नानां दूरगतानां क्रमेणैव॥११॥
स्वोच्चात् षड्भाभ्यधिको यदा तदा भवति स्वनीचस्थः।
दूरेणोच्चग उर्व्याः कर्णवशान्नोच्चगो निकटे॥१०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गोलाध्याय के छेद्यकाध्याय २ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"धाम्नि स्वतुङ्गसदृशो द्युचरो यदोच्चे नीचे तथैव भदलाभ्यधिके च मध्यः।
दूरे क्षितेः निकटगः श्रुतिमानतोऽसौ सौक्ष्म्यं महत्त्वमत एव भवेद् ग्रहाणाम्॥६॥'

इदानीमन्यद्वक्तुं प्रकारान्तरमाह—

उक्ता मयैषा प्रतिवृत्तभङ्ग्या युक्तिः पृथक् श्रोतुरसंभ्रमार्थम्।
स्पष्टीकृतेस्तां पुनरन्यथाहं नीचोच्चवृत्तस्य च चलि भङ्ग्या॥२३॥

CC-0.JK. Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

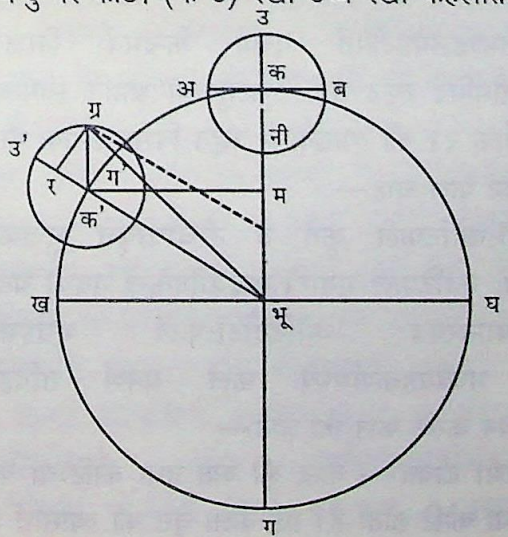
इन बातों को दूसरे प्रकार से कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि उन्होंने जो पूर्व में नीचोच्च प्रतिवृत्त की घुमावदार विधि बताई है उसको अब वे आसानी से समझ में आने वाली विधि से पुनः स्पष्ट कर रहे हैं।

इदानीं तां भङ्गिमाह—

कक्षास्थमध्यग्रहचिह्नतोऽथ वृत्तं लिखेदन्त्यफलज्यया तत्।
नीचोच्चसंज्ञं रचयेच्च रेखां कुमध्यतो मध्यखगोपरिस्थाम्॥२४॥
कुमध्यतो दूरतरे प्रदेशे रेखायुते तुङ्गमिह प्रकल्प्यम्।
नीचं तथासन्नतरेऽथ तिर्यङ्नीचोच्चमध्ये रचयेच्च रेखाम्॥२५॥
नीचोच्चवृत्ते भगणाङ्कितेऽस्मिन् मान्दे विलोमं निजकेन्द्रगत्या।
शैघ्र्येऽनुलोमं भ्रमति स्वतुङ्गादारभ्य मध्यद्युचरो हि यस्मात्॥२६॥
अतो यथोक्तं मृदुशीघ्रकेन्द्रं देयं निजोच्चाद्द्युचरस्तदग्रे।
दोर्ज्योच्चरेखावधि खेटतः स्यात्तिर्यक्स्थरेखावधि कोटिजीवा॥२७॥

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से ग्रह कक्षावृत्त में ३६० अंश अंकित ग्रह अंकित करे। उप पर मध्यम ग्रह (क) चिन्हित करके उस ग्रह चिन्ह को केंद्र मान अन्त्यफलज्या प्रमाण (क उ) का एक वृत्त (उ अ नी ब) बनावे। इस वृत्त का नाम नीचोच्च वृत्त है। भूमध्य से ग्रह तक जाने वाली उर्ध्वाधः रेखा ग भू नी क को थोड़ा सा और ऊपर की ओर बढ़ावे जो नीचोच्च वृत्त को ऊपर की ओर (उ) बिन्दु पर काटे। (क उ) रेखा उच्च रेखा कहलाती है।



CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नीचोच्च वृत्त में भूमि से जो दूरतर बिन्दु (उ) है जहाँ भूमध्य से उर्ध्व रेखा नीचोच्च वृत्त को काटती है वह उच्च बिंदु माना जाता है तथा जो आसन्न बिन्दु (नी) है वह नीच बिन्दु माना जाता है। इन नीचोच्च बिन्दुओं से मत्स्य रेखा द्वारा नीचोच्च रेखा के लम्बवत एक रेखा नीचोच्च वृत्त केंद्र से खेंचे। इस नीचोच्च वृत्त में केन्द्र गत उच्च स्थान (उ) से आरम्भ होकर मध्यम ग्रह भ्रमण करता है। मन्द का विलोम तथा शीघ्र का अनुलोम भ्रमण होता है। अतः मन्द केन्द्र उच्च स्थान से विलोम तथा शीघ्र केन्द्र अनुलोम हेाता है तथा उसके अग्र भाग पर ग्रह होता है। ग्रह का उच्च रेखा से अंतर दोज्या (ज्या) होता है तथा ग्रह का लंबवत रेखा से अन्तर कोटिज्य होता है।

(पूर्व श्लोक १० से १४ तथा यहाँ बताई विधि दोनों एक ही हैं। इसकी और स्पष्टता के लिए लेखक की 'दीर्घवृत्त लक्षणम' की हिन्दी टीका देखें।)

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के छेद्यकाधिकार १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

परमफलजीवया स्वोच्चनीचवृत्तं लिखेत् स्वकक्षाग्रे।
स्वोच्चसमानो मध्यो यदा तदोच्चे ग्रहस्थानम्॥९॥
अनुलोमं निजमन्दात् प्रतिलोमं गच्छति स्वशीघ्रोच्चात्।
कक्षावृत्ते मध्यः स्वकेन्द्रवृत्ते ग्रहः स्पष्टः॥१२॥

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गो.छेद्यकम् में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रतिमण्डलमेतदीरितं वलयं केन्द्रभवं निरक्षजम्।
अनुलोममिदं स्फुट ग्रहः स्फुटभुक्त्या भ्रमति स्वमन्दतः॥३॥"

पूर्व श्लोक २२ की व्याख्या में उद्धृत विशेष श्लोक भी देखें।

इदानीं कर्णानयनं फल चाह—

ये केन्द्रदोःकोटिफले कृते ते नीचोच्चवृत्ते भुजकोटिजीवे।
त्रिज्योर्ध्वतः कोटिफलं मृगादौ कर्क्यादिकेन्द्रे तदधो यतः स्यात्॥२८॥
अतस्तदैक्यान्तरमत्र कोटिर्दोर्दोःफलं भूग्रहमध्यसूत्रम्।
कर्णोऽथ मध्यग्रहकर्णमध्ये फलं धनर्णं तदिहोक्तवच्च॥२९॥

कर्ण का आनयन करके फल का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— केन्द्र की ज्या तथा कोटिज्या का फल नीचोच्च वृत्त में भुज तथा कोटि होता है। ग्रह कक्षा वृत्त का व्यासार्ध त्रिज्या तुल्य है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस त्रिज्या के (आगे) ऊपर कोटि फल मकारादि केन्द्र होने पर होता है तथा कर्क्यादि केन्द्र होने पर त्रिज्या के नीचे होता है। इस प्रकार त्रिज्या तथा कोटिफल का इन केन्द्रों में योगान्तर स्पष्ट कोटि होती है। त्रिभुज (पूर्वचित्र में) भू ग्र र में भुजफल (ग्र र) बाहु है, भूमि तथा ग्रह का अन्तर (भू ग्र) सूत्र कर्ण है (तथा भू र कोटि है)। हम जानते हैं कि बाहु तथा कोटि के वर्गों के योग $\left[\sqrt{(\text{ग्र र})^2 + (\text{भू र})^2} = \text{भूग्र} = \text{कर्ण}\right]$ का मूल कर्ण होता है। कक्षा वृत्त में कर्ण सूत्र जहाँ मिलता है (ग्र) वहाँ स्फुट ग्रह होता है। अतः मध्यम ग्रह क' (=र) तथा स्फुट ग्रह (ग्र) के मध्य अन्तर फल तुल्य होता है जिसका धन-ऋण मध्यम ग्रह में करने से स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्पष्टं पश्यति यस्मात् मध्यादूनाधिकं नरस्तस्मात्।
विवरं तयोः फल्मृणं धनं च मध्यग्रहे क्रियते॥१५॥
अन्त्यफलज्याग्रात् कोटिरुपरि केन्द्रे मृगादिगे यस्मात्।
कीटागिदते चाधस्तत्र तदैक्यान्तरं कोटिः॥१६॥
कोटिफलमुपरि यस्माद् वान्त्ये प्रथमे पदे भवेत् द्विगुणात्।
मध्यमयोश्च यतोऽधस्ततो युतिर्वान्तरं कोटिः॥१७॥
भूग्रहमध्ये कर्णः स्वकर्णमध्यग्रहान्तरे च फलम्।
भवति सदा बाहुज्या ग्रहनीचोच्चरेखान्तः॥१८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गो.छेद्यकम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्पष्टखगं क्षयगं त्वधिकं वा पश्यति येन नरोऽन्तरलिप्ताः।
मन्दफलं त्वनयोः क्षयवृद्धी मध्यखगे चलजं विपरीतम्॥८॥
परमफलगुणादधः कुलीरादुपरि मृगादित एव कोटि जीवा।
वियुतियुतिरतोऽग्रकाऽनयोस्तद्भुजगुणवर्गयुतेः पदं श्रुतिः स्यात्॥९॥
उपरि कोटिफलं त्रिगुणान्मृगाच्छशिगृहात्तदधः स्वमृणं ततः।
त्रिभगुणं क्रियते ग्रहकोटिजं भुजफलाग्रकयोः श्रुतिरुक्तवत्॥१०॥
भूग्रहान्तरमिहोच्यते श्रुति कर्णमध्यखगयोर्यदन्तरम्।
तत्फलं दिविचरे पुरःस्थिते मध्यमे धन ऋणं च पृष्ठतः॥१५॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्य-सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा--

"शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकारादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम्॥४०॥
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः। $\frac{१}{२}$।"

अथ मिश्रभङ्गिमाह—

मन्दोच्चतोऽग्रे प्रतिमण्डले प्राग्ग्रहोऽनुलोमं निजकेन्द्रगत्या।
शीघ्राद्विलोमं भ्रमतीव भाति विलम्बितः पृष्ठत एव यस्मात्॥३०॥
नीचोच्चवृत्ते पुनरन्यथा ते तस्यानुलोमप्रतिलोमयाने।
एका गतिः सा प्रतिभानमन्यत् प्राज्ञैः फलार्थं प्रविकल्पितं तत्॥३१॥
भङ्गिद्वयं चेल्लिखितं विमिश्रं वृत्तद्वयेऽप्यत्र यथोक्तदत्तः।
नीचोच्चवृत्तप्रतिवृत्तयोगे भवत्यवश्यं द्युचरस्तदानीम्॥३२॥
यथा भवेत् तैलिकयन्त्रमध्ये काष्ठभ्रमो गोभ्रमतो विलोमः।
नीचोच्चवृत्तभ्रमणं तथान्यत्स्याद्गच्छतोऽपि प्रतिमण्डलेन॥३३॥

इन दोनों विधियों का मिश्रण—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह पूर्व की ओर प्रतिमण्डल में भ्रमण करता है। इसी प्रकार गणक ग्रह को नीचोच्च वृत्त में फलज्ञात करने के लिए कल्पित करता है। प्रतिमण्डल में ग्रह विलोम गति से चलता हुआ प्रतीत होता है। मन्दोच्च के आगे प्रतिमण्डल में ग्रह निज केन्द्र गति से विलोम घूमता हुआ दिखाई देता है और शीघ्रोच्च से विलोम गति से तथा शीघ्रोच्च से पीछे (धीरे) गति करता है। नीचोच्च वृत्त में ये अन्यथा अनुलोम प्रतिलोम गति करते हैं। एक गति जो अन्य की गति के अपेक्षा प्रतीत होती है उसको आगे फलज्ञान के लिए कल्पित करते हैं।

इन दोनों प्रकार की ग्रह भ्रमण विधियों को लिखकर दोनों वृत्तों को मिश्रित करके जैसा यहाँ कहा गया है वैसा करे। नीचोच्चवृत्त और प्रतिवृत्त जहाँ योग करते है वहाँ अवश्यय ही ग्रह होता है जिसको ज्ञात करते हैं।

आचार्य ने पूर्वोक्त विलोम गति किस प्रकार दिखती है उसको एक दृष्टांत के द्वारा समझाया है कि जैसे तैल निकालने के यंत्र (घाणी) के मध्य में तिल को पीसने के लिए एक ऊर्ध्व काष्ठ दंड प्रक्षेपित किया जाता है जिस दिशा में गौर (बैल) भ्रमण करता हुआ उसको घुमाता है उससे वह विपरीत भ्रमण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

करता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार गौर (बैल) अपसव्य भ्रमण करता है तथा ऊर्ध्व काष्ठ दंड संपूर्ण भागों सहित सव्य भ्रमण करता हुआ दिखता है। इसी प्रकार नीचोच्च वृत्त में ग्रह विपरीत दिशा में भ्रमण करता हुआ प्रतीत होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १४ छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अनुलोमं निजमन्दात् प्रतिलोमं गच्छति स्वशीघ्रोच्चात्।
कक्षावृत्ते मध्यः स्वकेन्द्रवृत्ते ग्रह स्पष्टः॥१२॥
वेगः स्वकेन्द्रवृत्ते य : कक्षामण्डलेऽपि स एव।
मध्यैव गतिः स्पष्टा वृत्तद्वययोगगे द्युचरे॥१३॥"

वटेश्वराचाग्र ने वटे.सि. के गोला. के छेद्यकम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रतिमण्डलमेतदीरितं वलयं केन्द्रभवं निरक्षजम्।
अनुलोममिदं स्फुट ग्रहः स्फुट भुक्त्या भ्रमति स्वमन्दतः॥३॥
शीघ्रात् प्रतिलोमसादितः कक्ष्यामण्डल चारतः क्रमात्।
नीचोच्चवृत्तमलिखेत् केन्द्रं तस्य खगे विधीयते॥४॥"
स्पष्टखगो भ्रमति प्रतिलोमगस्त्विह निजोच्चगतश्च बृहदगतिः।
लघुगतिस्त्वनुलोमगतिर्यदा वलययोरुभयोः समयोजनः॥१५॥

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्र.गु. ने स्पष्ट गतिवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नीचोच्चवृत्तमध्यं मध्ये तद् भ्रमति मध्यगः स्वोच्चात्।
तत्परिधौ प्रतिलोमं मन्दोच्चाद् भ्रमति शीघ्रोच्चात्॥२५॥"

इदानीं मन्दशीघ्रकर्मद्वयेन स्फुटत्वे कारणमाह—

मध्यगत्या स्वकक्षाख्यवृत्ते व्रजेन्मन्दनीचोच्चवृत्तस्य मध्यं यतः।
तद्वृतौ शीघ्रनीचोच्चमध्यं तथा शीघ्रनीचोच्चवृत्ते स्फुटः खेचरः॥३४॥
शीघ्रनीचोच्चवृत्तस्य मध्यस्थितिं ज्ञातुमादौ कृतं कर्म मान्दं ततः।
खेटबोधाय शैघ्र्यं मिथः संश्रिते मान्दशैघ्र्ये हि तेनासकृत् साधिते॥३५॥

मन्द तथा शीघ्र दोनों कर्मों को स्फुट करने का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्य गति से ग्रह स्वकक्षावृत्त में तथा मन्द नीचोच्च प्रतिवृत्त में मध्यमस्फुट ग्रह भ्रमण करता है। इसी प्रकार अन्य शीघ्रोच्च से

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शीघ्रनीचोच वृत्त में मध्यमस्फुट ग्रह तथा शीघ्र नीचोच्च प्रतिवृत्त में स्फुट ग्रह भ्रमण करता है। मन्द फल का संस्कार मध्यम ग्रह में करने से मंद स्फुट ग्रह होता है तथा उसको मध्यम ग्रह मान कर उसी प्रकार शीघ्रफल का संस्कार करने से शीघ्रस्फुट ग्रह होता है। जब ग्रह अपने प्रतिवृत्त में भ्रमण करते हैं तब उनकी स्थिति भचक्र में उस समय स्फुट स्थिति होती है।

इदानीं मन्दकर्मणि कर्णः किं न कृत इत्याशङ्क्योत्तरमाह—

स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मणीह कर्णः कृतो नेति वदन्ति केचित्।
त्रिज्योद्धृतः कर्णगुणः कृतेऽपि कर्णैः स्फुटः स्यात् परिधिर्यतोऽत्र॥३६॥
तेनाद्यतुल्यं फलमेति तस्मात् कर्णः कृतो नेति च केचिदूचुः।
नाशङ्कनीयं न चले किमित्थं यतो विचित्रा फलवासनात्र॥३७॥

मन्दकर्ण में कर्ण का कुछ भी क्यों नहीं किया गया? इस शंका का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— यहाँ शीघ्रफल ज्ञात करने में कर्ण का अनुपात किया गया है लेकिन मन्दकर्म में कर्ण का अनुपात प्राप्त फल में स्वल्पान्तर होने के कारण नहीं किया गया है। मन्दफल तथा कर्ण से अनुपात द्वारा साधित मन्दफल में स्वल्पान्तर ही रहता है। मन्दकर्म में मन्दकर्ण तुल्य व्यासार्ध से जो वृत्त उत्पन्न होता है वह कक्षामण्डल ही होता है जिसमें ग्रहभ्रमण करता है। पाठ पठित मन्द परिधि त्रिज्याग्र में परिणत है। उसको कर्ण व्यासार्ध में परिणत करते हैं, यदि त्रिज्यावृत्त में यह पाठ-पठित मन्द परिधि पाते हैं तो कर्णवृत्त में क्या? इससे स्फुट परिधि प्रमाण प्राप्त होता है। इसको भुजज्या से गुणा करके ३६० भांश से भाग देने से जो फल प्राप्त होता है उसको त्रिज्या से गुणाकर कर्ण से भाग देना चाहिए तब उसका स्वरूप =

$$\frac{\text{परिधि} \times \text{कर्ण} \times \text{भुज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{त्रिज्या} \times ३६० \times \text{कर्ण}} = \frac{\text{परिधि} \times \text{भुज्या}}{३६०}$$

यह पूर्वफल तुल्य ही आता है। यह आचार्य ब्रह्मगुप्त का मत है।

यदि इस तरह कर्ण से परिधि का स्फुटत्व होता है तब शीघ्रकर्ण में क्यों नहीं किया गया इसके लिए चतुर्वेदाचार्य कहते हैं कि शीघ्रकर्ण में इस तरह क्यों नहीं किया गया? यह आशङ्का नहीं करनी चाहिए क्योंकि फलोपपत्ति विचित्र है। शुक्र की परिधि अन्यथा स्फुट होती है और भौम की अन्यथा होती है तब बुध की इस तरह क्यों नहीं की यह शंका नहीं करनी चाहिये। यहाँ ब्रह्मगुप्त ने जो कही है वही बहुत सुन्दर है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— उपरोक्त व्याख्या में जो ब्रह्मगुप्त कथन का संदर्भ कहा गया है वह ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुट गतिवासना में इस प्रकार कहा है। यथा—

"त्रिज्याभक्तः परिधिः कर्णगुणो बाहुकोटिगुणकारः।
असकृतन्मान्दे तत्फलमाद्यसमं नात्रकर्णोऽस्मात्॥२६॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"त्रिज्याहृतः श्रुतिगुणः परिधिर्यतो
दोः कोटयोर्गुणो मृदुफलानयनेऽसकृत् स्यात्।
स्यान्मान्दमाद्यसममेव फलं ततश्च
कर्णः कृतो न मृदुकर्मणि तन्त्र करैः।" अ.१५ श्लो४५।

इदानीं नतकर्मवासनामाह—

प्राक् पश्चात् प्रतिमण्डलस्थखचरं द्रष्टा कुमध्यस्थितः
कक्षायां खलु यत्र पश्यति नतं नो तत्र भूपृष्ठगः।
मध्याह्ने तु कुमध्यपृष्ठगनरौ तुल्यं यतः पश्यत-
स्तेनोक्तं नतकर्म लम्बनविधौ या युक्तिरत्रापि सा॥३८॥

नतकर्म वासना—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमध्य स्थित दृष्टा प्रतिमण्डल स्थित ग्रह को उसकी कक्षा में पूर्व अथवा पश्चिम कपाल में जिस स्थान पर देखता है उसी स्थान पर, भूपृष्ठस्थ दृष्टा उसको वहाँ पर ग्रह के नत होने के कारण नहीं देख पाता। मध्यान्ह में भूपृष्ठ तथा भूमध्य एक सीध में होने के कारण अपने खमध्य में ग्रह को देखने से उसमें नत न होने से वह दोनों स्थानों से एक ही स्थान पर दिखाई देता है। अतः ग्रहों में नतकर्म संस्कार लम्बन संस्कार की भांति करना चाहिये।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी. वृ. ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"भूदलं मध्यस्थस्य द्रष्टुर्भूपृष्ठगस्य वा दृष्टिः।
स्वाभिमुखं याति समं न लम्बनं तेन मध्याह्ने॥२६॥
पूर्वापरं कुवृत्ते लम्बन लिप्तोपपत्तिरुक्ता या।
याम्योदक्क्षितिजवशात् सा ज्ञेयाऽवनतिलिप्तानाम्॥२७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलाध्याय के गो.वासना में आचार्योक्त कहा है। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"प्रागपरकपालयोः कुदल कला लम्बनं क्षयमतः स्वम्।
भूदलपृष्ठगनरयोर्दृक्साम्याल्लम्बनं न मध्याह्ने॥२१॥
उपपत्तिर्या प्रोक्ता प्रागपरे लम्बनेऽवनति विरहे।
लम्बनविरहेऽवनतौ याम्योत्तरे सा तथैवास्ति॥२२॥"

इदानीं गतिफलाभावस्थानमाह—

कक्षामध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसंपाते।
मध्यैव गतिः स्पष्टा परं फलं तत्र खेटस्य॥३९॥

गतिफलाभाव का स्थान—

सूर्य-प्रभा टीका— कक्षावृत्तगत (लंब) तिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त पर जहाँ संपात करती है वहाँ ग्रह की मध्यम तथा स्पष्ट गति समान होती है। वहाँ पर गतिफल का अभाव होता है लेकिन वहाँ पर ग्रह का फल परम होता है। जहाँ ग्रह का फल परम होता है वहाँ उसके गतिफल का अभाव होता है क्योंकि अद्यतन (आज का) तथा श्वस्तन (कल का) ग्रह का अंतर ही गति होती है तथा फल का अन्तर गतिफल होता है। ग्रह की गति के फलाभाव का स्थान धन-ऋण संधि होती है। आचार्य कहते हैं कि लल्लाचार्य द्वारा यह कहना कि "वृत्तद्वययोगगे.....फलाभावः' सही नहीं है क्योंकि दोनों वृत्तों के योग स्थान पर ग्रह का परमफल नहीं होता।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के छेद्यकाधिकार में इस प्रकार कहा है। यथा–

"मध्यैव गतिः स्पष्टाः वृत्तद्वययोगगे द्युचेर॥१३॥
दृष्टा पश्यति यस्मात् मध्यस्यातः फलाभावः।$\frac{१}{२}$।"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गोलाध्याय के छेद्यकम २ में लल्लाचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यमैव भवति स्फुटभुक्तिः खेचरे वलनसङ्गमुपेति।६$\frac{१}{२}$।"

लेकिन क्योंकि लल्लोक्त बात ही वटेश्वराचार्य ने कही है अतः वटेश्वराचार्य की बात को भास्कराचार्य की बात से अधिक महत्व देकर विचार करना होगा। क्योंकि वटेश्वर के कथन को बिना समझे काटना त्रुटिपूर्ण हो सकता है उनकी गणित में महानता को देखते हुए। विद्वान लोग इस पर गहनता से विचार करें।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं ग्रहस्य वक्रत्वं छेद्यके यथा शीघ्रं दृश्यते तदर्थमाह—

वंशोद्भवाभिः प्रतिमण्डलाद्यं कृत्वा शलाकाभिरिदं यथोक्तम्।
प्रचाल्य तुङ्गं खचरं च गत्या वक्रादि सर्वं खलु दर्शयेद्द्राक्र॥४०॥

छेद्यक से ग्रह का वक्रत्व यथा शीघ्रत्व देखना—

सूर्य-प्रभा टीका— बांस की शलाखा से कक्षावृत्त, प्रतिमण्डल वृत आदि पूर्वोक्त प्रकार से छेद्यक बनाकर उसमें स्पष्ट ग्रह का स्थान पहले दिन अंकित करे इसी प्रकार दूसरे (अगले) दिन फिर स्पष्ट ग्रह का स्थान अंकित करे। यदि दूसरे दिन का स्पष्ट ग्रह स्थान प्रथम दिन से पीछे हो तो ग्रह की वक्र गति होना ज्ञात होता है।

इदानीं केन्द्रसंज्ञां स्फुटकक्षां चाह—

वृत्तस्य मध्यं किल केन्द्रमुक्तं केन्द्रं ग्रहोच्चान्तरमुच्यतेऽतः।
यतोऽन्तरे तावति तुङ्गदेशान्नीचोच्चवृत्तस्य सदैव केन्द्रम्॥४१॥
ग्रहस्य कक्षा चलकर्णनिघ्नी स्फुटा भवेद्व्यासदलेन भक्ता।
तद्व्यासखण्डान्तरितः कुमध्यात्स भ्राम्यते हि प्रवहानिलेन॥४२॥

केन्द्र संज्ञा से स्फुट कक्षा का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— वृत्त के मध्य के स्थान को केन्द्र कहते हैं तथा ग्रह तथा उच्च के अन्तर को भी केंद्र कहते हैं। जितना यह केन्द्र होता है तथा नीचोच्च ग्रह का केन्द्र मध्यम ग्रह होता है अतः इस अन्तर को केंद्र कहते हैं। ग्रह की कक्षा (योजन) को शीघ्रकर्ण से गुणा करके व्यासार्ध से विभक्त करने से केन्द्र का मान स्फुट होता है। भूव्यासार्ध द्वारा भूकेन्द्र से इसके तुल्य जो कोण अन्तरित होता है उतना ग्रह प्रवह वायु वश अपनी कक्षा में भ्रमण करता है।

विशेष— आचार्योक्त बात को ही लल्लाचार्य ने अन्य प्रकार से कहा हैं यथा गोलाध्याय के छेद्यकाधिकार में—

"भूग्रहमध्ये कर्णः स्वकर्णमध्यग्रहान्तरे च फलम्।
भवति सदा बाहुज्या ग्रहनीचोच्चरेखान्तः॥१८॥"

अर्थात् भूकेन्द्र तथा स्फुट ग्रह के मध्य की दूरी कर्ण होती है।

जहाँ प्रतिवृत्त में यह कर्ण मिलता है उस बिन्दु तथा मध्यम ग्रह के बीच के कक्षावृत्त चाप को फल कहते हैं।

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के छेद्यकम २ में आचार्योक्त ही लल्लाचार्य की भांति कहा है। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"भूग्रहान्तरमिहोच्यते श्रुतिः कर्णमध्यखगयोयदिन्तरम्।
तत्फलं दिविचरे पुरः स्थिते मध्यमे धनंमृणं च पृष्ठतः॥१५॥"

इदानीं भुजान्तरकर्मोपपत्तिमाह—

मध्यमार्कोदयात् प्राक् स्फुटार्कोदयः स्यादृणे तत्फले स्वे यतोऽनन्तरम्।
तेन भास्वत्फलोत्थासुजातं क्षयः स्वं फलं युक्तियुक्तं निरुक्तं ग्रहे॥४३॥

भुजान्तर कर्म की उपपत्ति–

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यम सूर्य के उदय के पूर्व स्पष्ट का उदय होने पर फल ऋण होता है और यदि पश्चात् स्पष्ट सूर्य का उदय होता है तो फल को धन करते हैं। इस प्रकार धन अथवा ऋण फल के असु तुल्य समय के बाद अथवा पूर्व में सूर्योदय होता है। यह युक्ति-युक्त रूप में ग्रह में धन अथवा ऋण करने के लिए कहा गया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मध्यस्योदयकालो यः स रवेः स्वेचिरेण शीघ्रमृणे।
तत्फलकलासुभिरतः स्वगति त्रैराशिकं स्वर्णम्॥७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यमात् स्फुटरवेस्समुद्गमः प्रागृणेर्विफलासुभिर्यतः।
स्वेचिरात्तदनुपातजं फलं खेचरेष्वृणमतो धनं भवेत्॥६॥"

श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय १६ के श्लोक २३ में आचार्योक्त कहा है।

"रविफलगतिघातात् चक्रलिप्ताभिराप्तं स्वमृणमिह विमध्यादर्कवत् खेचरेषु।"

सूर्यसिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रह भुक्ति र्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्याग्रहेऽर्कवत्॥"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु. सि. के स्फुटगत्युत्तराध्यय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यस्फुटान्तरकला बाहुफलं तीक्ष्णकिरणस्य।
स्फुटभुक्तयाऽर्कादिनां भुजान्तरं क्षयधनं रविवत्॥१६॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं छेद्यकोपसंहारेण गणकप्रज्ञां वर्णयन्नाह—

ये दर्भगर्भाग्रधियोऽत्र तेषां स्याच्छेद्यकार्थः परमाणुरूपः।
येऽन्ये जडाः कुण्ठधियश्च तेषां स्यादिन्द्रवज्राहतपक्षतुल्यः॥४४॥

छेद्यक के उपसंहार में गणक की बुद्धि का वर्णन—

सूर्य-प्रभा टीका— कुश के अग्रभाग (धार) के समान जिन गणकों की पैनी बुद्धि है उनके लिए इस छेद्यक का अर्थ (समझना) परमाणु रूप है अर्थात् इस छेद्यक का अर्थ अत्यन्त सरल एवं सूक्ष्म है। लेकिन जिन की बुद्धि जड़ है तथा जो मंद बुद्धि है उनके लिए यह इन्द्र के वज्र से आहत करने के समान है अतः वे इसको नहीं समझ सकते।

यहाँ 'इन्द्रवज्राहतपक्षः' शब्द का अर्थ 'पर्वत तुल्य छेद्यक' कठोर तथा जड़ वत है। इन्द्रवज्रा छन्द जो पुराणोक्त है, यह बात सूचित करता है। इस छन्द में कहा गया है कि पर्वतों के दो हाथ तथा दो पंख थे जिनके द्वारा वे पृथ्वी पर इधर उधर उड़ते हुए गिरते रहते थे जिससे पृथ्वी का संतुलन बिगड़ने से पृथ्वी चलायमान रहती थी। लेकिन भगवान ने उनको इन्द्र के वज्र के प्रहार से खण्डित (तोड़) कर दिया जिसके पश्चात वे पृथ्वी पर अचल होकर रहने लगे जिससे पृथ्वी भी अचल हो गई तथा उसका नाम अचला पड़ा।

इति छेद्यकाधिकारः

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के छेद्यकाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ गोलबन्धाधिकारः

इदानीं गोलबन्धाधिकारमाह—

सुसरलवंशशलाकावलयैः श्लक्ष्णैः सचक्रभागाङ्कैः।
रचयेद्गोलं गोले शिल्पे चानल्पनैपुणो गणकः॥१॥

सूर्य-प्रभा टीका— अच्छी सीधी तथा चिकनी बांस अथवा किसी धातु की सलाखाओं की सहायता से शिल्पि के गुण युक्त तथा अच्छे गोल ज्ञान में निपुण गणक के द्वारा गोल की रचना की जावे तथा वह गोल चक्र कला अर्थात् ३६० अंश कला के चिन्हों से युक्त हो।

आचार्य का यहाँ वंश शब्द से तात्पर्य केवल बांस ही से नहीं है वरन यह किसी भी धातु वाचक उपलक्षण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.द ग्रंथ के यन्त्राधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"इष्टं सुवृत्तवलयं लघुशुष्कदारुनिर्मापितं विविधशिल्पवदावदाततक्ष्णा।
गोलं समं सलिलतैलवृषाङ्कबीजैः कालानुसारिण्ममुं भ्रमयेत् स्वबुद्धया॥१॥"

अथ गोलबन्धमाह—

कृत्वादौ ध्रुवयष्टिमिष्टतरुजामृज्वीं सुवृत्तां ततो
यष्टीमध्यगतां विधाय शिथिलां पृथ्वीमपृथ्वीं बहिः।
बध्नीयाच्छशिसौम्यशुक्रतपनारेज्यार्किभानां दृढान्
गोलांस्तत्परितः श्लथौ च नलिकासंस्थौ खदृग्गोलकौ॥२॥

गोल बन्द करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ठोस देवदारु अथवा अन्य मजबूत एवं दीर्घकाल तक स्थाई रहने वाले वृक्ष की लकड़ी से एक ध्रुव यष्टि बनाकर उसको ध्रुवस्थानों की दिशा में नियत करके उसके मध्य में अर्धभाग पर सूक्ष्म आकार की पृथ्वी (रूप) ढीली सी बाँध देवे। उसके ऊपर क्रमशः चंद्र, बुध, शुक्र, गुरु, मंगल तथा शनि को भी इसी प्रकार उनकी कक्षा क्रम से कस कर दृढ़ता से बांध देवे। इनके ऊपर नलिका पर स्थित एक खगोल दृग्गोल स्थिर करे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— वराहमिहिर ने पं.सि. के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"समवृत्तपृष्ठमानं सूक्ष्मं गोलं प्रसाध्य धातुमयम्।२२$\frac{1}{2}$।
अक्षोत्क्षिप्तस्योदक् तिर्यग्वेधप्रकाशहरिजस्थाः।
या नाड्यता याता षडंशकसमन्विता मध्ये॥२५॥"

इदानीं सविशेषमाह—

पूर्वापरं विरचयेत् सममण्डलाख्यं याम्योत्तरं च विदिशोर्वलयद्वयं च।
ऊर्ध्वाध एवमिह वृत्तचतुष्कमेतदावेष्ट्य तिर्यगपरं क्षितिजं तदर्धे॥३॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व तथा पश्चिम बिन्दुओं से होता हुआ पूर्वापर वृत्त बनावे जिसको सममण्डल कहते हैं तथा उत्तर दक्षिण बिन्दु से एक वृत्त बनावे जिसको याम्योत्तर वृत्त कहते हैं इस प्रकार ये दो वलय बनावे। इन दोनों वृत्तों के ऊर्ध्व तथा अधः मिलान बिन्दुओं से होकर जाने वाले तथा इन चारों दिशाओं के कोणों (मध्यभाग) से होकर जाने वलो दो वृत्त बनावे। इस प्रकार ये चार वृत्त बनावे। इन चारों ऊर्ध्वाधर वृत्तों के (मध्य) अर्ध भाग से एक वृत्त इनके क्षितिज के रूप में इनके लम्बवत बनावे। यहाँ याम्योत्तर वृत्त पर उत्तर क्षितिज के ऊपर अक्षांश तुल्य अंतर पर एक ध्रुव चिन्ह बनावे तथा इसी प्रकार दक्षिण क्षितिज के नीचे बनावे।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी. वृ. ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरमूर्ध्वमधः प्रथमं सममण्डलं जगुर्वृत्तम्।
याम्योत्तरं च तद्वत् तथैव वृत्तद्वयं च विदिशोः॥१॥
आवेष्ट्यमानमेतान्यर्धच्छेदेन यद् भवेद् वृत्तम्।
तत् क्षितिजमण्डलं स्यादुदयास्तमयाविह द्युसदाम्॥२॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ऊर्ध्वमधोऽपरपूर्वमिहाद्यं प्राहुरिदं सममण्डलमन्यत्।
तद्वदिहोत्तरदक्षिणदिक्स्थं वृत्तयुगं विदिशोरपि तद्वत्॥१॥
आवेष्टमानमथ तानि दलप्रवृत्या यद्वृत्तमत्र हरिजं क्षितिजं तदाहुः।
यस्मिन् भवेत् समुदयोऽस्तमयोऽखिलानां प्राच्यां क्रमादपर दिश्युडुखेचराणाम्॥२॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्राच्यपरं सममण्डलमन्यद्याम्योत्तरं क्षितिजमन्यत्।
परिकरवत् तन्मध्ये भूगोलस्तत्स्थितद्रष्टुः॥४६॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"श्रीपरार्यादिससारदारुघटितैः श्लक्ष्णैः समैर्मंडलै-
र्गोलज्ञो दृढ़सन्धिबन्धरुचिरं गोलं विनिर्मापयेत्।
तत्र प्रागपरं विधाय वलयं याम्योत्तरं चापरं
तिर्यक् तद द्वितयार्धसक्तमभितः कुर्यातृतीयं पुनः॥"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरच्चेव।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ॥१८॥"

इदानीमुन्मण्डलमाह—

पूर्वापरक्षितिजसङ्गमयोर्विलग्नं याम्ये ध्रुवे पललवैः क्षितिजादधःस्थे।
सौम्ये कुजादुपरि चाक्षलवैर्ध्रुवे तदुन्मण्डलं दिननिशोः क्षयवृद्धिकारि॥४॥

उन्मण्डल वृत्त बनाना बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वापर तथा क्षितिज के दो मिलान बिन्दु तथा दक्षिण ध्रुव से अक्षांश तुल्य क्षितिज से नीचे स्थित बिन्दु तथा उत्तरिध्रुव से अक्षांश तुल्य क्षितिज से ऊपर स्थित बिन्दु से होकर जाने वाला वृत्त उन्मण्डल वृत्त कहलाता है। यह दिन तथा रात्रि के क्षय तथा वृद्धिकारी होता है अर्थात् इसकी स्थिति के अनुसार दिन तथा रात्रि में क्षय तथा वृद्धि होती है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी. वृ. ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वृत्ते प्रागपरे कुजाक्षभवयोः सक्यं द्वयो संज्ञयोः
सौम्यक्ष्माभववृत्तयोगजनितादङ्काद् ध्रुवे चोपरि।
स्वाक्षांशाङ्कगतेऽथ याम्यकुजयोर्योगादधोऽक्षांशकै-
र्वृद्धिर्हानी विधाय वासरनिशोरुन्मण्डलं मण्डलम्॥३॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गोला. के गोलबन्ध ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"पूर्वापरक्षितिज सङ्गम योर्गतश्च याम्यादधः पललवैः क्षितिजाद्विलग्नम्।
सौम्यादथोपरि समध्रुवमार्ग संस्थमुन्मण्डलं दिननिशोः क्षयवृद्धिकृत्तत्॥३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"संसक्तं समवृत्तभूजवलय प्राक्पश्चिमासङ्गयोर्याम्योदक्
क्षितिजाधरोत्तरगतं स्वाक्षांश तुल्यान्तरे।
स्यादुन्मण्डलमेतदप्यवनिजं देशे निरक्षे
स्मृतं जायेते तमस्विनी दिवसयोर्वृद्धिर्क्षयो तद्वशात्॥"

इदानीं विषुवन्मण्डलमाह—

पूर्वापरस्वस्तिकयोर्विलग्नं खस्वस्तिकाद्दक्षिणतोऽक्षभागैः।
अधश्च तैरुत्तरतोऽङ्कितं च षष्ट्यात्र नाडीवलयं विदध्यात्॥५॥

विषुववृत्त की स्थिति बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वापर स्वस्तिक से होकर जाने वाला तथा ख स्वस्तिक से दक्षिण में एवं अधः स्वस्तिक से उत्तर में अक्षांश तुल्य अन्तर पर जो वृत्त होता है वह विषुवद्वृत्त होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"समवृत्तादक्षांशैर्दक्षिणतो भवति नाडिकावृत्तम्।
खस्वस्तिकाद्द्यस्तादुत्तरतोऽक्षांशकैरेव॥५॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"खस्वस्तिकाद दक्षिणतोऽक्षभागैः पाताल संज्ञाच्च तथोत्तरेण।
नाड्यकिङ्कतं वैषुवतं तदुक्तं वृत्तं भगोलस्य खगोलमध्ये॥५॥"

यह श्लोक उपरोक्त दोनों ही आचार्यों ने स्वकृत ग्रंथ के 'भगोलबन्ध' भाग में दिया है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विषुवन्मण्डलमूर्ध्व सममण्डलतः स्थितं स्वकाक्षांशैः।
याम्येनोत्तरतोऽधः क्षितिजे प्राच्यपरयोर्लग्नम्॥५१॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नतमथ समवृत्ताद्दक्षिणेनाक्षभागैर्विषुवदुपपतन्तं मण्डलं नाडिकाख्यम्।
उदगपि पलभागैः स्यादधस्तात्तदेतद् गगन रसमिताभिर्लाञ्छितं नाडिकाभिः॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं दृङ्मण्डलमाह—

ऊर्ध्वाधरस्वस्तिककीलयुग्मे प्रोतं श्लथं दृग्वलयं तदन्तः।
कृत्वा परिभ्राम्य च तत्र तत्र नेयं ग्रहो गच्छति यत्र यत्र॥६॥

दृग्मण्डल की स्थिति बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ख स्वस्तिक तथा अद्यः स्वस्तिक (से होकर जाता हुआ) एवं ग्रह केंद्र से जाता हुआ वृत्त दृग्मण्डल होता है। यह पूर्वोक्त वृत्त से थोड़ा न्यून होता है। यत्र-तत्र जो ग्रह भ्रमण करते हैं उनमें से होकर जाने वाला इस प्रकार का प्रत्येक ग्रह का एक दृग्वृत्त होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गो.बन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दृग्मण्डलार्धमूर्ध्वं यत् तत् परिधिस्थितं दृष्टा।
पश्यति यतः क्षितिस्थस्तद्भमति ततो ग्रहाभिमुखम्॥५५॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"द्रष्टुर्ग्रहाभिमुखमभ्रमवृत्तसक्तं दृग्मण्डलं प्रतिपलं भ्रमति ग्रहाणाम्।"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरदिग्रेखाधश्चोर्ध्वा दक्षिणोत्तरस्था च।
एतासां संपातो दृष्टा यस्मिन भवेद्देशे॥२०॥
उर्ध्वमद्यस्ताद्रष्टुर्ज्ञेयं दृङ्मण्डलं ग्रहाभिमुखं।$\frac{१}{२}$।"

अथ विशेषमाह—

ज्ञेयं तदेवाखिलखेचराणां पृथक् पृथग्वा रचयेत् तथाष्टौ।
दृङ्मण्डलं वित्रिभलग्नकस्य दृक्क्षेपवृत्ताख्यमिदं वदन्ति॥७॥

अब विशेष कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— इस प्रकार सभी ग्रहों के पृथक-पृथक आठों दृग्मण्डलों की रचना करें।

वित्रिभ लग्न के दृग्मण्डल को दृक्क्षेप वृत्त कहते हैं।

विशेष— वटेश्वरावार्च ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ऊर्ध्वाधरं ग्रहसमाभिमुखं च यत्तद् दृङ्मण्डलं त्रिगृहहीनविलग्न लग्नम्।
दृक्क्षेपवृत्तमपि तद्वदमूनि चाष्टौ भांशाङ्कितानि वलयानि खगोलबन्धे॥४॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''प्राग्लग्नमत्र भवनत्रितयेन हीनं दृक्क्षेपमण्डलमुशन्ति कुशाग्रधीराः।''

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''दृक्क्षेपमण्डलमपि प्राग्लग्नं स्यात्त्रिराश्यूनं॥२१॥''

इदानीमेवं खगोलमुक्त्वा दृग्गोलमाह—

बद्ध्वा खगोले नलिकाद्वयं च ध्रुवद्वये तन्नलिकास्थमेव।
बहिः खगोलाद्विदधीत धीमान् दृग्गोलमेवं खलु वक्ष्यमाणम्॥८॥
भगोलवृत्तैः सहितः खगोलो दृग्गोलसंज्ञोऽपममण्डलाद्यैः।
द्विगोलजातं खलु दृश्यतेऽत्र क्षेत्रं हि दृग्गोलमतो वदन्ति॥९॥

खगोल कहने के बाद अब दृग्गोल कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस खगोल में ध्रुव चिन्ह के रूप में दो नलिकाएँ बांधी गई हैं उन नलिकाओं के आधार से खगोल से बाहर तीन अंगुल अंतर पर दृग्गोल की रचना करें। जो खगोलवृत्त में कहा और वक्ष्यमाण भगोलवृत्त में कहा क्रान्तिविमण्डल आदि में जो निबद्ध रहता है वह सब दृग्गोल है। भगोल संबन्धी वृत्तों से युक्त खगोल की दृग्गोल संज्ञा होती है। इस प्रकार मिश्र गोल (खगोल तथा भगोल) को ही पूर्वाचार्य दृग्गोल कहते हैं। तथा गोल क्षेत्र गोल में प्रत्यक्ष है तथा भगोल में भगोल क्षेत्र प्रत्यक्ष है। इनका उभय क्षेत्र जो अदृश्य रहता है उसको दिखाने (दर्शनार्थ) के लिए गोलबन्ध की कल्पना करके इसको दृग्गगोल संज्ञक कहा गया है।

अग्रा, कुज्या, समशंकु आदि क्षेत्र द्विगोल जाति है। भगोलवृत्त और खगोल वृत्त कथित मिलकर जो उत्पन्न होता है वह इनसे भिन्न गोलबन्ध से सम्यग् उपलक्षित नहीं होता अतः दृग्गोल किया गया है।

विशेष— लल्लाचार्य तथा वटेश्वराचार्य ने स्वकृत ग्रंथों में गोलबन्ध अध्याय में परिभाषायें इत्यादि को चार भागों में विभक्त किया है। (१) खगोल बन्ध (२) भगोल बन्ध (३) सामान्य गोल बंध तथा (४) ग्रह गोल बंध।

भास्कराचार्य ने भी इन सबमें कहा हुआ इन प्रथक्-प्रथक् शीर्षकों में ही कहा है। सब कुछ इन्हीं शीर्षकों के कह कर इन ८ तथा ९ वें श्लोकों में आचार्य कहते हैं कि इन सब में जो कुछ पूर्वाचार्यों ने कहा वह दृग्गोल है। यह नाम उन्होंने अपनी ओर से नया दिया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं भगोलबन्धमाह—

याम्योत्तरक्षितिजवत् सुदृढं विदध्यादाधारवृत्तयुगलं ध्रुवयष्टिबद्धम्।
षष्ट्यङ्कमत्र सममण्डलवत् तृतीयं नाड्याह्वयं च विषुवद्वलयं तदेव॥१०॥

अब भगोल बन्ध कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— खगोल की भांति ही क्षितिज और याम्योत्तर के समान उसी आकार के परमाधार दो वृत्त ध्रुवयष्टि पर बनावे और उसके ऊपर तीसरा वृत्त सममण्डल वत बनावे जिस पर (६०) साठ घटी तक के अंक लिखे हुए हों। इसको विषुवद्वृत्त अथवा नाडी वृत्त कहते हैं।

विशेष— आचार्य ने यह नाडी वृत्त भगोलबन्ध में कहा है और लल्लाचार्य ने खगोल में इसको कहा है।

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गोल बन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"षडमूनि नभोगोले भगणांशैरङ्कितानि षष्ट्यङ्कम्।
विषुवदवृत्तं नाड्याह्वयं भगोले स्थितमस्याधः॥४॥"

इदानीं क्रान्तिवृत्तमाह—

क्रान्तिवृत्तं विधेयं गृहाङ्कं भ्रमत्यत्र भानुश्च भार्धे कुभा भानुतः।
क्रान्तिपातः प्रतीपं तया प्रस्फुटाः क्षेपपाताश्च तत्स्थानकान्यङ्कयेत्॥११॥

क्रांतिवृत्त का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इस नाडीवृत्त के प्रमाण का ही एक अन्य वृत्त बनावे जो मेष राशि के आरंभ बिन्दु से आरम्भ होता हो तथा उस पर बारह राशियाँ अंकित हों। इस वृत्त पर सूर्य भ्रमण करता है। रवि से भार्ध (छै राशि) अन्तर पर भूछाया भी इस पर भ्रमण करती है। भूभा तथा क्रांतिवृत्त का मेषादि पर संपात बिन्दु, विलोम दिशा में भ्रमण करते है, इसी प्रकार ग्रहों के स्फुट पात तथा विक्षेप इस पर विलोम भ्रमण करते हैं। अतः क्रांति व संपात आदि के स्थान इस पर अंकित होते हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भ्रमति रविरत्र वलये ग्रहाश्च चन्द्रादयः स्वपातयुताः।
भूभा भार्धे भानोः स्वशीघ्रवृत्ते ज्ञसितपातौ॥८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"भ्रमत्यजस्रं रविस्र वृत्ते भूभा भखण्डे दिननाथ राशेः।
पाता ग्रहाणां च विलोमगत्या विमण्डले स्वे मृगलाञ्छनाद्याः॥८॥"

सूर्यसिद्धान्त ज्यौतिषोपनिषदध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–
"तदाधारयुतेरुर्ध्वमयनेविषुवद्द्वयम्। विषुवत्स्थानतो भागैः स्फुटैर्भगणसञ्चरात्॥१०॥ क्षेत्राण्येवमजादीनां तिर्यग्ज्याभिः प्रकल्पयेत्। अयनादयनं चैव कक्षा तिर्यक् तथाऽपरा॥११॥

क्रांति संज्ञा तया सूर्यः सदा पर्येति भासयत्।$\frac{१}{२}$।"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मेषादेः कन्यान्तं सममुदगपमण्डलार्धमपयातं।
तौल्यादिर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैवः॥१॥
तारााग्रहेन्दुपाता भ्रमन्त्यजस्रमपण्डलेऽर्कश्च।
अर्काच्च मण्डलार्धे भ्रमति हि तस्मिन् क्षितिच्छाया॥२॥"

वराहमिहिर ने पं.सि. के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"समवृत्तपृष्ठमानं सूक्ष्मं गोलं प्रसाध्य धातुमयम्।
स्थगितार्कसमङ्कितकालभोगरेखाद्वये परिधौ॥२३॥
याम्योदग्रेखायां झषानसंध्युभयतो न्यसेद्वेधात्।
अपमांशकाङ्कतुल्यांस्तिर्यग्वेधप्रकाशकरान्॥२४॥"

इदानीं क्रान्तिवृत्तस्य निवेशनमाह—

क्रान्तिपाते च पाताद्भषट्कान्तरे नाडिकावृत्तलग्नं विदध्यादिदम्।
पाततः प्राक् त्रिभे सिद्धभागैरुदग्दक्षिणे तैश्च भागैर्विभागेऽपरे॥१२॥

क्रांतिवृत्त का निवेष—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिवृत्त के संपात बिंदु मेषारंभ से छःराशि अंतर पर क्रांति वृत्त में चिन्ह लगावे उस स्थान पर क्रांति वृत्त से नाडी वृत्त मिलता है। इस संपात स्थान से आगे तीन राशि अंतर पर दक्षिण की ओर २४ अंश की दूरी (नाडी वृत्त से) पर इस वृत्त का एक भाग रहता है तथा इतने ही अंशदूरी पर उत्तर की ओर इस का दूसरा भाग होता है। इस प्रकार इस क्रांतिवृत्त को गोल रचना करने में बाँधे।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गो.बन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"मेषतुलादौ लग्नं नाडीवृत्तेऽपमण्डलं तदुदक्।
जिन भागैः कर्क्यादौ याम्यैस्तैरेव मकरादौ॥७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नाड्याह्ववृत्तेऽजतुलादिलग्नं जिनांशकैर्दक्षिणतो मृगादौ।
सौम्ये तथा शीतगुमन्दिरादावपक्रमाख्यं तदुशन्ति वृत्तम्॥७॥"

मुञ्जालाचार्य ने स्वकृत किसी ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उत्तरतो याम्यदिशं याम्यान्तात् तदनु सौम्यदिग्भागम्।
परिसरतां गगनसदां चलनं किञ्चिद्भवेदपमे॥
विषुवदपक्रममण्डलसंपाते प्राचि मेषादिः।
पश्चात् तुलादिरनयोरपक्रमासम्भवः प्रोक्तः॥
राशित्रयोन्तरेऽस्मात् कर्कादिरनुक्रमान्मृगादिश्च।
तत्र च परमा क्रान्तिर्जिनभागमिताथ तत्रैव॥"

इदानीं विमण्डलमाह—

नाडिकामण्डले क्रान्तिवृत्तं यथा क्रान्तिवृत्ते तथा क्षेपवृत्तं न्यसेत्।
क्षेपवृत्तं तु राश्यङ्कितं तत्र च क्षेपपातेषु चिह्नानि कृत्वोक्तवत्॥१३॥
क्रान्तिवृत्तस्य विक्षेपवृत्तस्य च क्षेपपाते सषड्भे च कृत्वा युतिम्।
क्षेपपाताग्रतः पृष्ठतश्च त्रिभे क्षेपभागैः स्फुटैः सौम्ययाम्ये न्यसेत्॥१४॥
शीघ्रकर्णेन भक्तास्त्रिभज्यागुणाः स्युः परक्षेपभागा ग्रहाणां स्फुटाः।
क्षेपवृत्तानि षण्णां विदध्यात् पृथक् स्वस्ववृत्ते भ्रमन्तीन्दुपूर्वा ग्रहाः॥१५॥

अब विमण्डल बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— नाडीमण्डल से जिस प्रकार क्रांतिवृत्त न्यास किया है, क्रांतिवृत्त से भी उसी तरह क्षेपवृत्त का न्यास करे। क्षेपवृत्त में भी राश्यादि अंकित करे तथा उसका मेषारंभ बिन्दु पर संपात करे तथा उस स्थान पर चिन्ह लगावे। फिर क्रांतिवृत्त तथा विमण्डल का इस प्रकार क्षेपसंपात चिन्ह लगा कर स्थातिप करके उससे छः राशि अन्तर पर उसका फिर दूसरे स्थान पर संपात करे। क्षेपसंपात के आगे तीन राशि अन्तर पर क्रांतिवृत्त के उत्तर की ओर स्फुट क्षेप तुल्य अंशों पर तथा पीछे दक्षिण की ओर स्थित करके विमण्डल का निवेश।

पठित (परम) विक्षेप अंशों को त्रिज्या से गुणा करके शीघ्रकर्ण से विभक्त करने से ग्रहों के स्फुट विशेष अंश प्राप्त होते हैं। इस प्रकार चंद्रादि के छः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विमण्डल बनावे जिनमें अपने-अपने विमण्डल में ग्रह भ्रमण करते हैं। यह गणना भास्कराचार्य ने ही करना बताया। पूर्वाचार्यों ने पठित शर को ही विमण्डल रचना में ग्रहण किया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गो. बं.धिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विक्षेपमण्डलदलं पूर्वं क्षेपांशकैरुदक् पातात्।
षड्भयुताद् दक्षिणतो दिङ्मण्डलार्धं द्वितीयं स्यात्॥९॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विमण्डलार्धं निजपातसङ्गादुदक् स्वविक्षेपलवैर्द्वितीयम्।
सभार्धपाताच्च विमण्डलार्धं विक्षेपभागैर्दिशि दक्षिणस्याम्॥९॥"

सूर्य सिद्धान्त के ज्योतिषोपनिषदध्याय में आचार्योक्त बात सूक्ष्म में कही है। यथा—

"चन्द्राधाश्च स्वकैः पातैरपमण्डलमाश्रितैः॥१२॥
ततोऽपकृष्टा दृश्यन्ते विक्षेपान्तेष्वपक्रमात्। $\frac{१}{२}$।"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु. सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"सौम्यं विमण्डलार्धं प्रथमं याम्यं द्वितीयमेतेषु।
चन्द्रकुजजीवमन्दा भ्रमन्ति शीघ्रेण बुध शुक्रौ॥५४॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विमण्डलार्धं प्रथमं निजेषुभागैरुदक् चोत्तरपातचिन्हात्।
सषड्गृहाद दक्षिणतो द्वितीयमर्धं तथापक्रमवृत्तवच्च॥
एतेषु च स्वस्व विमण्डलेषु चन्द्रार जीवार्कसुता भ्रमन्ति।
निजोच्चवृत्तेन चलाभिधेन किलोशनश्चान्द्रमसायिनी च॥"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अपमण्डलस्य चन्द्रः पाताद्यात्युत्तरेण दक्षिणतः।
गुरुकुजकोणाश्चैवं शीघ्रोच्चेनापि बुध शुक्रौ॥३॥"

इदानीं क्रान्ति विक्षेपं चाह—

नाडिकामण्डलात् तिर्यगत्रापमः क्रान्तिवृत्तावधिः क्रान्तिवृत्ताच्छरः।
क्षेपवृत्तावधिस्तिर्यगेवं स्फुटो नाडिकावृत्तखेटान्तरालेऽपमः॥१६॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रान्ति तथा विक्षेप ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— नाडीवृत्त से (ध्रुवामि मुख) लंबवत (क्रां.वृ.स्थ ग्रह) दूरी क्रांति (ग्रह की) होती है तथा क्रान्तिवृत्त से (वि.मं.स्थ ग्रह की) लम्बवत् दूरी शर (ग्रह का) होता है। विमण्डलस्थ ग्रह की क्रांतिवृत्त से लम्बवत दूरी (अंतर) विक्षेप होता है तथा विमण्डलस्थ ग्रह की नाडीवृत्त से लम्बवत दूरी (अंतर) स्फुट क्रांति होती है।

इदानीं क्रान्तिपातमाह—

विषुवत्क्रान्तिवलययोः संपातः क्रान्तिपातः स्यात्।
तद्भगणाः सौरोक्ता व्यस्ता अयुतत्रयं कल्पे॥१७॥
अयनचलनं यदुक्तं मुञ्जालाद्यैः स एवायम्।
तत्पक्षे तद्भगणाः कल्पे गोऽङ्गर्तुनन्दगोचन्द्राः १९९६६९॥१८॥
तत्संजातं पातं क्षिप्त्वा खेटेऽपमः साध्यः।
क्रान्तिवशाच्चरमुदयाश्चरदललग्नागमे ततः क्षेप्यः॥१९॥

सूर्य-प्रभा टीका— विषुवद्वृत्त तथा क्रांतिवृत्त का संपात बिन्दु क्रांतिपात होता है। इसका भगण सौरसिद्धान्त में कहे अनुसार विपरीत दिशा में होता है। मुञ्जालाचार्य ने अयनचलन में जैसा कहा है उसके अनुसार अयन चलन के एक कल्प में १९९६६९ भगण होते हैं। इनसे प्राप्त अयन चलन युक्त करके ग्रहों की क्रांति साधित करनी चाहिये। क्रांति के कारण चर, उदयास्त, चरार्ध, लग्न प्राप्त हो उनमें इस अयन चलन को युत (क्षेप) करे।

विशेष— आचार्य ने स्वकृत टीका में अयन चलन के संबंध में कुछ विशेष बातें कही हैं। क्रांतिसंपात चलन नहीं होता, यह प्रत्यक्ष उपलब्ध है अतः ऐसा नहीं कह सकते। आचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्तादि निपुण गणकों ने भी इसके लिए क्यों नहीं कहा जबकि उनके समय में इसकी स्वल्प उपलब्धि हो चुकी थी? इसके लिए वे स्वयं कारण कहते हुए कहते हैं कि उस समय पर अयन चलन स्वल्प मात्रा में उपलब्ध होने के कारण स्पष्टता से ज्ञात नहीं हो सका इस लिए (शायद) उन्होंने नहीं कहा। लेकिन अब यह बहुत अधिक हो जाने के कारण उपलब्ध होता है, अतः उसकी गति का ज्ञान करना चाहिये। गणित स्कन्ध में उपपत्ति से प्राप्त मान तथा आगम प्रमाण होता है तो मन्दोच्चपात के भगण आगम प्रमाण से इनको कैसे कहा है यह नहीं बताया गया है। ग्रहों के मन्दफलाभाव स्थान प्रत्यक्ष उपलब्ध होते हैं। भगण से उपलब्ध स्थान गणित

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के द्वारा प्राप्त होते हैं उससे भगण के द्वारा वार्षिक तथा दैनिक गति ज्ञात होती है। यदि भगण से प्राप्त स्थान की अपेक्षा अन्य स्थान प्राप्त होता है तो इनमें से गति का प्रमाण कौन-सा होगा। तो आचार्य के समय में प्राप्त तात्कालिक अयन की उपलब्धि में कौन सी गति स्वीकार की जावे। यदि पुनः लम्बे समय पश्चात इसमें बड़ा अन्तर होगा तब ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों के समान महान बुद्धि वाले आचार्य इसको ज्ञात करेंगे। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार एक महायुग में नक्षत्र चक्र ६०० बार पूर्व दिशा में परिलम्बित होता है तथा मुञ्जालाचार्य के अनुसार एक कल्प में१९९६६९ भगण होते हैं। आचार्य कहते हैं कि यदि अयन चलन अंश इनके द्वारा उपलब्ध होते हैं तो वहाँ क्रान्तिपात होगा। क्रान्तिपात की गति विलोम होने के कारण उसके तुल्य अंश ग्रह में युक्त करके क्रान्ति साधित करे। इस सब आचार्योक्त कथन कहकर भी आचार्य ने स्वयं अयन चलन के विषय में अपनी कोई निश्चित गणना अथवा सूत्र नहीं कहा, और न ही किसी अन्य आचार्य के कथन को सही अथवा गलत कहा। वे स्वयं भी इस के लिए कोई निर्णय नहीं कर सके। मुञ्जालाचार्य ने स्वकृत किसी ग्रंथ में इस प्रकार कहा है। यथा–

"उत्तरतो याम्यदिशं याम्यान्तात् तदनु सौम्यदिग्भागम्।
परिसरतां गगनसदां चलनं किंचिद्भवेदपमे॥
विषुवदपक्रममण्डलसंपाते प्राचि मेषादिः।
पश्चात् तुलादिरनयोरपक्रमासम्भवः प्रोक्तः॥
राशित्रयोन्तरेऽस्मात् कर्कादिरनुक्रमान्मृगादिश्च।
तत्र च परमा क्रान्तिर्जिनभागमिताथ तत्रैव॥
निर्दिष्टोऽयन सन्धिश्चलनं तत्रेव सम्भवति।
तद्भगणाः कल्पे स्युर्गोरसरसगोऽङ्कचन्द्रमिताः॥"

ये श्लोक म.म. सुधाकर द्विवेदी तथा बापूदेव शास्त्री ने उद्धृत किये हैं। लेकिन ये अभी तक मुञ्जालाचार्य कृत किसी उपलब्ध ग्रंथ में नहीं देखे गये हैं, ऐसा विद्वानों का मत है।

ब्रह्मसिद्धान्त में अयन चलन के लिए इस प्रकार कहा है। यथा–

"कर्कादिस्थाः मृगादिस्थाः सृष्टेरुदगवाङ्मुखम्।
प्रत्यब्दे यान्ति याम्योदग्गमने विहितेऽपि यत्॥
तत्पश्चाच्चलितं चक्रमुपचारोऽयमित्यपि।"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं विक्षेपपातानाह—

एवं क्रान्तिविमण्डलसंपाताः क्षेपपाताः स्युः।
चन्द्रादीनां व्यस्ताः क्षेपानयने तु ते योज्याः॥२०॥
मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले हि ग्रहो भ्रमत्यत्र च तस्य पातः।
पातेन युक्ताद्गणितागतेन मन्दस्फुटात् खेचरतः शरोऽस्मात्॥२१॥
पातेऽथवा शीघ्रफलं विलोमं कृत्वा स्फुटात् तेन युताच्छरोऽतः।
चन्द्रस्य कक्षावलये हि पातः स्फुटाद्विधोर्मध्यमपातयुक्तात्॥२२॥

विक्षेप पात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— इस प्रकार क्रांतिवृत्त तथा ग्रह विमण्डल के संपात को क्षेपपात कहते हैं। मन्दस्फुट ग्रह शीघ्रप्रतिमण्डल में भ्रमण करता है तथा वहीं उसका पात स्थित होता है। विक्षेप पातयुक्त मन्दस्पष्ट ग्रह का शर साधन करे। पात में शीघ्रफल का विलोम संस्कार करने से स्पष्ट पात प्राप्त होता है। स्पष्ट पात के द्वारा स्पष्ट शर ज्ञात होता है। चंद्रमा में शीघ्र प्रतिमण्डल का अभाव होने से चन्द्र की कक्षा वलय ही पात होने से मन्दस्पष्ट चन्द्रमा ही स्पष्ट चन्द्रमा होता है। अतः पात सहित मध्यम चन्द्रमा के द्वारा चन्द्र का शर साधन करना चाहिये।

विशेष— पात का अर्थ पतन से है तथा पतन का अर्थ मिलने से है। जिस प्रकार क्रांतिमण्डल तथा नाडीमण्डल के मिलान बिन्दु को क्रांतिपात (मेषारंभ) कहा है उसी पर क्रांतिवृत्त तथा शरमण्डल (ग्रह मंडल) का संपात शर पात कहलाता है। स्पष्ट ग्रह में क्रांतिपात युक्त करके (सायन ग्रह) जिस प्रकार क्रांतिसाधन करते हैं उसी प्रकार स्पष्ट ग्रह में शरपात युक्त करके शर साधन क्यों नहीं कर सकते? इसका उत्तर कहते हैं– कि मन्द स्फुट ग्रह शीघ्र प्रतिवृत्त में रहता है। शर, पात के शीघ्रप्रतिमण्डल में भ्रमण से उत्पन्न होता है। क्रमण के अर्थ से क्रांति शब्द होता है। यह क्रमण किस प्रकार होता है? नाडीमण्डल से लंबवत् दूरी क्रांति होती है। यह पूर्व में कहा गया है। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त को क्रमण करे वह चंद्रादि की (क्रांति) मध्यम शर होती है।

अतः क्रांतिमण्डल से क्षेपवृत्त (ग्रह मण्डल) की दूरी शर होती है। नाडीमण्डल से क्षेपवृत्त की दूसरी चन्द्रादि ग्रह नक्षत्रों की स्पष्ट क्रांति होती है। क्रांतिपात स्थान पर स्थित स्पष्ट ग्रह की स्पट क्रांति नहीं होती और शरपात स्थान पर स्थित मंद स्पष्ट ग्रह का शर नहीं होता। क्रांतिपात अंकित स्थान

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(मे.तु.) से तीन राशि अन्तर पर पीछे की ओर परम मध्यम क्रांति २४ अंश होती है। शरपात अंकित स्थान से आगे तथा पीछे तीन राशि अन्तर पर शीघ्रकर्ण से पठित ग्रह के परम शर अंशों को विभक्त करके त्रिज्या से गुणा करने से प्राप्तफल तुल्य दूरी पर उस ग्रह का शर होता है। यह बात सरल है।

उच्च ग्रह मेषारंभ से अनुलोम चलता है अतः ग्रह तथा उच्च के अंतर का फल साधित करे। एक दिशा में होने से उनके गति अन्तर तुल्य उनके बीच में अन्तर होता है, यह स्पष्ट है। मेषादि से अनुलोम गतिक ज्ञात ग्रह की राश्यादि और प्रतिलोम गतिक ज्ञात पात की राश्यादि का अन्तर पात तथा ग्रह के योग करने से प्राप्त होगा। जैसे नन्दकान से पश्चिम दिशा में आठ योजन दूरी पर प्रयाग स्थित है तथा वाराणसी से पंद्रह योजन पूर्व की ओर कुसुम पुर स्थित है तो इन के मध्य में अन्तर २३ (तेईस) योजन होता है। वक्रि शनी से (विलोम गति) उसके गतपात को चक्र (३६०°) में घटाने से प्राप्त शेष राश्यादि अवयव तुल्य दूरी पर मेषारंभ से अनुलोम होते हुए पात चिन्ह ज्ञात होता है। इस पात तथा ग्रह के एक दिशा में (गति) स्थित होने से इनका अन्तर करे। वक्रि ग्रह के आज के ग्रह चिन्ह के स्पष्टग्रह राश्यादि अवयव दूसरे दिन के ग्रह चिन्ह से अनुलोम होते हैं। अतः धन अयनांश युत स्पष्ट ग्रह से वक्रिग्रह की विपरीत जाकर ग्रह की क्रांति साधन करे।

क्रांतिपात स्थानों पर स्पष्ट ग्रह की स्पष्ट क्रांति नहीं होती क्योंकि वहाँ क्रां.वृत्त तथा नाडीवृत्त का सम्पात होता है। स्पष्ट क्रांति अभाव दूसरे प्रकार से भी हो सकता है। जब मध्यम क्रांति शर रूप में हो। क्रांतिपात युत स्पष्ट ग्रह से स्पष्ट क्रांति साधन करके शरपात युत मन्दस्पष्ट ग्रह से शर साधन करके क्रांतिपात तथा शरपात गति विपरीत होने से अर्थात असमानता होने से मन्दस्पट और स्पष्ट का अन्तर न हो सकने से सभी का एक साथ न होना संभव नहीं होता। मध्यम क्रांति न होने से स्पष्ट ग्रह नाडिवृत्त पर होता है। प्रतिदिन स्पष्ट क्रांति न होने से मध्यम क्रांति की उत्पत्ति को बाधित करता है। मध्यम क्रांति और शर के तुल्य होने से विपरीत दिशा में होने से उनको घटाना संभव नहीं होता। इस प्रकार मध्यम क्रांति नहीं होने पर वहाँ शर भी नहीं होता।

ग्रह अपने विमण्डल में भ्रमण करता है। ग्रह के विमण्डल के अवयव नाडी मण्डल से यदि सम्पात करते हैं तो तब स्पष्ट क्रांति का अभाव होता है। क्रांतिवचृत्तस्थ स्पष्ट चिन्ह यदि नाडी मण्डल में हो तो वहाँ मध्यम क्रांति का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभाव होता है। ग्रह शराग्र पर स्थित हो तो स्पष्ट क्रांति का अभाव नहीं होता।

यन्त्रादि से यदि शर उपलब्ध न हो तो उसका ग्रहाभाव ग्रहण करे। शराभाव होने से गणितागत पात चिन्ह पर अवश्य ग्रह होता है। मेषादि से गणितागत भ आरंभ से पात विलोम दिशा में चिन्ह करे। उस चिन्ह से छः राशि अन्तरित स्थान पर मेषारंभ से भचक्र की दिशा में अनुलोम गति करता हुआ ग्रह अवश्य होता है। वहाँ यदि भोमादि का शराभाव दृष्ट हो तो मन्दस्पष्ट पात चिन्ह पर दृष्ट होता है। अतः शीघ्रपतिमण्डल में भ्रमण करता हुआ मन्दस्फुट ग्रह होता है। इत्यादि। यह उचित कहा है।

इससे गणितागत पात मन्दस्फुट में युक्त करना सिद्ध होता है। विलोम शीघ्रफल संस्कृत पात युत स्पष्ट ग्रह से पातसाधन कर के फल से विशेष युक्ति कही है– 'पातेऽथवेति'।

भौमादि के पात मन्दस्पष्ट स्थान से शीघप्रतिमण्डल में स्थित होते हैं तो चन्द्र का पात कहाँ होता है? क्योंकि चन्द्र का शीघ्रप्रति मण्डल नहीं होता। चन्द्र का पात उसकी कक्षा वलय में ही स्थित होता है। अतः ''स्फुटाद्विधोर्मध्यमपात युक्तादि'' कहा है।

ब्र.गुप्त ने ब्र.स्फु. सि. के ग्रहयुत्यधि. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''मन्दफल स्फुटशशिनो विक्षेपो भौमजीवरविजानाम्।
मन्दफलाव्यस्फुट शीघ्राद् बुधशुक्रयोरथवा॥९॥''

सि.शे.में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

मृदुफल स्फुट गुर्विनजासृजांशशधरस्य च बोधन शुक्रयोः।
अपरथा कृत मन्दे फलाच्चलात् कथितवत् क्रियते शरसाधनम्॥''

इदानीं ज्ञशुक्रयोर्विशेषमाह—

ये चात्र पातभगणाः पठिता ज्ञभृग्वोस्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरधिका यतः स्युः।
स्वल्पाः सुखार्थमुदिताश्चलकेन्द्रयुक्तौ पातौ तयोः पठितचक्रभवौ विधेयौ॥२३॥
चलाद्विशोध्यः किल केन्द्रसिद्ध्यै केन्द्रे सपाते द्युचरस्तु योज्यः।
अतश्चलात् पातयुताज्ज्ञभृग्वोः सुधीभिराद्यैः शरसिद्धिरुक्ता॥२४॥
स्फुटोनशीघ्रोच्चयुतौ स्फुटौ तयोः पातौ भगोले स्फुट एव पातः।

बुध शुक्र के लिए विशेष कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— बुध शुक्र के शीघ्रोच्चों में पात जोड़कर उनके केन्द्र

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञात करके उससे उनके विक्षेप ज्ञात करने से वे शीघ्रोच्च स्थान के शर होते हैं। वे ग्रह स्थान के शर नहीं होते क्योंकि ग्रह तो शीघ्रोच्च से अन्यत्र स्थित होते हैं। बुध शुक्र के जो पात भगण कहे गये हैं उनमें उनके शीघ्रकेन्द्र के भगण भी सम्मिलित होते हैं क्योंकि पात के भगण अल्प होते हैं। शीघ्रोच्च में से ग्रह को घटाने से केन्द्र (शीघ्र) होता है। अतः पात को मंदस्पष्ट में जोड़ने से शरसाधनार्थ केंद्र होता है क्योंकि तुल्य पदार्थ जोड़ने तथा घटाने से शीघ्रो. पात योग शेष रहता है।

किंतु शीघ्रच्च में से मन्दस्फुट ग्रह घटाने से प्रतिमंडल में शीघ्र केन्द्र होता है। इसको पात में जोड़ देते हैं। इस प्रकार करने से विक्षेप केन्द्र मन्दफल के अन्तर्वर्ति हो जाता है। ग्रहच्छायाधिकार में बुध शुक्र पात स्फुट करने में उनके शीघ्रकेंद्र युक्त किये गये हैं। अतः शीघ्रोच्च में से मन्दस्फुट घटाने से शीघ्रकेन्द्र में पातयुक्त होता है। अतः वहाँ मन्दफल अन्तर स्वीकारते हैं। मंदफल में पात घटावे। भगोल में कक्षा वृत्त ही क्रांतिवृत्त होता है। जहाँ विमण्डल है वहीं पर स्फुट ग्रह होता है। अतः उस स्फुट ग्रह में पात युक्त करने से विक्षेप केन्द्र होता है। अतः स्फुट पात स्थान पर इनके संपात करके वहाँ से तीन राशि अन्तर पर, परमविक्षेप अंश से स्फुटित शर पूर्ववत उत्तर तथा दक्षिण की ओर विन्यास करे।

इस प्रकार विमण्डल में स्फुट ग्रह का स्थान न्यास करने से ग्रह स्थान पर विक्षेप, स्फुट विक्षेप तथा गणितागत विक्षेप तुल्य दृश्य होते हैं।

ब्र.स्फु.सि. के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"बुधसितपातेऽव्यस्तं मन्दफलमुपान्त्यशीघ्रफलम्।
शेषाणां स्फुटपाताद्विक्षेपो मध्यमायोगात्॥८॥"

इदानीं ग्रहगोले विशेषमाह—

ग्रहस्य गोले कथितापमण्डलं प्रकल्प्य कक्षावलयं यथोदितम्॥२५॥
निबध्य शीघ्रप्रतिवृत्तमस्मिन् विमण्डलं तत् पठितैः शरांशैः।
मध्योऽत्र पातो द्युसदां ज्ञभृग्वोः स्वशीघ्रकेन्द्रेण युतस्तु देयः॥२६॥

ग्रह गोल में विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— भगोल को ग्रहगोल कल्पित करे। वहीं पर पात स्फुट होता है। ग्रह कक्षावृत्त को क्रांतिवृत्त समझ कर पूर्वोक्तनुसार शीघ्रप्रतिवृत्त में पठित शर के अंशों के अनुरूप विमण्डल निबद्ध करना चाहिये। बुध शुक्र

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

के गणितागत पात में उनके मध्यम शीघ्र केन्द्र को युत करके मध्यमपात सिद्ध करके उसको मन्दस्पष्ट ग्रह में युत करे।

विशेष— कक्षावृत्त को क्रांतिवृत्त समझ कर वहाँ छेद्यकोक्त विधि से शीघ्रप्रतिवृत्त बद्ध करके प्रतिमण्डल में गणितागत पात मेषादि से विलोम गणना करके चिन्ह लगावे तथा त्रिज्या व्यासार्ध का एक अन्यवृत्त राश्यादि अंकित करके विमण्डलनामक वृत्त बनावे तथा वहाँ भी मेषादि से विलोम गणना कर पाताग्र पर चिन्ह लगावे। प्रतिमण्डल तथा विमण्डल के एक संपात चिन्ह से छः राशि अन्तर पर दूसरा संपात चिन्ह करे। पात से आगे-पीछे तीन राशि अन्तर पर पठित परम विक्षेप अंश तुल्य प्रतिवृत्त के उत्तर तथा दक्षिण में विमण्डल का विन्यास करे। वहाँ मन्दस्फुट गति से ग्रह स्वतन्त्र रूप से भ्रमण करता है। फिर मेषादि से अनुलोम मन्दस्फुट ग्रह विमण्डल में बनावे। उस स्थान से प्रतिमण्डल जितने अन्तर पर रहता है उतना उस स्थान पर विक्षेप नहीं होता क्योंकि वृत्त संपात स्थान पर ग्रह का विक्षेप नहीं होता, और तीन राशि अन्तर पर परम विक्षेप होता है। इनके मध्य में अनुपात से होता है। अब वृत्त संपात तथा ग्रह का अन्तर ज्ञात करे। यह अन्तर पात और ग्रह के योग के तुल्य होता है क्योंकि पात की विलोम गति होती है। यह योग शर ज्ञात करने के लिए केन्द्र होता है। अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य केन्द्रज्या में परमशर होता है तो अभीष्ट केन्द्र में क्या होगा? प्राप्तफल प्रतिमण्डल तथा विमण्डल का लम्बवत अन्तर होता है। विमण्डलस्थ ग्रह से भूमध्य गत सूत्र भूग्रहान्तर तुल्य है यह शीघ्र कर्ण है। अनुपात किया कि यदि भूमध्य से शीघ्र कर्णाग्र पर इतना विक्षेप होता है तो त्रिज्याग्र पर कितना होगा? अर्थात

$$\text{विक्षेप} = \frac{\text{विक्षेप परम} \times \text{त्रिज्या}}{\text{ग्र. शीघ्रकर्ण}}$$

पूर्व अनुपात से,

$$\text{इष्टशर} = \frac{\text{परमशर} \times \text{इष्टकेंद्रज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \text{प्र.मं. तथा वि.मं. का लंबवत अंतर।}$$

इन दोनों से कक्षावृत्त तथा प्रतिमण्डल सूत्र का लम्बवत् अंतर

$$= \frac{\text{केन्द्रज्या} \times \text{परमशर}}{\text{ग्र. शीघ्रकर्ण}}$$ यह स्फुट शर है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीमहोरात्रवृत्तमाह—

ईप्सितक्रान्तितुल्येऽन्तरे सर्वतो नाडिकाख्यादहोरात्रवृत्ताह्वयम्।
तत्र बद्ध्वा घटीनां च षष्ट्याङ्कयेदस्य विष्कम्भखण्डं द्युजीवा मता॥२७॥

अब अहोरात्र वृत्त कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— नाडीवृत्त के उत्तर व दक्षिण की ओर इष्ट क्रांति तुल्य अंतर पर जो वृत्त निबद्ध होते हैं वे अहोरात्र वृत्त होते हैं। ये वृत्त नाडीवृत्त के समानान्तर हाते हैं, यह स्पष्ट है। इन वृत्तों में उन-उन दिन में रवि भ्रमण करता है। इन वृत्तों के व्यासार्ध को द्युज्या कहते हैं। इनमें घटियों के साठ भाग अंकित होते हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के गो.बंध १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"इष्टक्रान्तेरग्रे तद्द्युज्यामण्डलं च बध्नीयात्।
मध्येऽस्य ग्रहगोला भवन्ति वृतैर्भगोलस्य॥११॥"

वटेश्वराचार्य ने वटै.सि. के गो. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नाडीवृत्तात् क्रान्तिभागैरजादौ भान्तद्युज्यामण्डलानां त्रयं स्यात्।
कर्क्यादौ वा व्यस्तमेवं तुलादौ षण्णामिष्टैः क्रान्तिभागैर्यथेष्टम्॥१०॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मेषाद् वृत्त त्रितयमपमांशैर्गृहाणां त्रयाणां
नाडीवृत्तादिदमुदगपि व्यत्ययात् कर्कटाच्च।
षण्णां जूकात् कथितमनुदक् चैवमिष्टा-
पमांशैः स्वाहोरात्राह्वयमभिहितं मण्डलं गोलविद्भिः।"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म.स्फुट.सि. के गो.बं. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिषुवदुवग्बध्नीयात् क्रान्त्यंश समान्तरेष्वजादीनाम्।
वृत्तत्रितयं व्यस्तं कर्क्यादीनां तुलादिनाम्॥५७॥
विषुवद्दक्षिणतोऽन्यन्मकरादीनां तदेव विपरीतम्।
स्वाहोरात्राण्येषां व्यासाः पृथगेवमिष्टमपि॥५८॥"

इदानीमन्यदाह—

अथ कल्प्या मेषाद्या अनुलोमं क्रान्तिपाताङ्कात्।
एषां मेषादीनां द्युरात्रवृत्तानि बध्नीयात्॥२८॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नाडीवृत्तोभयतस्त्रीणि त्रीणि क्रमोत्क्रमात् तानि।

अब अन्य बात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिपात अंकित स्थान से मेषारंभ कल्पित करके क्रांतिवृत्त पर मेषादि से तीस-तीस अंश की दूरी पर पूर्वोक्त प्रकार से अहोरात्रवृत्तों को बांधे। इनके नाडीवृत्त में तुल्य स्थान तीन-तीन होते हैं। इस प्रकार क्रमउत्क्रम से सायन सूर्य की बारह राशि होती है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। पूर्व श्लोक की व्याख्या में उद्धृत श्लोक देखें।

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिषुवदुदग् बध्नीयात् क्रान्त्यंश समान्तरेष्वजादीनाम्।
वृत्तत्रितयं व्यस्तं कर्क्यादीनां तुलादिनाम्॥५७॥
विषुवद्दक्षिणतोऽन्यन्मकरादीनां तदेव विपरीतम्।
स्वाहोरात्राण्येषां व्यासाः पृथगेवमेष्टमपि॥५८॥"

लल्लाचर्य ने शि.धी. वृ. ग्रंथ को गो.बंधाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वृत्तत्रयमपमांशैर्नाडीवृत्ताद् भवत्यजादीनाम्।
व्यस्तं कर्क्यादीनामेवं षण्णां तुलादीनाम्॥१०॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मेषाद् वृत्तत्रितयमपमांशैर्गृहाणां त्रयाणां
नाडीवृत्तादिदमुदगपि व्यत्ययात् कर्कटाच्च।
षण्णां जूकात् कथितमनुदक् चैवमिष्टाममांशैः
स्वहोरात्राह्वयमभिहितं मण्डलं गोलविद्भिः॥"

इदानीमस्योपसंहारमाह—

एष भगोलः कथितः खेचरगोलोऽयमेव विज्ञेयः॥२९॥
अत्रापमण्डले वा सूत्राधारैरधश्च तस्यैव।
शन्यादीनां कक्षा बध्नीयादूर्णनाभजालाभाः॥३०॥
बद्ध्वा भगोलमेवं यष्ट्या यष्टिं खगोलनलिकान्तः।
प्रक्षिप्य भ्रमयेत् तं यष्ट्याधारं स्थिरौ खदृग्गोलौ॥३१॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अब इस अध्याय का उपसंहार करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार से ये सब भगोल में कहा है उसी प्रकार ग्रह गोल में भी सभी वृत्तादि को बांधे। स्थापित करे। यहाँ भगोल में जहाँ क्रांतिवृत्त है उससे नीचे क्रमशः एक के नीचे एक शनि, गुरु आदि ग्रहों की कक्षा, सूत्र के आधार से मकडी के जाले के सदृश बांधे।

उक्त प्रकार से भगोल को यष्टि के बांध कर यष्टि के आगे के दोनों सिरों को दो नलिकाओं में पिरोकर खगोलदृग्गोल बनाकर भगोल का भ्रमण दर्शावे।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के गोलबन्धाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ त्रिप्रश्नवासना

तत्रादौ चरस्थानमाह—

उन्मण्डलक्ष्मावलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकालः।
तज्ज्यात्र कुज्या चरशिञ्जिनी स्याद्व्यासार्धवृत्ते परिणामिता सा॥१॥

सर्वप्रथम चर स्थान कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज तथा उन्मण्डल के मध्य अहोरात्रवृत्त का जितना काल होता है उसको चर खण्डकाल कहते हैं। उन्मण्डल में चर तुल्य चिन्ह करके उससे निबद्धसूत्र का अर्ध कुज्या होती है। इसको त्रिज्यावृत्त में परिणत करने से चरज्या होती है। अर्थात्

$$\text{चर} = \frac{\text{उन्मण्डल तथा क्षितिज के मध्य अ.रा.वृत्त का चाप} \times \text{त्रिज्या}}{\text{ध्रुव से उन्मंडल में चर चिन्ह की दूरी}}$$

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गो.बन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"क्षितिजोन्मण्डल योर्यत्स्वाहोरात्रातरं चरदलं तत्।"

सूर्यसिद्धान्त के ज्योतिषोपनिषदध्याय १३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ज्ञेया चरदलज्या च विषुवत्क्षितिजान्तरम्॥१४॥
कृत्वोपरि स्वकं स्थानं मध्ये क्षितिजमण्डलम्॥१५॥"

इदानीं लङ्कास्वदेशार्कोदययोन्तरं चरकालमाह—

निरक्षदेशे क्षितिजाख्यवृत्तमुन्मण्डलं तज्जगुरन्यदेशे।
स्वे स्वे कुजेऽर्कस्य समुद्गमोऽस्माच्चरार्धमर्कोदययोस्तु मध्ये॥२॥

सूर्य-प्रभा टीका— लंका तथा स्वस्थान के सूर्योदय का अन्तर चरकाल— अन्यसभी देशों के लिए निरक्ष देश का क्षितिजवृत्त उन्मंडल होता है। स्व स्व देश क्षितिज और उन्मण्डल में सूर्योदय के मध्य अन्तर चरार्ध तुल्य होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं चरफलस्य धनर्णवासनामाह—

आदौ स्वदेशेऽथ निरक्षदेशे सूर्योदयो ह्यस्तमयोऽन्यथातः।
ऋणं ग्रहेऽस्मादुदये स्वमस्ते फलं चरोत्थं रविसौम्यगोले॥३॥
याम्ये विलोमं खलु यत्र यस्मादुन्मण्डलं स्वक्षितिजादधस्तात्।
नाड्याह्वयादुत्तरयाम्यभागौ गोलस्य तावुत्तरयाम्यगोलौ।४॥

चरफल का धनर्ण करना—

सूर्य-प्रभा टीका— (उत्तरगोल में) सर्वप्रथम स्वदेश में (क्षितिज) उसके पश्चात् निरक्ष देश (क्षितिज) में सूर्योदय होता है तथा सूर्यास्त इसके विपरीत होता है अर्थात निरक्षदेश में सूर्यास्त प्रथम तथा स्वदेश में सूर्यास्त तत्पश्चात् होता है। चरफल को स्वदेश के उदित ग्रह में ऋण तथा अस्तकालिक ग्रह में धन करने से उत्तर गोल में रवि होता है। दक्षिण गोल में इसके विलोम क्रिया करते है क्योंकि वहाँ उन्मण्डल स्वक्षितिज के नीचे होता है। गोल के उत्तर दक्षिण भाग में अंशों के अनुसार असु होते हैं।

विशेष— लल्लाचार्य शि.धी.वृ० ग्रंथ के मध्यगति वासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उन्मण्डलादधस्तात् क्षितिजमुदग् दक्षिणे तदुपरिष्टात्।
तेन प्रागुदयोऽस्तमयः स्यात् तेन रविचारेण॥९॥
याम्ये गोले रव्युदयश्चिरेण शीघ्रं भवेद् यतोऽस्तमयः।
तेन तदन्तरभूतं कालफलमृणधने स्वमृणम्॥१०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. गोलवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उन्मण्डलादुदगधः क्षितिजं तदूर्ध्वं याम्ये उदग्गत इनः प्रथमं चरेण।
दृष्टं समेत्य चिरमस्तमुपैति याम्ये पश्चादुदेति विवरासुभिरेतयोश्च॥८॥
निजभुक्त्यनुपातः फलं क्षयवृद्ध्याह्वमतो दिवौकसाम्।$\frac{१}{२}$।"

इदानीं दिननिशोर्लघुत्वमहत्त्वे हेतुमाह—

अतश्च सौम्ये दिवसो महान् स्याद्रात्रिर्लघुर्व्यस्तमतश्च याम्ये।
द्युरात्रवृत्ते क्षितिजादधःस्थे रात्रिर्यतः स्याद्दिनमानमूर्ध्वे॥५॥
सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षे नोन्मण्डलं तत्र कुजाद्यतोऽन्यत्।

दिन-रात्रि का बड़ा छोटा होने का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— अतः उत्तर गोल में दिन बड़े तथा रातें छोटी होती है तथा दक्षिण गोल में विपरीत होता है। अहोरात्र वृत्त जितना क्षितिज के नीचे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थित होता है उतनी रात्रि होती है तथा जितना ऊपर रहता है उतना दिन होता है। निरक्ष देश में दिन-रात्रि सदा समान रहते हैं क्यों उन स्थानों पर अन्य दूसरा उन्मण्डल नहीं होता, जैसे अन्य स्थानों पर होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के म.ग.वा. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अतएव महान दिवसस्तनीयसी रात्रिरुत्तरे गोले।
व्यस्तं याम्ये स्पष्टं विकारणं छेद्यकेऽभिहितम॥११॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अतएव दिनक्षयार्धयोर्बृहदल्पत्वमणूरुता क्रमात्॥९॥"

इदानीं विशेषमाह—

षट्षष्टिभागाभ्यधिकाः पलांशा यत्राथ तत्रास्त्यपरो विशेषः॥६॥
लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत् तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र।
यावच्च याम्या सततं तमिस्त्रा ततश्च मेरौ सततं समार्धम्॥७॥

अब विशेष बात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस देश के ६६ अंश से अधिक अक्षांश हो वहाँ विशेष बात है। सूर्य की उत्तरा क्रांति वहाँ पर जब तक लंबांश से अधिक होती है तब तक वहाँ लगातार दिन रहता है और जब तक दक्षिण क्रांति इतनी रहती है तब तक वहाँ सतत रात्रि रहती है और मेरु स्थान पर लगातार वर्षार्ध तक दिन तथा रात्रि होती है।

विशेष— क्योंकि दक्षिण क्षिज के ऊपर नाडीवृत्त लंबांशअन्तरित रहता है और लंबांश अन्तरित पर ही उत्तर क्षितिज के नीचे रहता है। अतः नाडीवृत्त से लंबांश से अधिक उत्तर क्रांति होने पर उसके अग्र में जो अहोरात्र वृत्त होता है वह उत्तर क्षितिज से ऊपर ही रहता है। नाडीवृत्त से उतनी ही दक्षिण क्रांति पर उसके अग्र जो अहोरात्र वृत्त होता है वह दक्षिण क्षितिज से नीचे रहता है। अतः क्षितिज के ऊपरस्थित अहोरात्रवृत्तों में भ्रमण करते हुए रवि सर्वदा दृश्य ही रहता है और क्षितिज के अधः स्थित अहोरात्रवृत्तों में भ्रमण करते हुए रवि सतत उदृश्य रहता है।

आचार्य ने स्वकृत वासना भाष्य में एक उदाहरण देकर यह बात समझाई है। जहाँ अक्षांश ७० अंश है वहाँ लंबांश २० अंश होगा। उस देश में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषुवद्वृत्त दक्षिण क्षितिज के ऊपर २० अंश तुल्य रहता है तथा उत्तर क्षितिज के नीचे इतना ही रहता है। यदि रवि की उत्तर क्रांति २० अंश हो तो उत्तर क्षितिज से रवि का बिम्बार्ध उदित होकर मध्यान्ह में दक्षिण क्षितिज के ऊपर याम्योत्तर मंडल में ४० अंश उन्नत होगा। तब ३० घटी का दिनार्ध होगा अतः ६० घटी का दिन होगा और रात्रि शून्य होगी। इसके अगले दिन में क्रांति अधिक होने से रवि उत्तर क्षितिज को स्पर्श नहीं कर सकेगा। इस प्रकार प्रतिदिन भ्रमण करते हुए जब वह उसकी परमक्रांति तुल्य ऊपर भ्रमण करेगा तब मिथुनांत पर उत्तरिक्षितिज से ४ अंश ऊपर रहेगा (२४–२०=४)। पुनः इसी क्रम से अवरोहि होते हुए २० अंश से अधिक क्रांति रहने तक वह सतत दृश्य रहेगा जिससे सदा दिन रहेगा। इसी युक्ति से इतने काल तक सूर्य दक्षिण गोल में क्षितिज के नीचे रहने से सदा तब तक वहाँ रात्रि रहेगी। इसी प्रकार मेरु पर ६ माह तक दिन रहता है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त बात को ही दूसरे प्रकार से कह दिया है। यथा–

"स्वाहोरात्रसमा यत्राक्षज्याऽवलम्बकः क्रान्त्या।
मेषादिगस्य तावत् यावत् कर्क्यादिगस्य रेवः॥५५॥
नास्तमयस्तत्र तुलामकरादिस्थस्य नोदयोऽर्कस्य।
मन्मध्यान्तरलिप्ता मध्यमभुक्त्या हृता दिवसाः॥५६॥"

श्रीपति ने सि.शे. में इसी प्रकार से आचार्योक्त बात कही है। यथा–

"यत्राऽक्षज्यादिनगुणसमालम्बकः क्रान्ति-
तुल्यस्तस्मिन् मेषप्रभृतिषु रविः कर्कटाद्येषु यावत्।
नास्तं गच्छत्युदयति तुलानक्रपूर्वेषुनासौ
तनमध्यार्कान्तरभवकला भुक्तिभक्ता दिनानि॥"

इदानीं मेरुसंस्थानमाह—

विषुवद्वृत्तं द्युसदां क्षितिजत्वमितं तथा च दैत्यानाम्।
उत्तरयाम्यौ क्रमशो मूर्धोर्ध्वगतौ ध्रुवौ यतस्तेषाम्॥८॥
उत्तरगोले क्षितिजादूर्ध्वे परितो भ्रमन्तमादित्यम्।
सव्यं त्रिदशाः सततं पश्यन्त्यसुरा असव्यगं याम्ये॥९॥

मेरु की स्थिति के लिए कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— विषुवद् वृत्त देवताओं तथा दैत्यों के लिए क्षितिज

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्त वत स्थित रहता है। देव दानव स्थित ध्रुव स्थान इससे क्रमशः उत्तर-दक्षिण की ओर ऊर्ध्व-ऊर्ध्व स्थित होते हैं। उत्तर गोल में क्षितिज के ऊपर सूर्य जब भ्रमण करता है तब देवता (त्रिदशाः) उसको सव्य क्रम में परिभ्रमण करते हुए सतत् (छः माह तक) देखते हैं तथा दक्षिण गोल में असुर इसी प्रकार असव्य क्रम में भ्रमण करते हुए देखते हैं।

इदानीं दिनरात्रिस्वरूपे पितृदिनं चाह—

दिनं दिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने सति।
कुपृष्ठगानां द्युनिशं यथा नृणां तथा पितॄणां शशिपृष्ठवासिनाम्॥१०॥

दिन-रात्रि स्वरूप पितृदिन कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जब सूर्य का दर्शन होता है अर्थात् जब सूर्य उदित रहता है तब तक वहाँ अन्धकार नाश होता है और दिन रहता है। भूपृष्ठ पर स्थित मनुष्यों के जिस प्रकार दिन-रात्रि होते हैं उसी प्रकार चन्द्रमा के पीछे के भाग पर निवास करने वाले पितृगणों के भी दिन-रात्रि होते हैं।

विशेष— श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय १५—

"सकृदुदगतो दिनकरः सुरासुरैरपि वत्सरार्धमवलोक्यते स्फुटम्।
पितृभिश्च मासदलमिन्दुगोलगैर्द्युदलं महीतलगतैश्च मानवै॥५८॥"

इदानीं संहितोक्तस्याभिप्रायमाह—

दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्त्तनाय तत्॥११॥
द्वन्द्वान्तमारोहति यैः क्रमेण तैरेव वृत्तैरवरोहतीनः।
यत्रैव दृष्टः प्रथमं स देवैस्तत्रैव तिष्ठन् न विलोक्यते किम्॥१२॥

संहिता ग्रंथों में इसका अभिप्राय—

सूर्य-प्रभा टीका— संहिताकारों का कहना है कि उत्तर अयन देवताओं का दिन होता है तथा दूसरा अर्थात दक्षिण अयन उनकी रात्रि होती है। उनके अनुसार दिनोन्मुख सूर्य अर्थात अर्धरात्रि से मध्यान्ह तक, के रहने तक दिन रहता है तथा उसके पश्चात् (रात्रि उन्मुख सूर्य के रहने तक अर्थात मध्यान्ह से अर्धरात्रि पर्यंत) रात्रि होती है। संहिताकारों का यह अभिप्राय न हो तो मेषारंभ से आगे मिथुनान्त तक जो वृत्त है वे आरोहि हैं तथा बाद में अवरोहि होते हैं। यदि देवता अपने स्थान पर बैठकर पहले आरोहि को देखते तो वहाँ बैठकर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अवरोहि को क्यों नहीं देखते हैं? अर्थात् मकरारंभ से मिथुनान्त तक देवताओं का दिन तथा कर्कारम्भ से मिथुनान्त तक देवताओं की रात्रि तथा दैत्यों का दिन होता है।

विशेष— श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय १५—

"दिन प्रवृत्तिर्मरुतामजादौ तुलाधरादौ च निशाप्रवृत्तिः।
ते कल्पिते यैर्मृगकर्कटाद्यैरन्योपपत्तिं न च ते ब्रुवन्ति॥
द्वन्द्वान्तयातं कनकाद्रियाताः पश्यन्ति पङ्के रुहिणीपतिं चेत्॥श्लो.५८।"

इदानीं पितृदिवसस्योदयास्तादिकालानाह—

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद्द्युदलं तदैषाम्॥१३॥
भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।
कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम्॥१४॥

अब पितृ दिवस का उदयास्त काल—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रमा के ऊपरी (मनुष्य दृष्ट स्थान से पीछे) भाग पर पितगृण रहते हैं वे अपने सिर के ऊपर पृथ्वी को उसी प्रकार देखते हैं जैसे पृथ्वी वासी चंद्रमा को अपने सिर के ऊपर देखते हैं। वे सूर्य को अपने मस्तक के ऊपर उसी प्रकार देखते हैं जैसे हम दिनार्ध काल में हमारे सिर के ऊपर सूर्य को देखते हैं। आकाश अर्धभाग में अवरोध न होने के कारण पितृगणों (पृथ्वी पर अमावस्या के समय) का दिन होता है तथा पृथ्वी पर पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा का अवरोध होने के कारण वहाँ रात्रि होती है। अतः पृथ्वी पर कृष्ण पक्ष में रवि, चन्द्रमा के पृष्ठ (ऊपरी) भाग पर उदित होता है और शुक्ल पक्ष में वहाँ अस्त होता है, यह सिद्ध होता है।

विशेष— पूर्वोक्त श्लोक १० से उपरोक्त श्लोकोक्त बातों को अन्य आचार्यों ने सूक्ष्म में कहा है। यथा—

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. में इस प्रकार कहा है। यथा मध्यमाधिकार—

"क्षितिशशिनोर्दिवसान्तरमाहुस्तिथिविलयान् नृसमां रविवर्षम्।
पितृदिवसं विधुमासमिनाब्दं दितितनयामरवासरसंज्ञम्॥४॥"

ब्र.गु. ने भी ब्र.स्फु.सि. के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"सावनमुदयादुदयं भानांचार्क्षनृवत्सरोऽर्काब्दः।
पितृदिवसाः शशिमासादिव्यानि दिनानि रवि भगणाः॥२५॥"

सूर्य सिद्धान्त के मानाध्याय १४ में आचार्योक्त पितृमान कहा है। यथा—

"त्रिंशतातिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम्।
निशा च मासपक्षान्तौ तयोर्मध्ये विभागतः॥१४॥"
पितरः शशिगाः पक्षं स्वदिनं च नरा भुवि॥७४॥ अ.१२॥"

अथ ब्रह्मदिनोपपत्तिमाह—

यदतिदूरगतो द्रुहिणः क्षितेः सततमाप्रलयं रविमीक्षते।
भवति तावदयं शयितश्च तद्युगसहस्रयुगं द्युनिशं विधेः॥१५॥

ब्रह्मदिन की उपपत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— अनन्त दूरी पर बैठा हुआ ब्रह्मा प्रलय न होने तक सतत रवि को देखता है। एक सहस्र युग तुल्य ब्रह्मा के एक दिन तक वह सूर्य को देखता है तत्पश्चात् इतने तुल्य ही एक रात्रि तक वह विश्राम करता है तब प्रलय काल रहता है उस समय रव्यादी समस्त सृष्टि का वह संहार कर के अपने में समेट लेता है। इस प्रकार एक दिन रात का ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है।

इदानीमुदयवासनामाह—

यो हि प्रदेशोऽपममण्डलस्य तिर्यक्स्थितो यात्युदयं तथास्तम्।
सोऽल्पेन कालेन य ऊर्ध्वसंस्थोऽनल्पेन सोऽस्मादुदया न तुल्याः॥१६॥
य उद्गमे याम्यनता मृगाद्याः स्वस्वापमेनापि निरक्षदेशे।
याम्याक्षतस्तेऽतिनतत्वमाप्ता उद्यन्ति कालेन ततोऽल्पकेन॥१७॥
कर्क्यादयः सौम्यनता हि येऽच ते यान्ति याम्याक्षवशादृजुत्वम्।
कालेन तस्माद्बहुनोदयन्ते तदन्तरे स्वं चरखण्डमेव॥१८॥

अब राशि उदय बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— लंका से क्रांतिवृत्त का जो राशि प्रदेश जितना तिर्यक् (तिरछा) स्थित होता है वह लंका में उतने ही अल्प समय में उदित होता है और जो उर्ध्व स्थित होता है वह देरी से उदित होता है अतः उनका उदय मान समान नहीं होता। मकरादि से मिथुनान्त तक अपनी अपनी-अपनी क्रांतिवश दक्षिण में नत होती हुई उत्तर नत होती है। दक्षिण क्षितिज से अति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

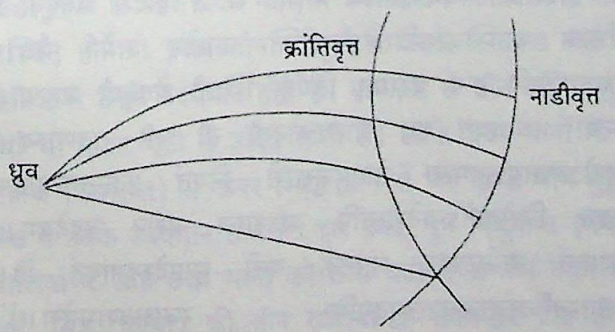
नत होने के कारण उनके उदय काल स्वदेश में अल्प होते हैं। इसी प्रकार कर्क्यादि से स्व स्व क्रांतिवश उत्तर की ओर नत होने से दक्षिण क्षितिज से तिरछी होती है तथा उनका उदय काल अधिक होता है। इसी प्रकार निरक्षदेश में भी उदयकाल समान नहीं होते हैं। लङ्का तथा स्वदेश में उदय काल का अन्तर अपना चर खण्ड होता है। यह वहाँ के क्षितिज पर उदय का अन्तराल है।

स्वदेश में भी क्रांति तथा अक्षांश वश उन राशियों के उदयकाल समान नहीं होते।

विशेष— लङ्का से विषुवद अहोरात्र समान रूप से पश्चिम गामि होता है। राशिवलय मकरादि पर परमक्रान्ति तुल्य रहते हुए विषुवन्मण्डल के दक्षिण से मिथुनान्त तक उत्तर की ओर लगता हुआ तिरछा होता है। वहाँ मेष राशि स्वक्रांतिवश अधिक तिरछी उदित होती है। अतः वह अल्पकाल में उदित हो जाती है। वृषभराशि उससे अल्प तिरछी होने से उससे कुछ अधिक काल में उदित होती है। और मिथुन राशि उससे अल्प तिरछी होने के कारण उससे अधिक काल में उदित होती है। इसी प्रकार निरक्ष देश में भी वे समान काल में उदित नहीं होती हैं। इसी प्रकार मकरादि से दक्षिण की ओर नत होने से दक्षिण क्षितिज पर अतिनत होकर उदित होती है, स्वदेश से अल्पकाल में उदित होती हैं।

कर्क्यादि स्वक्रान्ति से उत्तर की ओर नत होकर याम्य (दक्षिण) क्षितिज से तिरछी जाती हुई उदित होती है। अतः इनका उदयकाल बड़ा होता है।

राशि के आदि बिन्दु पर ध्रुवप्रोतवृत्त तथा राश्यन्त पर ध्रुवप्रोत वृत्त नाडीवृत्त में जहाँ लगते हैं उनके अन्तर्गत नाडीवृत्त चाप उस राशि का निरक्षदेशीय उदय मान होता है। राशि उदय में भिन्नता चित्र से स्पष्ट है।



CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष-- लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के मध्यगतिवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा-

''लङ्कावृत्ते मध्यस्थिते भुवो यत्कुजं तदुदवृत्तम्।
तेन न तत्र चरदलं सदा समत्वं च दिवसनिशोः॥१२॥
तत्राक्षाभावेऽपि स्वस्वक्रान्त्या स्थितौ तिरश्चीनौ।
ज्यायस्या मेषवृषौ यतौ ऽल्पकालोदयौ तेन॥१३॥
मिथुनान्तोऽल्पक्रान्त्या पदान्तगत्वादृजुस्थितो यस्मात्।
तस्माच्चिरोऽसावक्षवशाच्चान्यविषयेषु॥१४॥
आद्यान्त्यचक्रपादौ द्युनिशचतुर्थेन चरदलोनेन।
उद्गच्छतः पलवशाद् भ्रमाच्च युक्तेन मध्यस्थौ॥१५॥
प्रागायतं कुलीरान्मकरादुदगायतं यतः षट्कम्।
अक्षे भ्रमवशगत्वादधिकन्यूनोदयं तस्मात्॥१६॥''

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा-

''उन्मण्डलमेवः भूमिजं लङ्कायां चरकर्म नास्त्यतः।
तुल्यत्वमहर्निशोस्ततः तस्यामक्षलवेष्वसत्स्वति॥१०॥
तिर्यक्स्थितौ मेषवृषौ स्वकीयक्रान्त्या यतोऽल्पाभ्युदयौ ततस्तौ।
क्रान्तेर्लघुत्वेऽपि पदान्तकं भं कालेन दीर्घेण ऋजुस्थितत्वात्॥११॥
प्रथमान्त्यभचक्रपादयोश्चरखण्डोनदिनार्द्धिघ्नोदयः।
द्वितृतीयकयोश्च तद्युजाद् विषये साक्षगुणे क्रमोत्क्रमात्॥१२॥
मकरादुदयगायतं कुलीरात् प्रागायतं षट्कमस्मात्।
अहनि भपञ्जरभ्रमणात् चिरस्वल्पसमुद्गमो भानाम्॥१३॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा-

''या द्वादशांशोऽपममण्डलस्य राशिः स ते द्वादश मेषपूर्वाः।
तिर्यक्तया क्रान्तिवशान्निरक्षेऽप्युशन्ति कालेन समेन नैव॥
निरक्षतायामपि हन्त यस्मात् तिर्यक् स्थितौ मेषवृषौ महत्या।
क्रान्त्या भवेतामत एव चाल्पकोदयौ तौ पुरि रावणास्य॥
मिथुनोऽल्पतयाऽपमस्य तेषामृजुरास्ते नियतं पदान्तगत्वात्।
अतएव चिरोदयोऽन्यदेशेष्वपि वाऽक्षस्य वशेन तद्वदेवम्॥
याम्यायतं कर्कटकाद् भषट्कं यतो मृगादेरुदगायतं हि।
भवेत्ततस्तच्चिरतुच्छकालमुद्गमि स्वाक्षवशभ्रमेण॥''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्र.गुप्त ने ब्र.स्फु. सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लङ्का समपश्चिमगं प्राणेन कलां भमण्डले भ्रमति।
अपमण्डलस्य राशिद्वार्दशभागः क्षितिजलग्नाः ॥५९॥
यान्त्युदयं मेषाद्या यतस्तदुदया न कालसमाः।
क्रान्तिवशाल्लंकायां तदूनताधिक्यमक्षवशात् ॥६०॥"

अथ चरखण्डैरूनाधिकत्वं गोलभ्रमणोपरि यथा प्रतीयते तथाह—

भचक्रपादास्तिथिनाडिकाभिः पृथक् समुद्यन्ति निरक्षदेशे।
चक्रार्धमाद्यं च तथा द्वितीयं सर्वत्र पूर्णाग्निमिताभिरेव ॥१९॥
मेषादेर्मिथुनान्तो नाडीभिस्तिथिमिताभिरुद्वृत्ते।
लगति कुजे तदधः स्थे प्रथमं ताभिश्चरोनाभिः ॥२०॥
कन्यान्ताद्धनुषोऽन्तस्तिथिमितनाडीभिरुद्वलये।
लगति कुजे चोर्ध्वस्थे पश्चात् ताभिश्चराढ्याभिः ॥२१॥
तद्रहितत्रिंशद्भिः कन्यान्तो वा झषान्तो वा।
चरखण्डैरूनाढ्यास्तेन निरक्षोदयाः स्वदेशे स्युः ॥२२॥
क्षितिजेऽजादिं कृत्वा गोलं भ्रमयन् प्रदर्शयेत् सर्वम्।
उक्तमनुक्तं चान्यच्छिष्याणां बोधजननार्थम् ॥२३॥

चरखण्ड के ऊन अधिकत्व गोल भ्रमण में जैसी प्रतीति है उसके अनुसार—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्षदेश में भचक्र के प्रत्येक चतुर्थांश भाग में स्थित (तीनों) राशियाँ पृथक्-पृथक् पन्द्रह घटी में उदित होती है और प्रथम चक्रार्ध भाग अर्थात् छः राशियाँ तथा उत्तरार्ध भाग की छः राशियाँ तीस घटी में उदित होती हैं। मेषारम्भ से मिथुनान्त तक की राशियाँ निरक्ष क्षितिज में पन्द्रह घटी में उदित हेाती है उनके उदय मानों में स्व क्षितिज निरक्ष क्षितिज (उन्मंडल) से अधः स्थित होने से प्रथम तीन राशियों में उनके चरखण्ड मान कम करने से स्व क्षितिज में उनके उदयमान होते हैं। कन्यान्त से तीन राशि धनु अंत तक की राशियाँ भी पन्द्रह घटी में उदित होती हैं। उनके उदय मानों में स्वक्षितिज निरक्ष क्षितिज (उन्मंडल) से ऊपर स्थित होने से चर खण्ड मान युक्त करने से स्व क्षितिज में उनके उदयमान होते हैं। इस प्रकार इन मिथुनान्त (मेषवृषभ तथा मिथुन) राशियों के प्राप्त उदय मानों को तीस घटी में से कम करने से कन्यान्त तक (कर्क, सिंह, कन्या) की तीन राशियों के उदयमान प्राप्त होते हैं और

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कन्यारंभ से धनुनान्त तक की राशियों के प्राप्त उदय मानों को तीस घटी में से घटाने से धनुनान्त से मीनान्त तक की तीन राशियों के उदय मान प्राप्त होते हैं। ये उदयमान निरक्षोदय मानों में क्रमशः स्वचरमान जोड़ने तथा घटाने से भी प्राप्त हो जाते हैं।

आचार्य कहते हैं कि ये सब स्वक्षितिज में मेषारंभ से सर्व राशि उदय का प्रदर्शन गोल को घुमाकर प्रदर्शित करना चाहिये। यहाँ जो भी कहा गया है वह तथा जो नहीं कहा गया है वह तथा अन्य सभी बातों का शिष्यों को बोध कराना चाहिये।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"आद्यान्त्यचक्रपादौ द्युनिशचतुर्थेन चरदलोनेन।
उद्गच्छतः पलवशाद् भ्रमाच्च युक्तेन मध्यस्थौ॥१५॥
प्रागायतं कुलीरान्मकरादुदगायतं यतः षट्कम्।
अक्षे भ्रमवशगत्वादधिकन्यूनोदयं तस्मात्॥१६॥
स्वचरार्धेनोनयुता ये दृश्या राशयो भवन्त्यत्र।
तेन युतोनाः क्रमशस्तेऽक्षवशादस्तमुपयान्ति॥१८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. के गोलवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रथमान्त्यभचक्रपादयोश्चरखण्डोनदिनार्द्धघ्नोदयः।
द्वितृतीयकयोश्च तद्युजाद् विषये साक्षगुणे क्रमोत्क्रमात्॥१२॥
मकरादुदगायतं कुलीरात् प्रागायतं षटकमस्मात।
अहनि भपञ्जर भ्रमणात् चिरस्वल्पसमुद्गमोभानाम्॥१३॥
स्वचरार्धोनसंयुताः प्राक्कुजे ये समुदयन्ति तेऽपरे।
तेन युतोनात् क्रमात् पुनर्भूमिजेऽस्तमुपयान्ति राशयः॥१५॥"

पूर्व श्लोक की व्याख्या के विशेष विवरण में उद्धृत लल्ल तथा श्रीपति एवं वटेश्वरादिके श्लोक भी देखें।

अथास्तमयानाह—

योऽभ्युदेति समयेन येन तत्सप्तमोऽस्तमुपयाति तेन च।
राशिरूर्ध्वमपमण्डलं कुजादर्धमेव सततं यतः स्थितम्॥२४॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अब दो राशियों के उदय अस्तमानों का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जो राशि जितने काल में उदित होती है उससे सप्तम राशि उतने ही समय में अस्त होती है। इस प्रकार तुला आरंभ से जितने समय में तुलापूर्ण उदित होती है उतनी देर में मेष आरंभ बिंदु से मेष राशि पूर्ण अस्त होती है क्योंकि अपमण्डल क्षितिज से ऊपर आधा रहता है तथा आधा उससे नीचे रहता है। अतः इस प्रकार कहा हुआ राशियों का उदय तथा अस्त मान उपपन्न होता है।

इदानीं विशेषमाह—

यत्र लम्बजलवा जिनोनकास्तत्र नोदयचराद्यमुक्तवत्।
नान्यसंस्थिततयान्यथोदितं येन नैष विषयो नृगोचरः॥२५॥

अब विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस देश में अक्षांश ६६ से अधिक होते हैं वहाँ पर कुछ राशियाँ सदा उदित रहती हैं, कुछ राशियाँ सदा अस्त रहती हैं तथा कुछ राशियाँ उदित तथा अस्त होती रहती हैं। जो राशियाँ सदा उदित रहती हैं उनके अहोरात्र में रहता हुआ सूर्य उन स्थानों के क्षितिज को स्पर्श नहीं करता। अहोरात्रवृत्त में क्षितिज तथा उन्मण्डल का अन्तर ही चर होता है। अतः वहाँ कुज्या, अग्रा, चरज्या आदि का अभाव रहता हैं अतः पूर्वोक्त (श्लोक में) कथितानुसार राशियाँ उदय-अस्त नहीं होती है।

इदानीं लग्नशब्दव्युत्पत्त्योदयास्तमध्यलग्नस्थानान्याह—

यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते।
प्राचि पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे॥२६॥

लग्न शब्द की व्युत्पत्ति से उदय, अस्त तथा मध्य लग्न का स्थान—

सूर्य-प्रभा टीका— जहाँ अपमण्डल स्व क्षितिज से मिलता है वह बिंदु उस स्थान का लग्न कहलाता है। इस प्रकार यह पूर्व क्षितिज पर उदयलग्न तथा अस्त क्षितिज पर अस्तलग्न होता है। दक्षिणोत्तर वृत्त जहाँ मिलता है वह बिन्दु मध्यलग्न कहलाता है।

अथ लग्नार्थमर्कस्य तात्कालिकीकरणवासनामाह—

लग्नार्थमिष्टघटिका यदि सावनास्ता-
स्तात्कालिकार्ककरणेन भवेयुरार्क्ष्यः।
आर्क्षोदया हि सदृशीभ्य इहापनेयास्ता-
त्कालकत्वमथ य क्रियते यदार्क्ष्यः॥२७॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्य का लग्न साधन करने के लिए तात्कालिकीकरण का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— लग्न साधन करने के लिए इष्ट घटियाँ नाक्षत्रिक हो या सावनात्मक हो जिससे सूर्य को तात्कालिक स्पष्ट किया जावे? यदि वे सावनात्मक होंगी तो उनको नाक्षत्रात्मक राशि उदयमान में विपरीत जाति की होने से कैसे घटाया जा सकेगा? अतः उनको नाक्षत्र मानात्मक होनी चाहिये। तथा भोग्य साधन करने के लिए सूर्य को तात्कालिक कैसे किया जावेगा? क्योंकि उदयावधि इष्टघटियों तथा सूर्योदय काल के अन्तर में से राशियों के भोग्य(काल) अंश क्रम से उदित होते हैं। अतः तब औदयिक सूर्य का ही भोग्य गृहण करके उपयोग करना चाहिये न कि तात्कालिक सूर्य से करना चाहिये।

अतः आचार्य ने कहा है कि यदि इष्ट घटी सावनात्मक हो तो उनसे सूर्य को तात्कालिक करने से वे नाक्षात्मक हो जाती हैं।

विशेष— आचार्य एक उदाहरण देते हैं कि जहाँ पाँच अंगुल पलभा हो वहाँ मेषारम्भ पर सूर्य स्फुट होता है। वहाँ अहोरात्र का मान ६०।७।२ घटि आदि है। अब उदयान्तर तुल्य अहोरात्र ६०।७।२ घटि पर यदि तात्कालिक लग्न साधन करे तो उससे (लग्न) सूर्य अधिक होता है और यदि औदयिक सूर्य से लग्न साधन करते हैं तो वह सूर्य के तुल्य ही आता है। अतः विधायक और निषेधात्मक प्रतिज्ञा (अन्वयव्यतिरेक) युक्ति से सूर्य को तात्कालिक करके उपयोग में लेने की युक्ति अयुक्ति ज्ञात होती है। लेकिन 'लग्नार्थमिष्टघटिका....' इत्यादि कहा है यहाँ श्लोक में।

यहाँ इष्ट घटियाँ सावनात्मक हों तो आचार्य उसको स्वीकार करके उनको नाक्षत्रात्मक करने के लिए कहते हैं। वे कहते हैं कि पूर्वकथित अहोरात्र संबंधी जो गति कलायें है उनको सूर्य स्थित राशि के स्व उदयमान से गुणा करके राशि कला (१८००) से विभक्त करने से प्राप्त फल असु तुल्य अधिक (युक्त) सावन मान तुल्य नाक्षत्र ६० घटी अहोरात्रवृत्त की नाक्षत्र घटियाँ होती है। अतः इष्ट घटी संबंधी गतिकला का स्वउदय असुओं से गुणा करके राशिकला से विभक्त करके प्राप्त फल असु को इष्ट सावन घटि में युक्त कर देवें। इस प्रकार वे सावनात्मक हो जाती है। इसमें से औदयिक सूर्य के भोग्य असु घटावे।

इस प्रकार सत्याचार्य के अनुसार लाघवार्थ इष्ट घटी संबंधी गतिकला सूर्य में युक्त करके जो भोग्य असु प्राप्त हो वे इन भोग्य असु औदयिक सूर्य के भोग्य असुओं से न्यून हों तो जितने इष्ट घटि में से घट सके उतने इष्टघटी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संबंधी गतिकला असु अधिक तुल्य होते हैं। इस प्रकार उन सावनात्मक को नाक्षत्रात्मक करने के लिए सूर्य को तात्कालिक करना उपपन्न होता है।

आचार्य कहते हैं कि यदि यह ऐसा है तो क्यों सावनात्मक को गृहण करके उसको नाक्षत्रात्मक किया जावे? उनको नाक्षत्र मान में ही क्यों नहीं स्वीकार कर लिया जावे? इसके लिए कहते हैं कि त्रिप्रश्नाधिकार में छाया प्राप्त करने में ग्रहों के स्वस्व सावन उदय मान ग्रहण किये हैं। अतः इष्टकाल पर स्वहोरात्र वृत्त में जहाँ ग्रह स्थित होता है वहाँ तथा जहाँ क्षितिज उससे संपात करता है वहाँ का अन्तर जितना होता है, वह घटि विभाग से सावन नाड़ियों में ही क्षेत्र विभागात्मक होता है।

उदय काल में जहाँ ग्रह स्थित होता है उसके तथा क्षितिज के मध्य जितना स्थान है वह नाक्षत्र मान का कालविभागात्मक है। जैसे पूर्णमासी को छाया कर्ण के लिए चन्द्र की असकृत विधि से उदित नाडियाँ उसके छयाकर्ण के लिए उपयोग में नहीं लाई जाती। तो फिर, छायार्थ किस प्रकार असकृत विधि से उसको प्राप्त करते हैं? इसके लिए आचार्य ने कहा है–

चन्द्र प्रभार्थमसकृद्विधिनोदितं यत् कैश्चित् कृत खलु न सत् तदसावनत्वात्।
जानन्ति ये न निपुणं गणितं सगोल तेषां तु तन्त्रकरणव्यसनं वृथैव॥

यह इसी अध्याय का श्लोक ३५ है।

छाया को क्षेत्रात्मक होने से सावन रूप में साधित करे। इसके लिए त्रिप्रश्न में व्याख्या की गई है। अतः इस प्रकार सावन घटियों के प्रसङ्ग में लग्नसाधनार्थ भी सावन अङ्गीकार करे।

इदानीं देश विशेषेण राशीन् सदोदिताननुदितांश्चाह—

त्र्यंशयुङ्नवरसाः $\frac{६९}{२०}$ पलांशका यत्र तत्र विषये कदाचन।
दृश्यते न मकरो न कार्मुकं किंच कर्किमिथुनौ सदोदितौ॥२८॥
यत्र साङ्घ्रिगजवाजिसंमिता $\frac{७८}{१५}$ स्तत्र वृश्चिकचतुष्टयं न च।
दृश्यतेऽथ वृषभाच्चतुष्टयं सर्वदा समुदितं च लक्ष्यते॥२९॥
यत्र तेऽथ नवतिः पलांशकास्तत्र काञ्चनगिरौ कदाचन।
दृश्यते न भदलं तुलादिकं सर्वदा समुदितं क्रियादिकम्॥३०॥

देश विशेष के लिए किसी राशि का सदोदित तथा अनुदित रहने की स्थिति—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस स्थान के ६९।२० अंश तुल्य अक्षांश होते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हैं वहाँ धनु तथा मकर राशियाँ कभी उदित नहीं होती तथा मिथुन एवं कर्क राशियाँ सदा उदित रहती हैं।

जिस स्थान के अक्षांश ७८।१७ अंश तुल्य होते हैं वहाँ वृश्चिक आदि चार (धनु, मकर, कुंभ भी) राशियाँ कभी भी उदित नहीं होती है और वृषभ से चार राशियाँ (मिथुन, ककर्म, सिंह भी) सदा उदित रहती हैं।

और जहाँ अक्षांश ९० अंश तुल्य होते हैं वह मेरु स्थान होता है तथा वहाँ तुलादि छः राशियाँ दृश्य नहीं होती तथा मेषादि छः राशियाँ सदा उदति रहती हैं।

जो राशियाँ क्षितिज के सदा नीचे रहती है वे उदित न हो पाने के कारण अदृश्य रहती हैं तथा जो राशियाँ क्षितिज के सदा ऊपर रहती हैं वे सदा उदित रहती हैं।

इदानीं लल्लोक्तस्य दृश्यादृश्यत्वलक्षणस्य दूषणमाह—

राशेर्यस्य निरक्षजोदयसमाः स्वीयाश्चरार्धासवो
दृश्यस्तत्र सदा स राशिरिति यन्नियुक्ति लल्लोदितम्।
यद्येवं रसषट् ६६ पलांशविषये सर्वेऽप्यमी सर्वदा
दृश्याः स्युर्युगपच्चरोदयघटीसाम्यादसत् तत् ततः॥३१॥

सूर्य-प्रभा टीका— लल्लाचार्य कथित राशि दृश्य-अदृश्य लक्षण दोषयुक्त हैं—

लल्लाचार्य का यह कथन की जिस राशि के निरक्षोदय (पल या) असु, स्वस्थान के चरार्ध असु के समान होते हैं वह राशि उस स्थान पर सदा उदित रहती है, आचार्य भास्कर के अनुसार युक्ति युक्त नहीं है। आचार्य कहते हैं कि यदि ऐसा है तो ६६ अंश अक्षांश स्थानों पर सभी राशियों के निरक्षोदय मान स्वस्थान के चरार्ध के तुल्य होते हैं अतः वहाँ पर सभी राशियाँ सदा उदित होनी चाहिये। लेकिन पूर्व में बताये अनुसार ऐसा नहीं होता। अतः लल्लाचार्य का कथन दूषित हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने निम्नलिखित श्लोक इस संबंध में शि.धी.वृ. ग्रंथ के अध्याय १६ में कहा है। यथा–

"यस्य स्वचरार्धसमा निरक्षविषयोदयासवो राशेः।
दृश्यः स सदा तस्मिन् दृश्योऽदृश्योऽन्यथा भवति॥१९॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीपति ने भी सि.शे. के अध्याय १६ के श्लोक ५६ में लल्लोक्त ही कहा है।

वटेश्वराचार्य ने भी वटे.सि. के गोलवासना में लल्लोक्त कहा है। यथा–

''लङ्कोदयो यस्य चरार्धतुल्यो राशिस्स तस्मिन्नियमेन दृश्यः॥१५$\frac{१}{२}$॥''

इदानीमन्यद्दूषणमाह—

षट्षष्टिः सदला लवाः पलभवा यस्मिन् न तस्मिन् धनु-
र्नक्रश्चापि न वृश्चिको न च घटः पञ्चाद्रयो ७५।० यत्र च।
दृश्यः स्यादिति यत् सदा प्रलपितं लल्लेन गोले निजे
गोलज्ञ त्रिलवोनितास्त उदिताः केनोच्यतां हेतुना॥३२॥

लल्लाचार्य कथित अन्य मत का भी दोष युक्त होना—

सूर्य-प्रभा टीका— लल्लाचार्य के अनुसार ६६।३० अंश तथा ७५ अंश अक्षांश पर क्रमशः धनु, मकर तथा वृश्चिक, धनु, मकर तथा कुंभ राशियाँ दृश्यमान नहीं होती। आचार्य कहते हैं कि यह बात लल्लाचार्य ने किस आधार पर कही है? क्योंकि वहाँ इन राशियों के निरक्षोदय मान तुल्य स्वचरखण्ड नहीं है, फिर भी? वहाँ चरज्या से अधिक त्रिज्या नहीं होती त्रिज्या से अधिक चरज्या होती है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यगतिवासना १६ में यह श्लोक कहा है। यथा–

''पंचभिरधिकाः सप्ततिरंशा यस्मिन् पलस्य विषये स्युः।
तत्र न वृश्चिककार्मुकमकरघटा दृश्यतां यान्ति॥२०॥''

श्रीपति ने भी सि.शे. में अध्याय १६ के श्लोक ५७ में लल्लोक्त ही कहा है। वास्तव में यहाँ कथित लल्लाचार्य तथा श्रीपति के वचन सही है लेकिन आचार्य का कहना यह है कि पूर्व में श्लोक १६ में जो लल्लाचार्य ने नियम कहा है वह यहाँ सही नहीं उतरता। आचार्य ने यहाँ कहा हुआ लल्लाचार्य का श्लोक २० गलत नहीं बताया है, यह बात ध्यान में देने की है।

वटेश्वराचार्य ने भी वटे.सि. के गोलवासना अध्याय में लल्लोक्त कहा है। यथा–

''यस्मिन पलांशा रसकोष (६६°) तुल्यान तत्र दृश्यो मकरो धनुश्च।
पले शरागांश (७५°) मिते ह्यदृश्याः कुम्भालिसप्ताङ्गमृगाः सदैव॥१७॥''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाक्षलम्बज्ञानार्थमाह—

यन्त्रवेधविधिना ध्रुवोन्नतिर्या नतिश्च भवतोऽक्षलम्बकौ।
तौ क्रमाद्विषुवदह्नयहर्दले येऽथवा नतसमुन्नता लवाः॥३३॥

अक्षांश तथा लम्बांश का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— यन्त्र वेध (चक्र यन्त्र) के द्वारा ध्रुव का वेध करने से प्राप्त उन्नतांश उस स्थान का अक्षांश तथा नतांश लम्बांश होता है। अथवा विषुवद् दिनार्ध पर यन्त्र वेध से सूर्य का वेध करने से सूर्य का नतांश वहाँ का अक्षांश तथा उन्नतांश लंबांश होता है। यहाँ आचार्य ने दो विधियाँ बताई हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विषुवद्दिवसे द्युदले पलो नतांशाः समुन्नता लम्बः।
उन्नतनतभागज्ये तदावलम्बाक्षजीवे स्तः॥२४॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विषुवद्दिवसे द्युमध्यजे नरदृग्ज्ये अवलम्बकाक्षजे।
अवनौ विवरं नराग्रकं नृतलास्तोदयसूत्रयोर्भवेत्॥१८॥"

इदानीं शङ्क्वानयनवासनां संक्षिप्तामाह—

उन्नतं द्युनिशमण्डले कुजात् सावनं द्युतिविधौ हि तज्ज्यका।
तिर्यगक्षवशतोऽक्षकर्णवच्छेदको न तु नरः स लम्बवत्॥३४॥

शंकु आनयन विधि—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज तथा अहोरात्रवृत्त के सम्पात बिन्दु से अहोरात्र वृत्तस्थ ग्रह पर्यन्त चाप की ज्या को शंकु कहते हैं। यह ग्रह बिंब से क्षितिज धरातल गत लम्बवत सूत्र रूप में होता है। ग्रह बिंब तथा ग्रह के उदयास्त सूत्रगत (लम्बवत) सूत्र अक्षांश वश लम्बवत् होता है। यह लम्बरूप सूत्र (इष्ट हृति) साक्षदेश में लम्बवत होने पर भी वह शंकु नहीं होती।

त्रिप्रश्नाधिकार में इसकी व्याख्या की जा चुकी है।

इदानीं केषांचिद्दूषणमाह—

चन्द्रप्रभार्थमसकृद्विधिनोदितं यत्
कैश्चित् कृतं खलु न सत् तदसावनत्वात्।
जानन्ति ये न निपुणं गणितं सगोलं
तेषां तु तन्त्रकरणव्यसनं वृथैव॥३५॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुछ अन्य दूषण—

सूर्य-प्रभा टीका— किन्हीं आचार्यों द्वारा चन्द्रछाया के लिए जो असकृत विधि को कहा है वह सावनात्मक गणना नहीं होने से सत्य नहीं है। अतः वे आचार्य गोलगणित में निपुण नहीं हैं, इसलिए उन्होंने जो तन्त्रकरण ग्रंथों की रचना की है वह वृथा ही की है। अर्थात् उन्हें इनकी रचना करने का अधिकार नहीं है।

इदानीं शङ्कुस्थानमाह—

दृष्टिमण्डलभवा लवाः कुजादुन्नता गगनमध्यतो नताः।
शङ्कुरुन्नतलवज्यका भवेद्दृग्गुणश्च नतभागशिञ्जिनी॥३६॥
भस्करेऽत्र सममण्डलोपगे यो नरः स समशङ्कुरुच्यते।
कोणशङ्कुरथ कोणवृत्तगे मध्यशङ्कुरिति दक्षिणोत्तरे॥३७॥
कुपृष्ठगानां कुदलेन हीनं दृङ्मण्डलार्धं खचरस्य दृश्यम्।
कुच्छन्नलिप्तानुरतो विशोध्याः स्वभुक्तितिथ्यंशमिताः प्रभार्थम्॥३८॥

शंकु का स्थान—

सूर्य-प्रभा टीका— दृग्मण्डल में क्षितिज से ऊपर ग्रहपर्यन्त उन्नतांश होते हैं तथा खमध्य से नीचे ग्रह तक नतांश होते हैं। उन्नतांशों की ज्या शंकु होती है तथा नतांश की ज्या दृग्ज्या होती है। कोणवृत्त में इसी प्रकार कोणशंकु तथा दक्षिणउत्तर वृत्त में मध्यशंकु होता है। दृग्मण्डलार्ध में से भूव्यासार्ध घटाने से भूपृष्ठस्थ लोगों का दृश्यखण्ड होता है। शंकु में से भूव्यासार्धकला घटाने से दृष्टा के लिए पृष्ठीय अहोरात्रवृत्त का ऊपर का भाग पृष्ठीय शंकु होता है। यह ग्रह गतियोजन का पंद्रह (१५)वाँ भाग होता है।

ग्रहच्छायाधिकार में इसकी व्याख्या की जा चुकी है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्वाहोरात्रे क्षितिजादिनगतशेषोच्चता रवे शंकुः।
तस्मादिनगत शेषं शंकुक्रमध्यान्तरं दृग्ज्या॥६२॥
दृग्मण्डले नतांशज्या दृग्ज्या शंकुरुन्नतांशज्या।
अर्कोदयास्तसूत्रादिनशंकोर्दक्षिणेनतलम्॥६३॥
दृश्यादृश्यं दृग्गोलार्ध भूव्यासदलविहीन युतम्।
दृष्टा भूगोलोपरि यतस्ततो लम्बनावनती॥६४॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लल्लाचर्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरकुजवृत्तादुन्नतलवशिञ्जिनी शङ्कुः।
तस्याग्रे दिन करो नरोऽर्कबिम्बावलम्बो खे॥२१॥
अम्बरमध्यांशुमतो मध्यांशज्या भवेन्नतज्या रवे।
शङ्कोर्मूलाद् दिङ्मध्यगामिनी भूतले दृग्ज्या॥२३॥
दृग्मण्डलमुपरिष्टाद् दृष्टः स्यात्तद्वृत्तौ खचरः॥१६॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरक्षितिजवृत्तत उन्नतांशज्याशंकुरत्र कथितः स्फुटभिष्टभायाम्।
तस्याग्रतो दिनकरोऽम्बररत्नबिंबमध्यावलंबकमुत प्रवदन्ति शंकुम॥
दृग्मण्डलार्घ यदि होर्ध्ववर्त्तिग्रहं यतस्तत्परिणाहसंस्थम्।
दृष्टा प्रपश्यत्यवनीतलस्थो भ्रमत्यतः खेचरसंमुखं तत्॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"समदिग्विदिग्जवलये दृक्क्षेपवृत्ते तथा
याम्योदग्वलये खमध्यखगक्षोणीजयोरन्तम्।
भागा उन्नतसंज्ञितानतलवाः तत्खाङ्कभागान्तरं
सर्वत्रैव नरा समुन्नतगुणा दृग्ज्या नतज्याः क्रमात्॥१७॥"

इदानीमग्रामुदयास्तसूत्रं चाह—

क्ष्माजे द्युरात्रसममण्डलमध्यभागजीवाग्रका भवति पूर्वपराशयोः सा।
अग्राग्रयोः प्रगुणमत्र निबद्धसूत्रं यत् तद्वदन्ति गणका उदयास्तसूत्रम्॥३६॥
सूत्राद्दिवाशङ्कुतलं यमाशं याम्यां गतं हि द्युनिशं कुजोर्ध्वे।
अधश्च सौम्यां निशि सौम्यमस्मात् सद्युक्तियुक्तं नृतलं निरुक्तम्॥४०॥
सौम्याग्रकाग्रान्नृतलं हि याम्यं याम्याग्रकाग्रात् पुनरेव याम्यम्।
तदन्तरैक्यं समवृत्तखेटमध्यांशजीवां भुवि बाहुमाहुः॥४१॥
दृग्ज्यां श्रुतिं चाथ तयोस्तु कोटिं पूर्वापरां वर्गवियोगमूलम्।

अग्रा तथा उदयास्त सूत्र—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज तथा स्वअहोरात्र वृत्त के संपात द्वय को मिलाने वाली रेखा को उदयास्त सूत्र कहते हैं। ग्रह स्थान से लम्बवत रेखा शंकु है। दिन में इसका तल उदयास्त सूत्र से दक्षिण की ओर होता है क्योंकि क्षितिज के ऊपर अहोरात्रवृत्त दक्षिण की ओर झुका होता है तथा क्षितिज के नीचे उत्तर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

की ओर नत होता हुआ होता है। अतः रात्रि में क्षितिज के नीचे शंकु तल उत्तर की ओर होता है।

क्षितिज में अहोरात्रमण्डल तथा सममण्डल के मध्यगत जीवा का नाम अग्रा है। अग्रा के दोनों (पूर्व तथा पश्चिम) बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा सूत्र स्वउदयास्त सूत्र होता है। शंकुमूल से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्ब शंकुतल है तथा पूर्वापर सूत्र पर लंब भुज है। स्वोदयास्त सूत्र और पूर्वापर सूत्र का अन्तर अग्रा है। अतः अग्रा में से शंकु तल को घटाने से बाहु होती है। यदि अग्रा शंकुतल से अल्प हो तो उनका अन्तर करने से दक्षिण शंकुतल बाहु होता है। रवि तथा सममण्डल के अंतर की ज्या बाहु होती है तथा दृग्ज्याकर्ण होता है। अतः इनके वर्गों का (कर्ण तथा बाहु) अन्तर पूर्वापर सूत्र में कोटि होती है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्युदले शंकुनतज्ये प्राच्यपराया यदि स्थितः शंकुः।
उदगूना दक्षिणतस्तदन्तरेणाधिकाऽर्काग्रा॥४६॥
उत्तर गोलेऽग्रोनं तदन्तरं याम्यगोले सूर्ये।
शंकुतलं शंकुहृतं विषुवच्छाया द्विषट्कगुणाम्॥४७॥
बाहुक्रांतिः कोटिः क्षितिजां तद्वर्ग्ययुतिपदं कर्णः।
अग्रोदयास्तसूत्राद्दक्षिणतो दृश्यशंकुतलम्॥५१॥"

इदानीं क्रान्तिक्षेत्राण्याह—

क्षेत्राणि वक्ष्येऽपमसंभवानि संक्षेपतोऽक्षप्रभवाणि चातः॥४२॥
भुजोऽपमः कोटिगुणो द्युजीवा कर्णस्त्रिभज्या त्रिभुजेऽपमोत्थे।
मेषादिजीवाः श्रुतयोऽपवृत्ते तद्भूमिजे क्रान्तिगुणा भुजाः स्युः॥४३॥
तत्कोटयः स्वद्युनिशाख्यवृत्ते व्यासार्धवृत्ते परिणामितानाम्।
चापेषु तासामसवस्ततो ये तेऽधो विशुद्धा उदया निरक्षे॥४४॥

क्रांति क्षेत्रों की उत्पत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या भुज, दुज्या कोटि तथा त्रिज्या कर्ण से बनने वाले त्रिभुज से क्रांति ज्ञात होती है। मेषादि राशियों की ज्या अर्थात् भुजांशज्या कर्ण तथा क्रांतिज्या भुज होता है। इन की स्वअहोरात्र वृत्त में कोटि अर्थात् द्युज्या को व्यासार्धवृत्त में परिणामित करने से प्राप्त चाप के असुओं को

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अधोअधः घटाने से निरक्ष देश में राशियों के उदय असु होते। अर्थात्—

$$\frac{\text{विषुवांश ज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{नाडीवृत्त में राशियों के उदय असु।}$$

तीन राशि चाप के उदय असु – दो राशि चाप के उदय असु =(मिथुन) तृतीय राशि के उदय असु।

दो राशियों के चाप के उदय असु – एक राशि चाप के उदय असु = द्वितीय राशि के उदय असु।

तथा एक राशिचाप उदय असु = प्रथम राशि के उदय असु।

अथाक्षक्षेत्राण्याह—

भुजोऽक्षभा कोटिरिनाङ्गुलो ना कर्णोऽक्षकर्णस्त्रिभुजं यथेदम्।
तथाक्षलम्बौ भुजकोटिरूपौ त्रिज्या श्रुतिर्दक्षिणसौम्यवृत्ते॥४५॥
उन्मण्डले प्रागपरोत्थसूत्रात् क्रान्तिज्यका कोटिरथ द्युरात्रे।
कुज्या भुजोऽग्रा क्षितिजे च कर्णः क्षेत्रं तथेदं त्रिभुजं प्रसिद्धम्॥४६॥
अग्रा भुजः स्वे समना च कोटिर्द्युरात्रके तद्धृतिरत्र कर्णः।
भुजोऽपमज्या समना च कर्णः कुज्योनिता तद्धृतिरेव कोटिः॥४७॥
उद्वृत्तना दोरपमः श्रुतिः स्यादग्रादिखण्डं खलु तत्र कोटिः।
उद्वृत्तना कोटिरथाग्रकाग्रखण्डं भुजस्तच्छ्रवणः क्षितिज्या॥४८॥
कोटिर्नरः शङ्कुतलं च बाहुश्छेदः श्रुतिस्त्र्यस्त्रसहस्त्रमेवम्।
उत्पाद्य सद्यः स्फुटगोलविद्यैश्छात्राय शास्त्रं प्रतिपादनीयम्॥४९॥

अक्ष क्षेत्र—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार में श्लोक १३ से १७ तक में अक्ष क्षेत्रों की उपपत्ति बताई हैं उन्हीं अक्ष क्षेत्रों को यहाँ फिर दुबारा बताया है। इसके लिए वहाँ की गई व्याख्या भी देखें। यहाँ निम्न लिखित अक्ष क्षेत्र कहे हैं।

(१) पलभा भुज, बारह अंगुल शंकु कोटि तथा अक्षकर्ण तुल्य कर्ण से एक मूलभूत अक्षक्षेत्र बनता है।

(२) अहोरात्रवृत्त तथा उन्मण्डल के संपात का पूर्वापर सूत्र से अंतर क्रांतिज्या कोटि है, कुज्या भुज तथा अग्रा कर्ण है यह एक प्रसिद्ध क्षेत्र है।

(३) दक्षिणोत्तर वृत्त में त्रिज्या कर्ण, लम्बरूप सूत्र कोटि तथा अक्षज्या भुज है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(४) अग्रा भुज, समशंकु कोटि तथा अहोरात्रवृत्त में तद्धृति कर्ण है, यह एक अक्षक्षेत्र है।

(५) क्रांतिज्या भुज, समशंकु कोटि तथा कुजा केा तद्धृति में से घटाने से ज्यार्ध कोटि है। यह एक अक्ष क्षेत्र है।

(६) उन्मण्डल में क्रांतिज्या कर्ण, अग्रादिखण्ड कोटि तथा उन्मण्डल शंकु भुज है। यह एक अक्ष क्षेत्र है।

(७) उन्मण्डल शंकु कोटि, अग्राग्रखण्ड भुज तथा क्षितिज्या अर्थात् कुज्या कर्ण है। यह एक अक्ष क्षेत्र है।

(८) समशंकु का ऊर्ध्व खण्ड कोटि, अग्रादि खण्ड बाहु तथा तद्धृति का उर्ध्व खण्ड कर्ण है। यह एक अक्षक्षेत्र है।

इस प्रकार सहस्रों अक्ष क्षेत्र बनते हैं। इस प्रकार उनको बनाकर छात्रों को बताना चाहिए तथा शास्त्र का प्रतिपादन करना चाहिए।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के त्रिप्रश्नवासनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ ग्रहणवासना

चन्द्रार्कग्रहणयोः स्पर्शे मोक्षे च दिग्व्यत्ययस्योपपत्तिमाह—

पश्चाद्भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रो
भानोर्बिम्बं स्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या।
पश्चात् स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात एव
क्वापिच्छन्नः क्वचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात्॥१॥

सूर्य-चंद्र ग्रहण में स्पर्श-मोक्ष की दिशा की उपपत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्र कक्षा सूर्य कक्षा के नीचे (स्थित) होती है। जिस प्रकार सूर्य से नीचे स्थित बादल रवि के आच्छादित करते हैं, उसी प्रकार चन्द्रमा भी सूर्य को उसके नीचे स्थित होने से शीघ्रगति से रवि को पश्चिम भाग से जाता हुआ आच्छादित करता है। इस प्रकार चन्द्रमा सूर्य को पश्चिम की ओर से सूर्यग्रहण करता हुआ पूर्व दिशा की ओर निकलता हुआ उसका (रवि) मोक्ष करता है। इस प्रकार सूर्य-चंद्र दोनों की भिन्न कक्षायें होने से चन्द्रमा सूर्य को पृथ्वी पर से देखने पर पृथ्वी के किसी स्थान से ढकता हुआ दिखता है तथा किसी स्थान से ढकता हुआ नहीं दिखता जिस प्रकार से रवि से नीचे स्थित बादलों से पृथ्वी के कुछ भागों से देखने से रवि ढका हुआ दिखता है तथा कुछ स्थानों से ऐसा नहीं दिखता।

इदानीं नतिलम्बनयोः कारणमाह—

पर्वान्तेऽर्कं नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येत्
भूमध्यस्थो न तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।
तद्वृक्सूत्राद्धिमरुचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेऽतः
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम्॥२॥
समकलकाले भूभा लगति मृगाङ्के यतस्तया म्लानम्।
सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती॥३॥
पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति।
तेन प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निःसरतः॥४॥
भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता॥५॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुपातात् तद्दैर्घ्यं शशिकक्षायां च तद्बिम्बम्।
भूभेन्दोरन्यदिशि व्यस्तः क्षेपः शशिग्रहे तस्मात्॥६॥

नति तथा लम्बन का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमध्य में स्थित दृष्टा द्वारा दर्शान्तकाल अर्थात् अमान्त काल में सूर्य को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर नत होकर ढकता हुआ चन्द्रमा दिखाई देता है क्योंकि दर्शान्त काल में वे दोनों समान स्थिति में होते हैं। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थित दृष्टा इस प्रकार से सूर्य को ढका जाता हुआ नहीं देखता। वह अपने दृष्टि सूत्र की सीध से चन्द्रमा को नीचे लंबित होता हुआ देखता है। अतः सूर्य चंद्र के कक्षाभेद होने से लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि समकलकाल में भूभा चन्द्र को आच्छादित करती हुई उस पर लगती है अतः दोनों की एक ही कक्षा होने के कारण पृथ्वी के ऊपर स्थित सभी स्थानों से चन्द्रमा को समान देखते हैं, क्योंकि वहाँ पर छाद्य चन्द्र तथा छाद्यक भूभा की एक ही कक्षा है। भूभा पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की गति तुल्य गति से ही चलती है और चन्द्रमा अपनी स्वगति से चलता है तथा वह भूभा से भी शीघ्रगति से पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूभा में स्वयं प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार उसका चन्द्र ग्रहण के समय पूर्व की ओर से स्पर्श होता है तथा भूभा में से बाहर निकलते समय उसके पश्चिम की ओर से मुक्ति होती है। रवि का बिंब बड़ा होता है तथा पृथ्वी का लघु होता है अतः भूभा सूचिकाकार होती है। वह दीर्घ (लंबी) होने के कारण चन्द्रकक्षा तक होते हुए दूर तक जाती है। उसकी दैदर्ध्यता अनुपात से साधित करते हैं। चन्द्रकक्षा प्रदेश पर भूभा चन्द्र बिंब तुल्य होने पर चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण होना प्रतिपादित होता है।

विशेष— लल्ल ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"जलदवदिन्दुर्दिनयं छादयति समागतो यतः पश्चात्।
प्रग्रहणमतः पश्चात् प्राग्भागे दिनकरे मोक्षः॥२९॥
प्रविशतितद् भूच्छायावृत्तं त्रैराशिकात् स्वकक्षस्थम्।
तेन न लम्बनमिन्दोर्नावनतिस्तुल्यकक्षत्वात्॥३१॥
प्रत्यङ्मुखं व्रजन्त्यां पूर्वाभिमुखो व्रजति शशी यस्मात्।
तस्मात् प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षः शिशिररश्मे॥३२॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं छादकनिर्णयमाह—

छादकः पृथुतरस्ततो विधोरर्धखण्डिततनोर्विषाणयोः।
कुण्ठता च महती स्थितिर्यतो लक्ष्यते हरिणलक्षणग्रहे॥७॥
अर्धखण्डिततनोर्विषाणयोस्तीक्ष्णता भवति तीक्ष्णदीधितेः।
स्यात् स्थितिर्लघुरतो लघुः पृथक् छादको दिनकृतोऽवगम्यते॥८॥
दिग्देशकालावरणादिभेदान्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति।
यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत् संहितावेदपुराणबाह्यम्॥९॥
राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं शशाङ्कगच्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमयः शंभुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत्॥१०॥

अब छादक निर्णय कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— आधा आच्छादित चन्द्र का शृङ्ग कुण्ठ (भोंथ) होता है अतः चन्द्र का छादक बड़ा होता है। आधे आच्छादित सूर्य की शृङ्ग तीक्ष्ण (नुकीले) होते हैं अतः सूर्य का छादक लघु होता है। साथ ही चन्द्र ग्रहण की स्थिति दीर्घ तथा सूर्य ग्रहण की अल्प होती है। इस कारण से सूर्य का छादक दूसरा होता है यह उपपन्न होता है तथा वह लघु होता है। क्योंकि लघुपरिधि को बृहद् परिधि से कोटने से परिधि के योग बिन्दुरूप शृङ्गद्वय की कुण्ठता होती है तथा विपरीत स्थिति में शृंगों की कुण्ठता नहीं होती है।

चन्द्रग्रहण पूर्व में स्पर्श होता है तथा सूर्य ग्रहण का स्पर्श पश्चिम में होता है। इस प्रकार दोनों ग्रहणों में भिन्नता होने का कारण क्या सूर्य और चन्द्र ग्रहण के लिए भिन्न राहु का होना है? सूर्यग्रहण में ग्रास की भी भिन्नता होती है। रवि ग्रहण पृथ्वी पर कहीं से दृश्य होता है तथा कहीं से नहीं होता। अतः इन सब कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रहण राहुकृत नहीं होता।

पूर्णान्त काल में चन्द्र बिंब को ब्रह्मा के वरदान से भूभा को आश्रयण कर के अर्थात भूभा में राहु प्रविष्ठ होकर (उसी चन्द्र बिंब को) आच्छादित करता है। एवं ब्रह्मवरदान से राहु चन्द्र बिंब में प्रविष्ठ होकर उसी सूर्य बिंब को आच्छादित करता है। इस प्रकार भास्कराचार्य ने भी अन्य आचार्यों की भांति ही संहिता-वेद-स्मृति-पुराणों के मत के साथ ज्योतिष सिद्धान्त का समन्वय किया है। आचार्य ने स्वकृत भाष्य में पुराण वाक्य उद्धृत किये हैं। यथा—

"सर्वगङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः। सर्व भूमिसमं दानं राहुग्रस्ते दिवाकरे।"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य कहते हैं कि खगोल ज्ञाता अभिमानी गणितज्ञों का उक्त मत सही है फिर भी वेद पुराण तथा संहिता शास्त्रों के अनुसार उक्त कथन सही नहीं है।

विशेष ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के ग्रहणवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"महदिन्दोरावणं कुण्ठविषाणो यतोऽर्धसञ्छन्नः।
अर्धच्छन्नो भानुस्तीक्ष्ण विषाणस्ततोऽस्याल्पम्॥३६॥
यदि राहुः प्राग्भागादिन्दुं छादयति किं तथा नार्कम्।
स्थित्यर्ध महदिन्दोर्यथा तथा किं न सूर्यस्य॥३७॥
किं प्रतिविषयं सूर्यो राहुश्चान्यो यतो रविग्रहणे।
ग्रासान्यत्वं न ततो राहुकृतं ग्रहणकर्मेन्द्वोः॥३८॥
एवं वराहामिहिर श्रीषेणार्यभट विष्णु चन्द्राद्यैः।
लोक विरुद्धमभिहितं वेदस्मृति संहिताबाह्यम्॥३९॥"
स्वर्भानुरासुरिनं तमसा दिव्याध वेदवाक्यमिंदम्।
श्रुति संहितास्मृतीनां भवति यथैक्यं तदुक्तिरतः॥४३॥
राहुस्तच्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपक्षदशयन्ते।
भूछाया तमसीन्दोर्वरप्रदानात् कमलयोनेः॥४४॥
चन्द्रोऽम्बुमयोऽधः स्थो यदग्निमयभास्करस्य मासान्ते।
छायति शमिततापो राहुश्छादयति तत् सवितुः॥४५॥

वराहमिहिर ने संहिता में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्धसञ्छन्नः।
स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाणौ रविर्भवति॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"राहुणा यदि पिधीयते ग्रहस्तिग्मशीतमहसोः स्वतृप्तये।
नैकरूपमवलोक्यते कथं स्पर्शमोचनविमर्दपूर्वकम्॥
सर्वं च गङ्गासममम्बु राहुग्रस्ते दिनेशे यदि वा शशाङ्के।
राहुपलब्धेरपरत्र कुर्यात स्नानं न रात्रौ स्मृतिषुक्तमेवम्॥
स्वर्भानुरासुरिरिनं तमसा घनेन विव्याध वेदवचने तदपि प्रसिद्धम्।
प्रोक्तानि भानुशशिनोरसुरेश्वरेण सञ्छन्नयोरपि च सांहितिकैः फलानि॥
विष्णुलूनशिरसः किल पन्नोर्दत्तवान् वरमिमं परमेष्ठी।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हेमदानविधिना तव तृप्तिस्तिग्मशीतमहसोरुपरागे।
भमेश्छायां प्रविष्टः स्थगयति शनिनं शुक्ल-
-पक्षावसाने राहुर्ब्रह्मप्रसादात् समधिगतवरस्तत्तमो व्याससुल्यः।
ऊर्ध्वस्थं भानुबिम्बं सलिलमयतनोरप्यधोवत्ति बिम्बं
संसृत्यैवं च मासव्युपरति समये स्वस्य साहित्यहेतोः॥''अ.१६।

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मिथ्याज्ञानाधिकार २० में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''प्रथमं रविमण्डलं यतो न ततः खण्डितमिन्दुमण्डलम्।
न समाकृतिरीक्ष्यते स्थितिर्यदतो राहुकृतो न स ग्रहः॥२५॥
सवितुश्च यदन्यथाऽन्यथा प्रतिदेशं सकलं समीक्ष्यते।
न च कुत्रचिदित्यवेत्य कः कुरुते राहुकृते ग्रहे ग्रहम्॥२६॥
ग्रहणे कमलासनानुभावाद्धुतदत्तांशभुजोऽस्य सन्निधानम्।
यदतः स्मृतिवेदसंहितासु ग्रहणं राहुकृतं गतं प्रसिद्धम्॥२७॥''
छादक बिम्बमहत्वाद् विषाणयोः कुण्ठतार्धसंच्छन्ने।
चन्द्रे स्थितिश्च महती भवति न च ग्रासवैचित्र्यम्॥३३॥''
ग्रहणे ग्रहमोक्ष दिशो रविशशिनोः खण्डकालवैचित्र्यात्।
शशिभूच्छाये कारणमकरणं राहुरिति सिद्धम्॥३४॥''

इदानीं ते लम्बनावनती कुतो हेतोः कृत इति कुदलेन साध्येते इत्यस्य प्रश्नस्योत्तरमाह—

यतः क्रर्धोच्छ्रितो द्रष्टा चन्द्रं पश्यति लम्बितम्।
साध्यते कुदलेनातो लम्बनं च नतिस्तथा॥११॥

लम्बन तथा नति का कारण तथा इसको दिनार्ध से क्यों साधित करते हैं? प्रश्न का उत्तर कहते हैं—

(यहाँ श्लोक-११ से २९ तक द्वारा आचार्य ने गणिताध्याय के सूर्यग्रहणाधिकार में कथित श्लोक-७ में उक्त लम्बन की उपपत्ति भी कही है।)

सूर्य-प्रभा टीका— क्योंकि भूपृष्ठ द्रष्टा भूकेन्द्र से भूव्यासार्ध तुल्य दूरी पर ऊपर स्थित होता है, अतः वह चन्द्रमा को वहाँ से नत देखता है। अतः दिनार्ध के समय लम्बन तथा नति का अभाव होता हैं।

विशेष— सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

''दृग्मण्डलार्धं यदि होर्ध्ववर्त्तिग्रहं यतस्तत्परिणाहसंस्थम्।
द्रष्टा प्रयश्चत्यवनीतलस्थो भ्रमत्यतः खेचरसंमुखं तत्॥''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गो.बन्ध. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृश्यादृश्यं दृग्गोलार्धं भूव्यासदलविहीनयुतम्।
द्रष्टा भूगोलोपरि यतस्ततो लम्बनावनती॥६४॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रं. के गो.बन्ध १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृङ्मण्डलमुपरिष्टाद् दृष्टः स्यात् तद्वृत्तौ खचरः॥१६॥"

इदानीं बालावबोधार्थं छेदद्यकप्रकारेण लम्बनमाह—

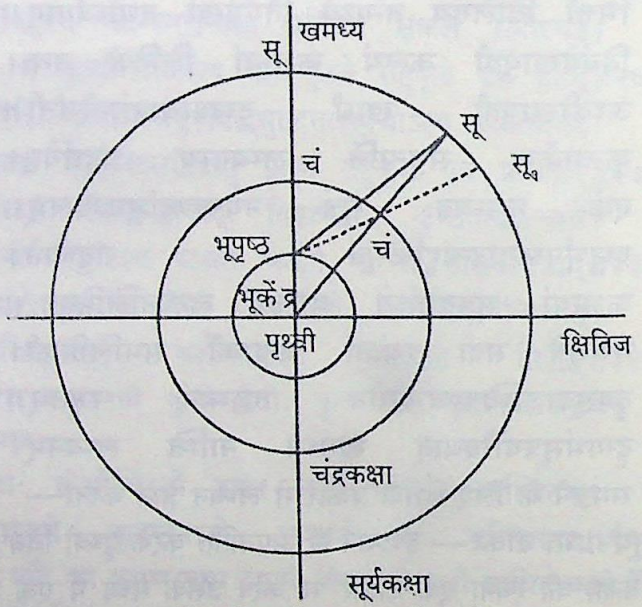
इष्टापवर्तितां पृथ्वीं कक्षे च शशिसूर्ययोः।
भित्तौ विलिख्य तन्मध्ये तिर्यग्रेखां तथोर्ध्वगाम्॥१२॥
तिर्यग्रेखायुतौ कल्प्यं कक्षायां क्षितिजं तथा।
ऊर्ध्वरेखायुतौ खार्धं दृग्ज्याचापांशकैर्नतौ॥१३॥
कृत्वार्केन्दू समुत्पत्तिं लम्बनस्य प्रदर्शयेत्।
एकं भूमध्यतः सूत्रं नयेच्चण्डांशुमण्डलम्॥१४॥
द्रष्टुर्भूपृष्ठगादन्यद्दृष्टिसूत्रं तदुच्यते।
कक्षायां सूत्रयोर्मध्ये यास्ता लम्बनलिप्तिकाः॥१५॥
गर्भसूत्रे सदा स्यातां चन्द्रार्कौ समलिप्तिकौ।
दृक्सूत्राल्लम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम्॥१६॥
दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्।

छात्रों के समझने के लिए छेद्यक प्रकार से लम्बन ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्टमान से अपवर्तित करके पृथ्वी बिंब तथा सूर्य-चंद्र की कक्षा की रचना एक दीवार पर करे। उसके मध्य में एक ऊर्ध्व रेखा तथा उसके लम्बवत् रेखा बनावे। लम्बवत रेखा सू.चं. की कल्पित कक्षाओं को जहाँ से काटते हुए जावे उसको क्षितिज माने तथा ऊर्ध्व रेखा जहाँ काटते हुए जावे वहाँ खमध्य माने। सू.चं. कक्षाओं में ३६० अंश भगणांश अंकित करे तथा चन्द्रसूर्य दृग्मण्डल में दर्शान्तकाल में सूर्य की दृग्ज्या तुल्य चापांश खमध्य से नत एक बिन्दु लगावें और इसी प्रकार चंद्र कक्षा में दर्शान्त कला में नतांश तुल्य एक बिन्दु लगावें। इन बिन्दुओं पर क्रमशः सूर्य तथा चन्द्रमा को कल्पित करें। अब भूमध्य बिन्दु से रवि बिन्दुगत रेखा खेंचे यह रेखा चन्द्रमा से होती हुई सूर्य तक जाती है। फिर भूपृष्ठ द्रष्टा स्थान से एक दूसरी रेखा सूर्य बिंदु तक खेंचे यह चन्द्रबिन्दु को नहीं छूती है। इन दोनों सूत्रों का अन्तर चन्द्रकक्षा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में जितने कला दिखाई देती है वह लम्बलिप्ता हैं। अथवा दृष्टास्थान से चन्द्रबिंदु के ऊपर होती हुई रेखा सूर्य कक्षा में जहाँ पर लगती है वहाँ इन सूत्रों का अन्तर जितने कला दिखाई देता है वह लम्बन लिप्ता के तुल्य होता है। भूगर्भ से होकर जाने वाला सूत्र गर्भसूत्र कहलाता है तथा सूर्य व चन्द्रमा वहाँ पर (उस सूत्र में) समान कला स्थान में रहते हैं। तथा जो रेखा दृष्टास्थान से रवि या चन्द्र तक जाती है उसको दृक्सूत्र कहते हैं। दृक्सूत्र से चन्द्रमा लंबित रहता है। इसको उसका लम्बन कहते हैं। जब चन्द्र तथा सूर्य खमध्य में होते हैं तब गर्भसूत्र तथा दृष्टी सूत्र एक ही हो जाने के कारण लम्बन का अभाव होता है।



पूर्वोक्त वृत्तान्त उपरोक्त चित्र से सुस्पष्ट होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्रष्टा समकलकाले भूदलमध्यस्थितः सूर्यम्।
पश्यति शशिना पिहितं न तदा भूगोलपृष्ठस्थः॥२३॥
भूप्रष्टमतो द्रष्टा पूर्वनतं पूर्वमेव तिथ्यन्तात्।
पश्यति समुच्छित्त्वाच्छशिनारविमण्डलं पिहितम्॥२४॥
पश्यति समकलकालात् परयोऽन्तरधीयते गतं नीचम्।
तेन प्राक् पश्चिमयोः कुदलकलालम्बनमृणं स्वम्॥२५॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूदलमध्यस्थस्य द्रष्टुर्भूपृष्ठगस्य वा दृष्टिः।
स्वाभिमुखं याति समं न लम्बनं तेन मध्याह्ने॥२६॥
पूर्वापरे कुवृत्ते लम्बनलिप्तोपपत्तिरुक्ता या।
याम्योदक्क्षितिजवशात् सा ज्ञेयाऽवनतिलिप्तानाम॥२७॥"

इदानीं नत्युपपत्तिमाह—

अथ याम्योत्तरायां तु भित्तौ पूर्वोक्तमालिखेत्॥१७॥
ये कक्षामण्डले तत्र ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले।
त्रिभोनलग्नदृग्ज्या या स दृक्क्षेपो द्वयोरपि॥१८॥
तच्चापांशैर्नतौ बिन्दू कृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ।
तल्लम्बनकलाः प्राग्वज्ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिकाः॥१९॥
कक्षयोरन्तरं यत् स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत्।
याम्योत्तरं नतिः सात्र दृक्क्षेपात् साध्यते ततः॥२०॥

नति की उपपत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से ही याम्योत्तर दिशा में नति को दर्शाये। जहाँ पहले कक्षामण्डल बताया गया वहाँ दृक्क्षेप मण्डल जाने। दर्शान्त में सूर्य तथा चन्द्र के त्रिभोनलग्न की जो दृग्ज्या है वह दृक्क्षेप है। ब्रह्मगुप्त मतानुसार उसके चापांश के वित्रिभ लग्न का शर संस्कार करने से चन्द्र का दृक्क्षेप चापांश होता है। उनके वृत्तों में खमध्य से स्वस्व दृक्क्षेप चापांश तुल्य सूर्य तथा चन्द्र के नत बिन्दु बनावे, इनकी वित्रिभ संज्ञा है। फिर पूर्ववत् जैसे सूर्यचंद्र का लम्बन कहा गया है। उसको ही यहाँ पर याम्योत्तर अन्तर नति के नाम से समझना चाहिये। अर्थात् जैसे पूर्व में भूमध्य और भूपृष्ठ से जो सूत्र बनाये गये हैं उनसे जैसे लम्बन कला कही है उसको यहाँ नतिकला कहते हैं। नति का अर्थ चन्द्रसूर्य का अपनी कक्षा में याम्योत्तर अंतर होता है। वित्रिभ लग्न स्थान पर जो याम्योत्तर अन्तर चंद्र सूर्य में होता है वही अन्तर सर्वत्र होता है। इस अन्तर को दृक्क्षेप के द्वारा साधित करने से नति का मान ज्ञात होता है।

दृक्क्षेपमण्डल, त्रिभोन लग्न दृङ्मण्डल को कहते हैं। ब्रह्मगुप्त ने त्रिभोन लग्न से लम्बन तथा नति साधन करने में त्रिभोन लग्न की दृग्ज्या को दृक्क्षेप चंद्र तथा सूर्य दोनों के लिए कहा है। उसके चापांश के लिए यहाँ आचार्य ने कहा है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष— पूर्व श्लोकों की व्याख्या विशेष में देखें।

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अथवा नतिः खमध्यान्मध्यज्याग्रं तदुत्थनत भागैः।
याम्यमुदग् वा यद्वद्ग्रहयोः कक्षान्तरं नद्वद्॥२८॥"

इदानीं स्फुटलम्बनार्थमाह—

यत्र तत्र नतादर्कादधश्चन्द्रावलम्बनम्।
तद्वृग्वृत्तेऽन्तरं चन्द्रभान्वोः पूर्वापरं तु तत्॥२१॥
पूर्वापरं च याम्योदग्जातं तेनान्तरद्वयम्।
अत्रापमण्डलं प्राची तत्तिर्यग्दक्षिणोत्तरा॥२२॥
यत् पूर्वापरभावेन लम्बनाख्यं तदन्तरम्।
यद्याम्योत्तरभावेन नतिसंज्ञं तदुच्यते॥२३॥
नतिलिप्ता भुजः कर्णो दृग्लम्बनकलास्तयोः।
कृत्यन्तरपदं कोटिः स्फुटलम्बनलिप्तिकाः॥२४॥
परलम्बनलिप्ता $\frac{४८}{४६}$ घ्नी त्रिज्याप्ता रविदृग्ज्यका।
दृग्लम्बनकलास्ताः स्युरेवं दृक्क्षेपतो नतिः॥२५॥
गत्यन्तरस्य तिथ्यंशः परलम्बनलिप्तिकाः$\frac{४८}{४६}$।
गतियोजनतिथ्यंशः कुदलस्य $\frac{७९०}{३५}$ यतो मितिः॥२६॥
स्युर्लम्बनकला नाड्यो गत्यन्तरलवोद्धृताः।
प्रागग्रतो रवेश्चन्द्रः पश्चात् पृष्ठेऽवलम्बितः॥२७॥
शीघ्रेऽग्रगे युतिर्याता गम्या पृष्ठगते यतः।
प्रागृणं तद्धनं पश्चात् क्रियते लम्बनं तिथौ॥२८॥
याम्योत्तरं शरस्तावदन्तरं शशिसूर्ययोः।
नतिस्तथा तया तस्मात् संस्कृतः स्यात् स्फुटः शरः॥२९॥

अब स्फुट लम्बन का अर्थ कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जहाँ कही सूर्य से नीचे चन्द्रमा जितना नत दिखाई देता है वह वहाँ पर दोनों दृग्वृत्तों (गर्भीय सूत्र तथा भूपृष्ठीय सूत्र) का अन्तर चन्द्र-सूर्य का पूर्वापर अन्तर होता है॥२१॥

पूर्वापर तथा दक्षिणोत्तर में ये दोनों अन्तर अपमण्डल में पूर्व दिशा में तथा उसके लम्बवत दक्षिणोत्तर में क्रमशः होते हैं॥२२॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वापर में होने वाले अन्तर को लम्बन कहा है तथा दक्षिणोत्तर में होने वाले अन्तर को नति के नाम से कहते हैं॥२३॥

नति लिप्ता तुल्य भुज, दृग्लम्बन कला तुल्य कर्ण तथा इनके वर्गों के अन्तर का मूल कोटि रूप स्पष्ट लम्बन लिप्तिका होता है॥२४॥

परमलम्बन लिप्ता ४८।४६ को रविदृग्ज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से दृग्लम्बन कला प्राप्त होते हैं, और दृक्क्षेप के द्वारा इसी प्रकार नति का मान प्राप्त होता है॥२५॥

सूर्य चन्द्र की गति के अन्तर का पन्द्रहवाँ (१५) भाग परमलम्बन लिप्ता ४८।४६ होता है और गति योजन ११८ ५८।४५ का पन्द्रहवाँ (१५) वाँ भाग भूव्यासार्ध ७९०।३५ तुल्य होता है॥२६॥

जो लम्बकला प्राप्त होती है उनको सू चं. के गति अन्तर से विभक्त करने से लंबन काल घटियाँ प्राप्त होती हैं। अर्थात् $\frac{\text{लम्बनकला} \times ६०}{\text{गति अन्तर}}$ लंबन काल (घटियाँ) होती हैं। पूर्वकपाल में सूर्य से चन्द्रमा आगे रहता है तथा पश्चिम कपाल में लंबित (पीछे) रहता है॥२७॥

अतः पूर्व कपाल में लंबन काल ऋण तथा पश्चिम कपाल में धन होता है क्योंकि शीघ्रगति ग्रह यदि मन्दगति ग्रह से आगे रहता है तो इसका अर्थ है दोनों की युति हो चुंकि तथा यदि पीछे रहता है तो इसका अर्थ है कि गति अब आगे होगी॥२८॥

याम्योत्तर में जो शर है वह सूर्य चंद्र का अन्तर है और नति भी वही है अतः शर में नति का संस्कार (धन ऋण) करने से स्फुट शर प्राप्त होता है॥२९॥

अथ वलनवासनामाह—

तुलाजाद्योर्हि संपाते विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोः।
स्यातां याम्योत्तरेभिन्ने परक्रान्त्यन्तरे च ते॥३०॥
आयनं वलनं तत्र जिनांशज्यासमं ततः।
एकैवाऽयनसंधौ तु तयोः स्याद्दक्षिणोत्तरा॥३१॥
एकैव तद्वशात् प्राची तत्र नो वलनं ततः।
तदन्तरेऽनुपातेन खेटकोटिक्रमज्यका॥३२॥
जिनज्याघ्नी द्युजीवाप्तायनदिग्वलंन भवेत्।
एवमेव हि संपाते विषुवत्समवृत्तयोः॥३३॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उन्मण्डलं भवेत् तत्र विषुवद्दक्षिणोत्तरा।
क्षितिजं समवृत्तस्य पलज्या च तदन्तरम्॥३४॥
क्षितिजेऽक्षज्यया तुल्यमक्षजं वलनं ततः।
तयोरेकैव याम्योदङ्न मध्ये वलनं ततः॥३५॥
नतक्रमज्यया साध्यमन्तरे त्वनुपाततः।
नतं खाङ्काहतं भक्तं द्युदलेनाप्तभागकैः॥३६॥
क्रमज्याक्षज्यया क्षुण्णा द्युज्याभक्ताक्षजं भवेत्।
प्राक् सौम्यं पश्चिमे याम्यं तच्चापैक्यान्तरात् स्फुटम्॥३७॥
एवमेव च संपातो यः क्रान्तिसमवृत्तयोः।
परमं तत्र तत्कालवनैक्यान्तरं स्फुटम्॥३८॥
अग्रतः पृष्ठस्तस्मात् क्रान्तिवृत्ते त्रिभेऽन्तरे।
तयोर्याम्योत्तरैकत्वात् तत्र नो वलनं स्फुटम्॥३९॥
न स्पष्टवलनाभावस्तत्र स्यादुत्क्रमज्यया।
क्रमज्यया ततः कार्यं दार्ढ्यार्थं कथ्यते पुनः॥४०॥
सर्वतः क्रान्तिसूत्राणां ध्रुवे योगो भवेद्यतः।
विषुवन्मण्डलप्राच्या ध्रुवे याम्या तथोत्तरा॥४१॥
सर्वतः क्षेपसूत्राणां ध्रुवाज्जिनलवान्तरे।
योगः कदम्बसंज्ञोऽयं ज्ञेयो वलनबोधकृत्॥४२॥
तत्रापमण्डलप्राच्या याम्या सौम्या च दिक् सदा।
कदम्बभ्रमवृत्तं च बध्नीयात् परितो ध्रुवात्॥४३॥
गोले तु जिनतुल्यांशैस्तत्र ज्या क्रान्तिशिञ्जिनी।
सर्वतः समवृत्ताच्च याम्योदक्कुजसंगमे॥४४॥
तत्तिर्यग्गतसूत्राणां योगः स समसंज्ञकः।
समध्रुवकदम्बानामुपरि द्युचरान्नयेत्॥४५॥
सूत्राणि वृत्तरूपाणि वलनानि तदन्तरे।
अक्षजं वलनं मध्ये स्यात् समध्रुवसूत्रयोः॥४६॥
कदम्बध्रुवसूत्रान्तरायनं च त्रिभे ग्रहात्।
कदम्बसमसूत्रान्तः स्फुटं सर्वदिशां च तत्॥४७॥
अथवा परितः खेटात् खाङ्कभागान्तरे न्यसेत्।
त्रिज्यावृत्तं ततस्तत्र विषुवत्समवृत्तयोः॥४८॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्येऽक्षवलनं विद्याद्विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोः।
अन्तरं चायनं क्रान्तिसमवृत्तान्तरे स्फुटम्॥४९॥
तत्रापमण्डलं प्राची तस्या याम्योत्तरः शरः।
वलनानयने क्षेपः क्षिप्तो यैस्ते कुबुद्धयः॥५०॥
नक्रादिश्च कदम्बश्च स्यातां याम्योत्तरे समम्।
आयनं वलनं तस्मान्नायनादौ प्रजायते॥५१॥
ततो भ्रमति गोले स मकरादिर्यथा यथा।
तथा तथा भ्रमत्येष कदम्बो निजमण्डले॥५२॥
कुम्भादावथ मीनादौ याम्योदग्वलयस्थिते।
जायते वलनं तद्यत् सौम्यसूत्रकदम्बयोः॥५३॥
अन्तरं शिञ्जिनीरूपं कदम्बभ्रममण्डले।
अयनाद्गतकालांशक्रमक्रान्तिज्यका हि सा॥५४॥
उत्क्रमज्या यतो बाणः शिञ्जिनी तु क्रमज्यका।
सत्रिभार्कात् क्रमक्रान्तिज्यातो वलनमायनम्॥५५॥
यैरुक्तमुत्क्रमक्रान्त्या भ्रान्त्या तैर्नाशितं हि तत्।
युक्त्यानयैव विक्षेपमक्षजं च क्रमज्यया॥५६॥
परोक्तेरन्यथा ब्रूयाद्यः परान् न प्रदूषयेत्।
तस्यैव दूषणं तद्धि न दोषोऽतोऽन्यदूषणे॥५७॥
उत्क्रमज्यानिरासोऽयमन्यथा वाथ कथ्यते।
जिनांशैर्जिनवृत्ताख्यं कदम्बात् परितो न्यसेत्॥५८॥
क्रान्तियाम्योत्तरं वृत्तं कदम्बद्वयकीलयोः।
प्रोतं कृत्वा चलं न्यस्तं द्वन्द्वान्ते स्याद्ध्रुवोपरि॥५९॥
द्वन्द्वान्ताच्चाल्यतेंऽशैर्यैस्तैरेव चलति ध्रुवात्।
जिनवृत्ते तदंशानां तत्र ज्या क्रान्तिशिञ्जिनी॥६०॥
आयनं सैव वलनं द्युज्याग्रे जायते ग्रहात्।
ग्रहध्रुवान्तरे यस्माद्द्युज्याचापांशकाः सदाः॥६१॥
त्रिज्यावृत्ते यतो देयं तत्रातः परिणाम्यते।
एवमक्षांशकैर्वृत्तं समाख्यात् परितो न्यसेत्॥६२॥
समकीलकयोः प्रोतं तथा याम्योत्तरं चलम्।
तत्तत्खेटोपरि न्यस्तं यैरंशैः खार्धतो नतम्॥६३॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समवृत्तेऽक्षवृत्ते च तैरेव स्यान्नतं ध्रुवात्।
समवृत्तनतांशज्याक्षज्यापरिणताक्षजम्॥६४॥
द्युज्याग्रे वलनं प्राग्वत् त्रिज्याग्रे परिणाम्यते।
उपपत्त्यानया सम्यक् समवृत्तनतांशजम्॥६५॥
वलनं स्यात् तथा वक्ष्ये स्वाहोरात्रनतादपि।
अग्रानृतलयोर्योगः समदिक्त्वेऽन्यथान्तरम्॥६६॥
तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषपदभक्ताक्षशिञ्जिनी।
नतासुदोर्ज्यया क्षुण्णा वलनं पलजं स्फुटम्॥६७॥
नतं खाङ्काहतं भक्तं द्युदलेनाप्तभागकैः।
क्रमज्याक्षज्यया क्षुण्णा स्थलं वा द्युज्यया हृता॥६८॥
द्युज्यावृत्तापवृत्तैक्ये न्यसेद्वा रविमण्डलम्।
बिम्बाग्रे वलनं तद्यदन्तरं वृत्तयोस्तयोः॥६९॥
बिम्बान्तबिम्बमध्योत्थक्रान्तिमौर्व्योस्तदन्तरम्।
अर्कदोर्भोग्यखण्डघ्नं बिबार्धं तत्त्वदस्रहृत्॥७०॥
जिनज्याघ्नं त्रिभज्याप्तमेवं स्यादन्तरं हि तत्
बिम्बार्धहृत् त्रिभज्याघ्नमेवं त्रिज्यागतं भवेत्॥७१॥
गुणहारकबिम्बार्धत्रिज्यानाशे कृते सति।
भोग्यखण्डं जिनांशज्यागुणं तत्त्वाश्विभाजितम्॥७२॥
सत्रिभार्कात् क्रमक्रान्तेस्तत् तुल्यं जायतेऽथवा।
क्रमक्रान्तेरिदं वीक्ष्य भ्रान्तिं त्यजत बालिशाः॥७३॥
नामितं छत्रवद्बिम्बं तिर्यक् क्रान्तिस्तु सा समा।
अत्र द्युज्यानुपातो यस्तत्तिर्यक्करणाय सः॥७४॥

अब वलन वासना कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— विषुवतवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त का संपात मेषारंभ तथा तुलारंभ बिन्दुओं पर होता है तथा उनके बीच याम्योत्तर अंतर भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है तथा यह परम अंतर परम क्रांति तुल्य होता है। इन पर परम अयन वलन २४ अंश की ज्या तुल्य होता है। वहाँ एक अयन संधि तो दक्षिणोत्तर है और उसके कारण एक पूर्व दिशा में है। वहाँ पर वलन नहीं होता। उसके बाद अनुपात से ग्रह की कोटिक्रमज्या को २४ अंश (जिनांश) की ज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से वलन (दिग्वलन) ज्या होती है। इसी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकार विषुवद्वृत्त से दक्षिणोत्तर क्षितिज में समवृत्त की अक्षांश ज्या तुल्य अन्तर होता है। क्षितिज में अक्षज्या के तुल्य अक्षवलन होता है। इन दोनों, अक्षवलन तथा अयनवलन का योग याम्योत्तर मध्य (स्फुट) वलन होता है। नतक्रमज्या साधित करके उसका अनुपात करने से नत को (९०) से गुणा करके (सूर्य या चन्द्र के जिसका ग्रहण हो) दिनार्ध से विभक्त करने से नतांश ज्या होती है। नतांश क्रमज्या को अक्षक्रमज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से स्थूल अक्ष वलन ज्या होती है। पूवनत में उत्तर, पश्चिम नत में दक्षिण अक्षवलन चापों का योगान्तर करने से स्फुट अक्षवलन होता है।

इसी प्रकार क्रांतिवृत्त और समवृत्त का जहाँ संपात परम होता है वहाँ तात्कालिक वलन का योगान्तर स्फुट वलन होता है॥३८॥

उसके आगे तथा पीछे क्रांतिवृत्त में तीन राशि अन्तर पर उनका याम्योत्तर अन्तर एक ही हो जाने से वहाँ वलन स्फुट नहीं होता।

स्पष्ट वलन का वहाँ अभाव होने से वहाँ क्रमज्या, उत्क्रमज्या नहीं होती। वहाँ उन्हें ज्ञात करने के लिए पुनः कहते हैं।

क्रांतिसूत्रों से सब ओर ध्रुव को योग करने से विषुवद्मण्डल के पूर्व (सामने) से ध्रुव उत्तर व दक्षिण होते हैं।

सब ओर क्षेत्र सूत्र (सभी) ध्रुव से २४ अंश अन्तर पर योग करे तो वह बिन्दु कदम्ब संज्ञक होता है और वह वलन का बोध कराता है।

अपमण्डल के पूर्व से उत्तर व दक्षिण दिशा में कदम्ब भ्रमण वृत्त सदा ध्रुवों के चारों ओर बंधे हुए घूमते हैं। गोल में जहाँ २४ अंश के तुल्य ज्या क्रांतिज्या होती है। सब जगह पर समवृत्त से क्षितिज याम्योत्तर में मिलता है। उसके लम्बवत् सूत्र जहाँ योग करते हैं वह सम संज्ञक स्थान है। सम, ध्रुव और कदम्ब के ऊपर के अतिरिक्त अन्य स्थान पर ग्रह भ्रमण करते हें। वृत्तरूप सूत्रों के वलनों (घुमाव) के अन्तर पर अक्षवलन तथा अयनवलन के मध्य समध्रुव सूत्र होता है।

कदम्ब ध्रुव सूत्रों के अन्तर आनयन करके उससे तीन राशि दूरी पर कदम्ब-सम सूत्रान्त पर वे सभी दिशाओं में स्फुट होते हैं।

अथवा क्रांति वृत्तस्थ ग्रह के चारों ओर ९० अंश दूरी पर एक त्रिज्यावृत्त न्यास करके वहाँ विषुवद्समवृत्त के मध्य अन्तर के द्वारा अयन वलन ज्ञात करके

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विषुवद और क्रांतिवृत्त का अन्तर ज्ञात करके क्रांतिवृत्त समवृत्त का अन्तर स्फुट वलन होता है।

अपमण्डल के पूर्व में उसका याम्योत्तर शर होता है उसको वलन आनयन के लिए क्रांति में योग करने के लिए कुबुद्धि लोग कहते हैं।

मकरादि से याम्योत्तर वृत्त यदि कम्बद से होकर जावे तो विषुवद् और क्रांतिवृत्त के एक हो जाने से ऐसा होता है। वहाँ अयन वलन नहीं होता तथा वहाँ कदम्ब और ध्रुवप्रोत वृत्तों का अन्तर नहीं रहता है।

गोल अर्थात् क्रांतिवृत्त में मकर के आदि स्थान उपलक्षण द्वारा अयन संधि कही है। वह जैसे-जैसे स्वअहोरात्रवृत्त में भ्रमण करती है वैसे-वैसे पूर्व प्रतिपादित प्रकार से कदम्ब अपने मण्डल में भ्रमण करता है।

याम्योत्तर वृत्त जो ध्रुवप्रोत में स्थित कुंभादि तथा मीनादि से होकर जाता है उसमें वलन होता है क्योंकि सौम्य (उत्तर) सूत्र का कदम्ब से अंतर शिञ्जिनीरूप में कदम्ब भ्रमण मंडल में अयन से गत कालांश क्रम क्रान्तिज्या ही वलन होता है।

उत्क्रमज्या बाणरूप होती है तथा त्रिज्या क्रमज्या होती है। सत्रिम सूर्य की क्रांति क्रमज्या से वलन आयन करे।

जिन आचार्यों ने (श्रीपति तथा लल्लाचार्य आदि) जो उत्क्रमज्या से क्रांतिज्या तुल्य कहा है व भ्रम वश कहा है। उस भ्रांति के नाश के लिए ही आचार्य ने नतकाल की क्रमज्या ज्ञात करने के लिए कहा है न कि उत्क्रमज्या। और इसी युक्ति से विक्षेप तथा अक्षांश क्रमज्य से ज्ञात करने के लिए कहा है।

दूसरों के कहे हुए के विपरीत कहना दूसरे को दूषण देना नहीं है। अतः अपने ग्रंथ को शुद्ध करने के लिए दूसरों के कहे हुए के विपरीत कहना कोई दोष युक्त नहीं है यदि उसके द्वारा दूसरों को दूषित न किया जावे। लौकिक रूप से यह निन्दा पाप है। लेकिन यहाँ आचार्य ने परनिन्दा नहीं की है अतः दूसरों की बात के विपरीत कहकर कोई पाप नहीं किया है। वे कहते हैं लल्लादि ने जो उत्क्रमज्या का प्रयोग किया है वह भ्रान्तिवश किया है।

उत्क्रमज्या को हटाने के लिए आचार्य कहते हैं कि वे अन्य प्रकार से इसके लिए कहते हैं कि जिस प्रकार ध्रुव से २४ अंश की दूरी पर कदम्ब से निबद्ध एक वृत्त गोल में भ्रमण करता है उसी प्रकार कदम्ब से २४ अंश की दूरी पर चारों ओर घूमने वाले वृत्त का न्यास करे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रान्ति याम्योत्तर वृत्त दोनों कदम्बों पर कीलित होकर चलता है। यह अयन सन्धि बिन्दु पर ध्रुव के ऊपर से होकर भी जाता है। यहाँ अयन संधि मिथुनान्त बिन्दु है।

अयन संधि से पूर्वोक्त कदम्ब प्रोत वृत्त क्रांतिवृत्त में जितने अंश (न्यूनाधिक) चलता है उतने ही ध्रुवासक्त प्रदेश से कदम्ब प्रोत वृत्त चलता है। (२४°)जिन वृत्त का क्रांतिवृत्त से जितना अंतर होता है उतने अंश की ज्या क्रांतिज्या होती है।

ग्रह चिन्ह से द्युज्या (व्यासार्ध वृत्त में) के अग्र बिंदु पर अयन वलन होता है। ग्रह चिन्ह के चारों ओर द्युज्या व्यासार्ध से भ्रमण करते हुए ग्रह एवं ग्रह क्षितिज का जहाँ कटाव (मिलान) होता है उस वृत्त में कदम्ब प्रोत और जिन वृत्त के संपात का ध्रुव से अन्तर, उस प्रदेश की अर्धज्या होती है। ग्रह चिन्ह व ध्रुव के मध्य अनवरत द्युज्या के धनुतुल्या अंशो पर परमता होती है।

सत्रिभ सूर्य क्रांतिज्या से अयन वलन ज्ञात करके अर्थात् सत्रिभग्रह

क्रांतिज्या = $\frac{\text{सत्रिभ ग्रहज्या} \times \text{जिनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ होती है। यह ध्रुवप्रोत वृत्त में होती है।

इसको क्षितिज वृत्त में परिवर्तित करने पर क्षतिज में

अयन वलन ज्या = $\frac{\text{सत्रिभ ग्रह क्रांति ज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{द्युज्या}}$ अथवा

अयनवलन ज्या = $\frac{\text{सत्रिभ. ग्र.ज्या} \times \text{जिन.ज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{त्रि.द्युज्या}} = \frac{\text{खेट कोज्या} \times \text{जिनज्या}}{\text{द्युज्या}}$

इस कारण से आचार्य ने वलन को त्रिज्यावृत्त में परिणामित किया है। ग्रह क्षितिजवृत्त में सत्रिभ क्रांतिज्या रूप में द्युज्या प्रमाण सिद्ध करने से वलन त्रिज्या में परिणामित हो जाता है। कदम्बध्रुव द्वय याम्योत्तर वृत्त का ग्रह क्षितिज से संपात के अन्तरस्थ ग्रहक्षितिज प्रदोश की अर्धज्या अयनवलनज्या त्रिज्या प्रमाण से होती है। कदम्ब भ्रमवृत्त से उसकी विषुवदवृत्त की अनुरूपता के कारण पूर्वोक्त युक्ति में आर्ष आचार्यों ने स्वल्पान्तरता होने के कारण द्युज्या से अनुपात नहीं कहा है। इसके अतिरिक्त अन्य युक्ति से अक्षवलन तथा इसकी क्रमज्या ज्ञात करें जैसे कि पूर्व में कही गई है।

अक्ष वलन = $\frac{\text{सममण्डल नतज्या} \times \text{अक्षज्या}}{\text{ग्रह द्युज्या}}$

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

$$\text{द्युज्या वृत्त में अक्षज्या} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{सममण्डल में नतज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\text{अक्ष वलन ज्या} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{सम. नतज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

सम स्थान से दीवाल पर अक्षांश वृत्त और अक्षवृत्त को ३६० अंशों से अंकित कर के निबंधित करे।

जैसे कदंब प्रोत चलवृत्त है वैसे ही क्रांतिवृत्त याम्योत्तर वृत्त हैं। सम स्थान जहाँ कीलित है उससे प्रोत वृत्त चलवृत्त है यह समवृत्त याम्योत्तर वृत्त होता है। इसी प्रकार ग्रह चिन्ह के ऊपर से होकर निवेशित वृत्त समवृत्त खमध्य स्थान से लेकर जितने अंश तक नत संलग्न होता है उतने अंश या उससे न्यूनाधिक उत्तर ध्रुव स्थान से अक्षवृत्त नत संलग्न होता है और दक्षिण ध्रुव स्थान से अक्ष वृत्त उन्नत संलग्न होता है।

समवृत्त के संबंध में कहते हैं कि नतांश की ज्या उस वृत्त में त्रिज्या अनुरुद्ध (सम) अक्षज्या परिणत होती है। अक्ष से उत्पन्न वलन द्युज्या अग्र पर द्युज्यावृत्त में होती है। पूर्वोक्तानुसार सत्रिभ रवि क्रांतिज्या तुल्य अयन वलन में द्युज्या वृत्त में तथा अक्षवृत्त में अक्षज्या के परमज्या होने पर त्रिज्या से परिणत उन्नतांश ज्या अक्षवृत्त में वह नतांशज्या द्युज्या व्यासार्ध से ग्रह चिन्ह से होकर क्षितिज वृत्त से अनुरुद्ध (सम) वृत्त ध्रुव सम प्रोत अक्षवृत्त संपात से लग्न के अन्तराल अंश अर्धज्या तुल्य द्युज्या प्रमाण के होते हैं। ग्रह क्षितिज वृत्त में वहाँ के चापांश ज्ञात करने के लिए परिणामित करते हैं। ग्रह क्षितिजवृत्त में ध्रुव कदम्ब प्रोतवृत्त में ग्रह चिन्ह सक्त अन्तराल के अंशों की अर्धज्या अयन वलन क्रमज्या जिस प्रकार होती है उसी प्रकार उस वृत्त में ध्रुव समप्रोत वृत्त में ग्रह चिन्ह सक्त अंतराल के अंशों की अर्धज्या होती है। नत उत्क्रमज्या उक्त रीति से अक्षवलन अंशों की क्रमज्या सिद्ध होती है। समवृत्त नतांश ज्या पूर्वापर वृत्तस्थ नतांश से अक्षवलन उत्पन्न होना सम्यक् है। यह निर्दूषण सिद्ध है।

ग्रहण काल में सूर्य का शंकु तथा शंकुतल एवं अग्रा का साधन करे। अग्रा तथा शंकुतल एक दिशा में हो तो उनका योग और अन्यथा होने पर अन्तर पूर्व में प्रतिपादित किये अनुसार बाहु (भुज) होता है। ग्रह समवृत्त का अंतर ज्या रूप दक्षिणोत्तर बाहुतुल्य होता है तथा विषवद् वृत्त के उत्तर-दक्षिण व क्रान्तिज्या अन्तर पर द्युज्यावृत्त तथा समवृत्त को बाहुवशाद उत्तर-दक्षिण की ओर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बाहु तुल्य अंतर पर उपवृत्त कल्पित करे। इनको ३६० अंश अंकित करे। बाहु वर्ग को त्रिज्या वर्ग में से घटा कर उसका मूल उस वृत्त का द्युज्या वृत्त व्यासार्ध होता है। अब द्युज्या वृत्त तथा उपवृत्त का जो आगे-पीछे संपात है उसमें जीववत सूत्र बांध कर उसका आधा उपवृत्त में नतांश की ज्या होती है। यह अहोरात्रवृत्त नतांश की भुजज्या है।

यदि दिनार्ध में सूर्य नत करके समस्थान से सूर्यगत सूत्र सममण्डल में जहाँ लगता है वहाँ से खस्वस्तिक मध्य से जितने अंश है उतने ही अंश अक्षवृत्त में समसूत्र और ध्रुव के मध्य होता है। अक्षवलय के जितने अंश हैं उनकी जितनी ज्या है उतनी समसूत्र और ध्रुव का अन्तर होता है। क्षितिजस्थ सूर्य का क्षितिज ही सम सूत्र है। वहाँ अक्षवृत्त व समवृत्त में ९० अंश होते हैं जिससे अक्षवलय ज्या अक्षज्या तुल्य होती है। अतः सम मण्डल गत नत अंश से वलन साधित कर सकते हैं। इससे बहुत लम्बी विधि से ज्ञात होता है सरलता से नहीं होता। अतः उसको ज्ञात करने के लिए स्थूल अनुपात सरलता के लिए करते हैं कि यदि दिनार्ध तुल्य स्वअहोरात्र नत में ९० अंश तुल्य सममण्डलीय नतांश प्राप्त होते हैं तो इष्ट नतांश में कितने होंगे? फल–

नतांश क्रमज्या को अक्षज्या वृत्त में परिणामित करते हैं–

$$\text{नतांश ज्या} = \frac{९०^\circ \times \text{इष्ट नतांश}}{\text{दिनार्ध}}$$

$$\text{वलन ज्या} = \frac{\text{इष्ट नतांश क्रमज्या} \times \text{अक्षज्या वृत्त}}{\text{दिनार्ध} \times \text{त्रिज्या}};$$

अतः यहाँ पुनः अनुपात किया है कि यदि त्रिज्यावृत्त में इतनी वलनज्या तो अक्षज्या वृत्त में कितनी? प्राप्तफल वलन ज्या हुआ। यह द्युज्याग्र में प्राप्त हुई है त्रिज्याग्र में नहीं। क्योंकि यह समसूत्र ध्रुव का अन्तर है। ग्रहध्रुव के मध्य द्युज्या चापांश होते हैं। अनुपात किया कि यदि द्युज्यावृत्त में इतनी होती है तो त्रिज्या वृत्त में कितनी होगी? फल–

$$\text{स्थूल वलन ज्या} = \frac{\text{नतांश ज्या} \times \text{अक्षज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{द्युज्या} \times \text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{नतांश ज्या} \times \text{अक्षज्या}}{\text{द्युज्या}}।$$

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्युज्या व क्रांतिवृत्त संपात चिन्ह पर ग्रह (रवि) बिंब कल्पित करे। इस प्रकार उपवृत्त अहोरात्र वृत्त का ग्रह बिंब परिधि का अंतर अक्षवलन होता है, जब उपवृत्त समवृत्त के अनुरूप होता है। क्रांतिवृत्तानुरूप जब उपवृत्त होता है तब वह सूत्रान्तर स्फुट वलन होता है।

इस स्थल पर सूर्य की क्रांति में ग्रह (सूर्य) बिंबार्ध कला युक्त सूर्य की क्रांतियों का जो अन्तर है वह तात्कालिक क्रान्ति अन्तर है। इसके साधन के लिए सूर्य का तात्कालिक भुज का जो भोग्य खण्ड है उससे बिंबार्ध को गुणा करके २२५ से विभक्त करना होगा। इससे सूर्य की तात्कालिक भुजज्याओं का अन्तर प्राप्त होता है।

$$\frac{\text{स्फुट भोग्य खंड} \times \text{बिंबार्ध} \times २२५}{२२५ \times \text{त्रि}} = \text{दोर्ज्या अन्तर।}$$

$$\frac{\text{स्फुट भोग्य खंड} \times \text{बिंबार्ध}}{\text{त्रि}} = \text{दोर्ज्यान्तर}$$

क्रांन्तिंतर ज्ञात करने के लिए, यदि त्रिज्या में जिनज्या प्राप्त होती है तो दोर्ज्यांतर में कितनी?

$$\text{क्रान्त्यन्तर} = \frac{\text{जिनज्या} \times \text{दोर्ज्यान्तर}}{\text{त्रि}}$$ यह बिंबव्यासार्ध में वलन है।

यह बिंब व्यासार्ध में है इसको त्रिज्या व्यासार्ध में करने के लिए–

$$\frac{\text{जिनज्या} \times \text{दोर्ज्यान्तर} \times \text{त्रि}}{\text{त्रि.} \times \text{बिंब व्यासार्ध}} = \text{कोटि क्रम क्रांतिज्या}$$

यह त्रिज्या वृत्त में वलन है। इस प्रकार जब विषुवद्वृत्त में गह स्थित हो भूमध्य से लेकर ख स्वस्तिकस्थ बिंबमध्य तक जो सूत्र जाता है वह त्रिज्यासूत्र दण्डवत है। उसके ऊपर स्थित बिंब छत्रवत् छाया हुआ होता है। वहाँ पर त्रिज्या वृत्त में वलन दान देवे। यह भूमध्य में स्थित होकर करे। यदि मेषान्त राशि पर ग्रह स्थित हो तो उसकी क्रांति तुल्य खस्वस्तिक से उत्तर में ग्रह बिंब नत होता है। तब त्रिज्या सूत्र कर्ण है, बिंब मध्य से लम्बसूत्र ध्रुवयष्ट्यन्त तक द्युज्या है यह कोटि है, क्रांतिज्या भुज है। कुछ कर्ण रूप स्थिति दण्ड पर स्थित छत्र की है अर्थात् बिंब गत सूत्र कर्णाकार है। वहाँ वलन ज्या कर्ण रूप में होती है। क्योंकि पूर्वप्राप्त क्रांतिन्तर लम्बरूप वहाँ कोटिरूप में होती

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

है। उसका कर्ण करने के लिए अनुपात किया कि यदि द्युज्या कोटि में त्रिज्या कर्ण हो तो इतने में कितना होगा?

$$\frac{\text{कोटि अन्तर} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} \times \frac{\text{जिनज्या} \times \text{दोर्ज्यान्तर}}{\text{बिंब व्यासार्ध}} = \text{वलन ज्या}$$

$$\text{अतः वलन ज्या} = \frac{\text{जिनज्या} \times \text{दोर्ज्यान्तर} \times \text{त्रि.}}{\text{बिंब व्यासार्ध}} \text{ ॥}$$

$$\frac{\text{भोग्य खण्ड} \times \text{जिनांश ज्या}}{२२५} = \text{सत्रिभ ग्रह की क्रम क्रांतिज्या होती है।}$$

अथवा क्रम क्रांति यहाँ जो दिखती है वह बालकों की भ्रांति दूर करती है।

छत्रवद् बिम्ब के लिए जो कहा गया है वह तिर्यक (लंबरूप) क्रांति के समान कही है। उसका द्युज्या से अनुपात उसको तिर्यक करने के लिए किया है।

आचार्य ने स्वकृत वासना भाष्य में दो दृष्टांत दिये जिसके द्वारा यह सिद्ध किया है कि उत्क्रमज्या उपयोग वलन साधन के लिए जो पूर्वाचार्यों ने किया है वह क्यों सही नहीं है। यथा–

एक दृष्टांत— जिस देश में वृषभ राशि के अंत २०°।३८ तुल्य जहाँ अक्षांश होते है वहाँ वृषभ राशि के अंत में स्थित सूर्य खमध्य पर स्थित होता है। उस समय क्रांतिवृत्त ही दृग्मंडल रूप में होता है। वह उसके लिए क्षितिज होगा। वहाँ पूर्वापर अंतर क्षितिज में प्रत्यक्ष वलन दृश्य होगा। वह सिंहान्त की अग्रा तुल्य होता है। तो किस प्रकार सत्रिभ ग्रह सूर्य की उत्क्रमज्या क्रांति वलन होगी? आचार्य कहते हैं कि उनके आनयन विधि के अतिरिक्त कोई अन्य विधि नहीं है जिससे अग्रा तुल्य रूप में वलन उत्पद्य होता हो।

इसके अतिरिक्त एक और महान (बड़ा) दृष्टान्त आचार्य ने दिया है। यथा–

जिस देश में ६६ अंश अक्षांश हो वहाँ मेष राशि के आरंभ से लेकर सभी राशियाँ समान काल में क्षितिज में स्थित है अर्थात वहाँ क्रांतिवृत्त ही क्षितिज वृत्त होता है। वहाँ मेषादि, वृषभादि तथा मिथुनादि में स्थित सूर्य का परम स्फुट वलन त्रिज्या तुल्य होता है। क्योंकि क्रांतिवृत्त से पूर्वदिशा उत्तर की

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तरफ होती है तथा विक्षेप अभाव की स्थिति में सूर्यग्रहण का दक्षिण दिशा की ओर से स्पर्श होता है और चन्द्र ग्रहण में उत्तर की ओर से स्पर्श होता है। अतः उस स्थान पर उस काल पर उसकी त्रिज्या तुल्य वलन की स्थिति अन्यथा प्रकार से उपपत्त्य होने से क्रमज्या प्रकार से वलन (आचार्योक्त प्रकार से) आनयन समीचीन है।

जिस देश में अक्षज्या ३१४० है वहाँ मेषादि गत सूर्य की द्युज्या ३४३८, चरज्या उसु शून्य ०। क्षितिजस्थ सूर्य की नतघटियाँ १५ अयन वलन का चापांश २४°, अक्षवलन चापांश ६६°, तो स्फुट वलन का चापांश ६६+२४=९०°

वृषादि गतसूर्य की द्युज्या ३३६६, चरज्या असु १६७०, नतघटि १९।३८ अयन वलन का चापांश २१।४, अक्ष वलन चापांश ६८।५६, तो स्फुट वलन का चापांश ९०° (=६८।५६+२१।४)।

मिथुनादि रवि की द्युज्या ३२१८, चरासु ३४६५, नतघटि २४।३७, अयन वलन चाप के अंश १२।३२, अक्षवलनांश ७७।२८ तो स्फुट वलन ७७।२८+१२।३२ = ९० इसी प्रकार सर्वत्र होता है।

विशेष— आचार्य ने जो दो प्रकार के वलन के संबंध में कहा वे दोनों प्रकार के वलन पूर्वाचार्यों ने भी कहे थे। सिर्फ अन्तर यह था कि उन्होंने वलन ज्ञात करने के सूत्र में क्रमज्या के स्थान पर उत्क्रमज्या को प्रयुक्त किया। क्या सभी आचार्यों को जो भास्कराचार्य ने स्थितियाँ बताई हैं का बोध नहीं था? ऐसा हो नहीं सकता। लेकिन कमी यही रही कि उन्होंने सूत्र को पूर्ण रूप से परिभाषित नहीं किया।

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के अध्याय ५ में इस संबंध में कहा है।

"मध्यतिथ्यन्तरासूनामुत्क्रमज्याक्षसङ्गुणा।
विष्कम्भार्धेन भक्तव्या लब्धकाष्ठस्य दिग्विधि॥४२॥
व्यासार्धादधिकासूनां क्रमज्यां त्रिज्यया युताम्।
कृत्वैवमेव दिक्कल्प्या मध्ये प्राग्ग्रासवद्दिशा॥४३॥
उदग्दक्षिणतः प्राह्णे बिम्बप्राक्पश्चिमार्धयोः।
नभसः पश्चिमे व्यस्तमक्षस्य वलनं सदा॥४४॥"

यहाँ आचार्य ने अक्षवलन का निम्नलिखित सूत्र दिया है—

अक्षवलनज्या = उत्क्रमज्या (घटीकोण) × अक्षांशज्या

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यह सूत्र तर्क द्वारा निर्णय के अनुमानों पर आधारित था।

आचार्य ने अयन वलन के लिए भी इसी प्रकार अध्याय ५ चंद्र ग्रहणाधिकार में कहा है—

"त्रिराशिसहितेन्द्रर्कविपरीतगुणापमः।
अयनाद्विक्तु पूर्वार्ध बिम्बस्यैवापरेऽन्यथा॥४५॥
नानाशयोस्तयोर्विद्धि विश्लेषः धनुषों सदा।
संयोगोऽन्यत्र तज्जीवा सम्पर्कार्धहता हृता॥४६॥
विष्कम्भार्धेन यल्लब्धमाशासाम्ये युतं नतौ।
विश्लेषो व्यत्यये कार्यो वलनं यत्र शिष्यते॥४७॥"

आचार्य ने यहाँ अयन वलन को श्लोक ४५ में कहा है।

अयनवलनज्या = ज्या ε × उत्क्रमज्या (ग्रह के सायन अक्षांश+९०)

यहाँ ε क्रांतिवृत्त तथा नाडीवृत्त का परस्पर झुकाव कोण है। यह सूत्र भी पूर्व सूत्र की भाँति ही तर्क द्वारा निर्णयों के अनुमानों पर आधारित है।

आचार्य ने श्लोक ४६ व ४७ में स्पष्ट वलन का मान तथा दिशा ज्ञात करने का नियम बताया है।

सिद्धान्त शेखर में भी अक्षवलन तथा अयन वलन के यही सूत्र कहे हैं।

ब्रह्मगुप्ताचार्य ने ब्र.स्फु.सि. के अध्याय ४ में इस सूत्र को सही किया है। इसी ग्रंथ के पूर्वखण्ड गणिताध्याय के चंद्र ग्रहणाधिकार में इस सब विषय की विस्तार से व्याख्या की गई है। कृपया वहाँ देखें।

चन्द्रग्रहणाधिकार जो गणिताध्याय में कहा है उसमें वलन के सम्बन्ध में जो कहा है उसकी उपपत्ति स्वरूप यह अध्याय आचार्य ने कहा है।

ऊपर जो कहा गया है उसको सरल तथा सूक्ष्म रूप में यहाँ पुनः समझाते हैं—

अयन तथा अक्षांश (रवि तथा चन्द्र का) के कारण रवि और चन्द्र ग्रहण में वलन (संस्कार) कला प्रभावों के कारण आकाश के पूर्व पश्चिम कपाल में ग्रहण के स्पर्श, मध्य और मौक्ष की दिशा का ज्ञान होता है। जिस दिशा में पूर्व कपाल या पश्चिम कपाल में ग्रहण होता है उसी दिशा में यह वलन होता है। सूर्य तथा चन्द्र, सूर्य ग्रहण में समान होने के कारण केवल चन्द्रमा द्वारा दोनों ग्रहों का आयन वलन निकाला जा सकता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्र दिनार्ध से नत और सूर्यग्रहण में सूर्य दिनार्ध से नत निकाल कर उसकी पल बना लेवें। उसको

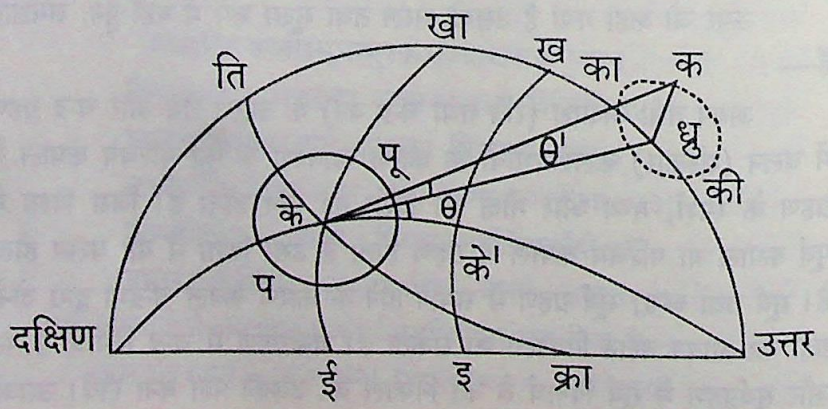
CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९० से गुणा करके अपने दिनार्ध पल से भाग देने पर अंशादि फल प्राप्त होता है। यह पूर्व-पश्चिम दिनार्ध के अनुसार उसी दिशा में नत होता है। नत को अपने देश के अक्षांश से गुणा करके ९० से भाग देकर जो प्राप्त होगा वह पूर्वनत में उत्तर और पश्चिम नत में दक्षिण वलन होता है। अक्षवलन तथा अयन वलन की एक ही दिशा होने पर दोनों का योग तथा भिन्न दिशा होने पर अन्तर किया जाता है। प्राप्तफल चन्द्रग्रहण में चन्द्र का और सूर्यग्रहण में सूर्य का अंशादि दिग्वलन होता है। यह स्पष्ट वलन प्राप्त होता है। स्पर्श, मोक्ष आदि किस दिशा में किस प्रकार होगा इससे यह ज्ञात होता है।

स्पष्ट वलन, ग्रसितग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम बिन्दु का क्रान्तिवृत्त से कोण होता है वह होता है। इस कोण के दो भाग होते हैं। स्व स्थान के अक्षांश के कारण अर्थात विषुवत वृत्त से दूरी के कारण क्रांति वृत्त, क्षितिज को पूर्व कपाल में पूर्व बिन्दु से उत्तर की दिशा में काटता है। अतः क्रांतिवृत्त ग्रहगोल के पूर्व बिन्दु से पूर्वकपाल में उत्तर की ओर है तथा पश्चिम कपाल में दक्षिण की ओर है। यह अक्ष वलन कहलाता है।

क्रांतिवृत्त तथा विषुवत वृत्त के मध्य कोण के कारण (अयन उत्पत्ति) क्रांतिवृत्त जब सायन मकर याम्योत्तर पर होता है तब उत्तर की ओर और भी अधिक झुका होता है। जब सायन कर्क याम्योत्तर वृत्त पर ($\pm$९०°) होता है तब यह पूर्व कपाल में दक्षिण की ओर खिसक जाता है। पश्चिम कपाल के लिए दिशायें विपरित होती है। वलन का यह भाग अयन वलन कहलाता है।

अब अयन वलन तथा अक्ष वलन को चित्र के द्वारा ओर स्पष्ट करते हैं।—



CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चित्र में उ ध्रु ख ति द इष्ट स्थान पर याम्योत्तर वृत्त है।

उ इ द क्षितिज का पूर्व अर्ध भाग है।

ख = खस्वस्तिक है।

ख इ = सममण्डल है (इ = पूर्व दिशा है) तथा खा ई इसके समानान्तर है।

पू तथा प = ग्रह गोल की पूर्व तथा पश्चिम बिन्दु हैं, क्रमशः।

के = (ग्रहण) द्राद्य ग्रह का केन्द्र हैं।

उ के द = समप्रोत वृत्त ग्रह बिम्ब केन्द्र 'के' का है।

क = उत्तर कदम्ब बिंदु

क का की = वह कदम्ब वृत्त है जिस पर प्रतिदिन कदम्ब क उत्तरी ध्रुव ध्रु के चारों ओर भ्रमण करता है।

ख क' = नत अंश (घटीसमयमें) के का है।

की = कदम्ब है जब सायन कर्क ति बिन्दु (याम्योत्तर वृत्त में) है।

का = कदम्ब है जब सायन मकर क्रा पर है।

के ध्रु = ग्रह गोल की ध्रुव से दूरी।

के क = ग्रह गोल की कदम्ब से दूरी।

$\angle$ उ के ध्रु = θ = अक्ष वलन

$\angle$ क के ध्रु = θ = अयन वलन

$\angle$ उ के क = $\theta+\theta'$ = स्फुट वलन = $\angle$ क्रा के ई

चित्र में कदम्ब 'क', 'की' + ९०° तथा −९०° दूरी के बीच स्थिति होने पर अयन वलन θ' भी उत्तर की दिशा में है। अतः स्फुट वलन $\theta+\theta'$ होता है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। इसी प्रकार 'क', 'की' + ९०° और −९०° के बीच स्थित होने पर θ' दक्षिण दिशा में होगा अतः स्फुट वलन $\theta-\theta'$ होगा। जब ग्रह पश्चिम कपाल में होगा तब इन वलन की दिशा विपरीत होगी।

गोलीय त्रिभुज उ के ध्रु में—

$$\frac{\text{ज्या उ के ध्रु}}{\text{ज्या उ ध्रु}} = \frac{\text{ज्या के उ ध्रु}}{\text{ज्या के ध्रु}} = \frac{\text{ज्या ख के'}}{\text{ज्या (ध्रुव से दूरी)}}$$

क्योंकि उ ख तथा उ के' दोनों ९० अंश हैं। अतः इन दोनों के मध्य कोण ख के' है। यह ग्रह का नतांश है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतः ज्या (ध्रुव से दूरी) = कोज्या क्रांति (ग्रह)

= द्युज्या अथवा अहोरात्र वृत्त की त्रिज्या।

ज्या उ ध्रु = ज्या अक्षांश ; यहाँ अक्षांश ग्रह के हैं।

$$\text{ज्या उ के ध्रु} = \frac{\text{ज्या ग्रह अक्षांश} \times \text{ज्या नतकाल}}{\text{द्युज्या}}$$

ये समीकरण सूर्य सिद्धान्त तथा भास्कराचार्य दोनों ने ही दिया है।

उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव से जानने वाले महद वृत्त पर क्रान्ति वृत्त का केन्द्र 'कदम्ब' बिन्दु उत्तरी ध्रुव से २३°३०' दक्षिण की ओर स्थित होता है। यह क्रान्तिवृत्त का इसी प्रकार दक्षिण क्षेत्र बिन्दु 'कलम्ब' होता है। यह दक्षिण ध्रुव से उत्तर की ओर २३°३०' कोण पर होता है। कदम्ब प्रोत वृत्त पर ग्रह का शर ज्ञात किया जाता है। इस पर यह की क्रांति वृत्त से दूरी होती है।

चन्द्रमा क्योंकि सभी ग्रहों से तीव्रतम गति से भ्रमण करता है। अतः इसकी अयन प्रोत वृत्त तथा कदंब प्रोत वृत्त पर स्थिति का अन्तर लेते हैं। चन्द्रमा का ध्रुव प्रोत वृत्त पर ध्रुव से दूरी तथा कदम्ब प्रोत वृत्त पर कदम्ब से दूरी ज्ञात की जाती है तथा उनके अन्तर (कोणीय) को ३६० से गुणा करके चन्द्रमा के (कोणीय) गोल की परिधि से विभक्त करते हैं। इस प्रकार प्राप्त फल अयन वलन होता है। जब चन्द्रमा उत्तर अयन में होता है तब यह उत्तर वलन होता है तथा जब दक्षिण गोल में होता है जब दक्षिण वलन होता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के ग्रहवासनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथोदयास्तवासना

तत्रादावुदयेऽस्ते च दृक्कर्मकारणमाह—

क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानचिह्नं यदा स्यात् कुजे नो तदा खेचरोऽयं यतः।
स्वेषुणोत्क्षिप्यते नाम्यते वा कुजात् तेन दृक्कर्म खेटोदयास्ते कृतम्॥१॥
नैव बाणः कुजेऽसौ कदम्बोन्मुखस्तत्समुत्क्षेपणं नामनं च द्विधा।
आयनं चाक्षजं तेन कर्मद्वयं तत्प्रपश्चः पुनः संविविच्योच्यते॥२॥

ग्रह का उदय अस्त तथा उसके दृक्कर्म का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिवृत्त में ग्रह बिंबोपरिगत कदम्ब प्रोत वृत्त जहाँ क्रांतिवृत्त को काटता है वह क्रांतिवृत्त पर ग्रह का स्थान चिन्ह होता है। उस स्थान चिन्ह के क्षितिज में उदय होते समय वह वास्तविक ग्रह उदित नहीं होता अर्थात् वह उस समय क्षितिज में स्थित नहीं होता है वह या तो क्षितिज के नीचे अथवा ऊपर होता है। ग्रह अपने शराग्र में कदम्बवृत्ताभिमुख रहता है अतः ग्रहस्थान के उदय शर से पहले या पश्चात अयन और अक्ष वलन संस्कारों से संस्कृत ग्रह के स्थान गत राश्यादि जनित काल के पहले अथवा पश्चात् में ग्रह बिम्ब क्षितिज में उदय होता है।

ग्रह स्थान चिन्ह से ग्रह बिम्बकेन्द्र तक ग्रह का मध्यम शर है। स्थान चिन्ह ऊपरीगत तथा बिम्बोपरीगत ध्रुव प्रोत्त वृत्त करे। स्थानीय अहोरात्र वृत्त और बिम्बीय अहोरात्र वृत्त बनावे। तब स्थानोपरिगत ध्रुवप्रोत्त वृत्त और स्थानोपरिगत कदम्बप्रोत वृत्त के अन्तर्गत बिंबोपरिगत ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर्गत नाडीवृत्तीय चाप अयन दृक्कर्म असु है। स्थानगत कदम्ब प्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त से उत्पन्न कोण स्थानीय अयनवलन है। द्युज्याग्रीय अयनवलन सत्रिभग्रह की क्रांति के बराबर होता है।

अतः यहाँ पर पुनः ग्रह स्थानीय राश्यादि बिंदु में अयन तथा अक्ष दृक्कर्म संस्कार करना आवश्यक हो जाता है।

अथ तत्कर्माह—

क्षितिजे वलने ये स्तस्तद्वशादिषुणा ग्रहः।
याम्येन नाम्यते क्ष्माजात् सौम्येनोन्नाम्यते तथा॥३॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तद्व्यस्तं वलने याम्ये व्यस्तं प्रत्यक्कुजेऽप्यतः।
आयनं त्रिज्यया चेत् स्यादस्पष्टेन शरेण किम्॥४॥
लम्बज्ययाक्षजं चेत् स्याद्वलनं किं स्फुटेषुणा।
इति त्रैराशिकाल्लब्धे त्रिज्याघ्ने द्युज्ययोद्धृते॥५॥
तच्चापैक्यान्तरप्राणैः कुजात् खेटो नतोन्नतः।
तैः प्राणैर्यत् क्रमाल्लग्नं नतात् खेटात् प्रजायते॥६॥
उत्क्रमेणोन्नताद्यच्च तद्ग्रहोदयलग्नकम्।
उक्तव्यत्ययतः प्रत्यगस्तलग्नं सषड्ग्रहात्॥७॥
शरे महति भानां तु चरार्धं मध्यमापमात्।
शरस्फुटात् तथा कृत्वा तच्चापैक्यान्तरासुभिः॥८॥
विभिन्नैकदिशोर्विद्यादक्षजेन नतोन्नतम्।
आयनाक्षजयोर्योगवियोगाल्लग्नमुक्तवत्॥९॥

उपरोक्त कर्मों को करना—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह क्षितिज में पूर्व में साधित अक्ष तथा अयन वलन संस्कृत स्पष्ट वलन काल से अन्तरित समय में यदि दक्षिण शर है तो शराग्र में स्थित ग्रह नमित अर्थात् नीचे झुका हुआ दिखता है तथा उत्तर शर है तो शराग्र में स्थित ग्रह बिंब ऊपर उठा हुआ दृश्य होता है। इसके विपरीत, दक्षिण वलन में पश्चिम क्षितिज में ग्रह स्थान के पूर्व और पश्चिम में ग्रह बिंब दर्शन होता है। त्रिज्या तुल्यवृत्त में अयन वलनज्या इतनी होती है तो स्पष्ट शर में कितनी होगी? यह अनुपात करने से—

$$\text{अयन वलन} = \frac{\text{स्पष्ट शर} \times \text{अयन वलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

इसी प्रकार लंबज्या में अक्षवलन इतना होता है तो स्फुट शर में कितना होगा?

$$\text{अक्ष वलन} = \frac{\text{अक्ष वलन} \times \text{स्पष्ट शर}}{\text{ज्या लंब}}$$

द्युज्या वृत्त में इतना अयन वलन होता है तो त्रिज्यावृत्त में कितना?

$$\text{त्रिज्यावृत्तीय अयन वलन} = \frac{\text{अयन वलन} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथा त्रि.वृत्त में–

$$\text{अक्ष वलन} = \frac{\text{अक्ष वलन} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

इन दोनों संस्कारों के संस्कार से स्फुट वलन (काल) होता है। ग्रह बिंब इतने संस्कार युक्त काल से ग्रहक्षितिज से नत अथवा उन्नत दिखता है। स्पष्ट वलन असु से नत ग्रह से जो क्रम लग्न तथा उन्नत ग्रह से जो उत्क्रम लग्न होता है वही ग्रहोदय लग्न होता है। यहाँ इष्टकाल स्पष्ट वलनासु के तुल्य होता है। इससे विपरीत सूर्य में छः राशि जोड़ने से प्राप्त लग्न ग्रह का अस्त लग्न है।

शर यदि अधिक हो तो मध्यम क्रांति व चरार्ध से स्फुट शर ज्ञात करके उसके चाप से योगान्तर करे। इस प्रकार साधित अयनांश और वलन असुओं से ग्रह स्थान से ग्रह बिंब को नत उन्नत जान कर अयन व अक्षवलन के योगान्तर संस्कृत काल में उक्त कथित प्रकार से लग्न साधन करके ग्रह बिंब के दर्शन का काल ज्ञात करे।

अथ शरस्य स्पष्टीकरणमाह—

सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नस्त्रिज्योद्धृतः शरः।
स्फुटोऽसौ क्रान्तिसंस्कारे दृक्कर्मण्यक्षजे तथा॥१०॥

शर के स्पष्टीकरण को कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— विशुवदवृत्त से स्पष्ट क्रांति ध्रुवाभिमुख होती है। क्रांतिग्र पर शर कदम्बाभिमुख होता है। अतः इनके संस्कार करने के लिए क्रांतिग्र पर जो द्युज्यावृत्त है उसके और शराग्र का जो ऋजु अन्तर है उससे संस्कृत करने से स्फुट होता है। अर्थात् शर और मध्यम क्रांति एक वृत्ती धरातल में नहीं होते। अतः उसका अन्तर कोटिरूप में है। शर कर्ण रूप है। इनके वर्गान्तर का मूल द्युज्यावृत्त में भुज है। इस प्रकार तीन राशि युक्त ग्रह क्रांति ध्रुव कदम्ब के सूत्रों का अन्तर होता है। इसकी ज्या भुज है। इसकी द्युज्या कोटि है तथा त्रिज्या कर्ण है। अतः यदि त्रिज्या में इतनी कोटि होती है तो शर में कितनी होगी?

$$\frac{\text{कोटि} \times \text{शर}}{\text{त्रिज्या}}$$

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतः कोटि रूप शर की ध्रुवोन्मुख ज्या से अक्षकर्म तथा दृक्क करते हैं।

अथ ब्रह्मगुप्तादिभिः किं स्पष्टो नोक्त इत्याशङ्क्याह—

ब्रह्मगुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्न कृतः स्फुटः।
स्थित्यर्धपरिलेखादौ गणितागत एव हि॥११॥
नक्षत्राणां स्फुटा एव स्थिरत्वात् पठिताः शराः।
दृक्कर्मणाऽयनेनैषा संस्कृताश्च तथा ध्रुवाः॥१२॥

ब्रह्म गुप्तादि ने स्फुट शर आनयन क्यों नहीं कहा? शंका—

सूर्य-प्रभा टीका— ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने मध्यम तथा स्फुट शर में स्वल्पान्तर होने के कारण शर को स्फुट नहीं किया। ग्रहण में स्थित्यर्ध परिलेखनादी अर्थात् स्पर्श मोक्ष आदि की स्थिति में भी गणितागत मध्यम शर (कदम्बाभिमुख शर) को ही स्वीकार किया है और नक्षत्रों की स्थिरता के कारण उनका भी ध्रुवप्रोतीय शर ब्रह्मगुप्त ने स्फुट शर कहा है और अयन दृक्कर्म में भी इसी का संस्कार करके ध्रुवाँक कहे हैं।

अथ सदूषणानुपहसन्नाह—

क्रान्तिसूत्रे शरं केचिन्मन्यते ते कुबुद्धयः।
यद्येवमायनं तैश्च दृक्कर्मान्यैश्च किं कृतम्॥१३॥
किं स्पष्टे वालने सूत्रे दत्तो मध्यशरश्च तैः।
कोटिविद्वालनात् सूत्रात् स्पर्शमुक्तिशरौ च किम्॥१४॥
किंच कृत्वा शरं कोटिं स्थित्यर्धानयनं कृतम्।
तादृक् चेत् स शरस्तेन नानुपातेन सिध्यति॥१५॥

दूषण सहित उस पर विचार—

सूर्य-प्रभा टीका— कुछ आचार्य शर को क्रांतिसूत्र में अर्थात् ध्रुवाभिमुख मानते हैं। उनकी कुबुद्धि है। यदि ऐसा है तो अयन दृक्कर्म का दृश्य ग्रह साधन में गणित क्यों करते हैं। उसकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये क्योंकि ध्रुवाभिमुख शर होने पर शराग्र स्थित ग्रह तब क्षितिज से नमित अथवा उन्नत ही होगा। परिलेख में बिंब केन्द्र से स्पष्ट वलनाग्र के ऊपरीगत सूत्र क्रांतिवृत्त प्राची है। तब उसमें कोटि रूप में शर का क्यों दान किया जाता है? यह शर दान ध्रुव सूत्र में ही करना चाहिये। ऐसी स्थिति में शर को स्थित्यर्ध आनयन

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जो किया जाता है तब स्पर्श मोक्ष आदि की स्थिति अनुपात से सिद्ध नहीं होती।

निरक्ष देश में ध्रुव क्षितिज में स्थित होता है। ध्रुवाभिमुख शराग्र स्थित ग्रह क्षितिज का त्याग नहीं करता। अतः वह क्षितिज से नमित अथवा उन्नत नहीं होता अतः तब अयन दृक्कर्म की आवश्यकता नहीं रहती यदि शर की कल्पना ध्रुवाभिमुख की जावे।

अथोत्क्रमज्यानिवृत्तिमाह—

दृष्टिकर्म वलनं च केनचिद्भ्रान्तितः कथितमुत्क्रमज्यया।
तत् कृतं तदनुगैस्ततोऽपरैरन्धपूरुषपरंपरोपमैः ॥१६॥
ब्रह्मगुप्तकृतिरत्र सुन्दरी सान्यथा तदनुगैर्विचार्यते।
नोद्धता कृतिरथोद्धतास्तु वा मामिका सुगणका विचार्यताम्॥१७॥

अब उत्क्रमज्या से निवृत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ब्रह्मगुप्त का कथन अतिसुन्दर होते हुए भी अन्य आचार्यों (चतुर्वेदाचार्यादि) ने अन्यथा कहा है। दृक्कर्म तथा वलन का साधन कुछ आचार्यों ने भ्रांति से उत्क्रमज्या के द्वारा किया है (जैसे लल्लाचार्य आदि) तथा उन्हें देख कर अन्य आचार्यों ने भी ऐसा ही करके उसी अन्ध परम्परा को आगे बढ़ाया है उसके दोष को नहीं देखा। आचार्य कहते हैं कि हे गणक लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया है। मैंने जो क्रमज्या द्वारा ब्रह्मगुप्त की भांति जो वलन दृक्कर्म किया है उसको सुगणक विचार करके स्वीकार करेंगे ऐसा आचार्य का विश्वास है।

विशेष— गणिताध्याय में इस संबंधि में काफी कुछ विशेष व्याख्या में कह दिया गया है। कृपया वहाँ इसका अवलोकन करें।

अथ व्यभिचारमाह—

उत्क्रमज्याविधानेन दृक्कर्म वलनं तथा।
यत् तैरुक्तं न तत् तथ्यं व्यभिचारोऽत्र कथ्यते॥१८॥
जिनाल्पकाक्षांशगुणत्रिभज्याघातो जिनज्याविहृतोऽस्य चापम्।
तेन त्रिभोनेन समः प्रतीच्यां प्राक् सत्रिभेण द्युचरः कुजे चेत्॥१९॥
दृङ्मण्डलाकारतयापवृत्तं तद्याम्यसौम्यं क्षितिजं तदा स्यात्।
क्षिप्तोऽपि खेटः परमेषुणात्र याम्योत्तरत्वात् क्षितिजं न जह्यात्॥२०॥
दृक्कर्मसंभूतफलद्वयस्य नाशो भवेदत्र धनर्णसाम्यात्।
नैवोत्क्रमज्याविधिनाऽत्र साम्यं दृक्कर्म कार्यं क्रमजीवयातः॥२१॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तथैव नाशो वलनद्वयस्य साम्याद्दिगन्यत्ववियोजनेन।
न साम्यमत्रोत्क्रमजीवया स्यात् क्रमज्ययातो वलनं विधेयम्॥२२॥

उत्क्रमज्या के प्रयोग से व्यभिचार—

सूर्य-प्रभा टीका— उत्क्रमज्या का उपयोग करके जो दृक्कर्म वलन साधन कहा गया है वह तथ्यों के अनुरूप नहीं है अतः उनके व्यभिचार को आचार्य कह रहे हैं। चौबीस अंश से अल्प अक्षांश वाले प्रदेशों में अक्षज्या तथा त्रिज्या के गुणा में जिनांश ज्या का भाग देने से प्राप्तफल का जो चाप होता है उतने भुज की क्रांतिज्या उत्तर अक्षांश की ज्या के तुल्य होती है। आचार्य उदाहरण देकर बताते हैं कि जैसे २०।३८ अंश अक्षांश की ज्या १२१० होती है। इसको त्रिज्या से गुणा करके २४ अंश की ज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप दो राशि होता है। इसका सत्रिभ तुल्य ग्रह पांच राशि पूर्व क्षितिज में होता है तथा वित्रिभ तुल्य मीन राशि तुल्य पश्चिम क्षितिज में ग्रह रहता है। ऐसा तब होगा जब वृषभान्त राशि ख स्वस्तिक में होगी। तब क्रांतिमंडल दृग्मण्डलाकार हो जाता है और क्रान्तिवृत्त के प्रदेश का क्षितिजवृत्त (क्षितिज) उसके लम्बरूप दक्षिणोत्तर वृत्त ही होता है। जिससे कदम्ब बिंदु भी क्षितिज में ही होता है। अतः क्षितिजस्थ ग्रह का परम शर कदम्बाभिमुख से विक्षिप्त होने पर भी क्षितिज का त्याग नहीं करेगा, क्षितिज में ही रहेगा।

क्रांतिवृत्त में ग्रह स्थान तथा उदयलग्न यहाँ तब लग्न होता है। यह दृक्कर्म फल की धनऋण साम्यता होने पर ही होगा। उत्क्रमज्या विधि से यह साम्यता नहीं हो सकती। अतः क्रमज्या से करने से यह संभव हो जाता है। वलनों की भिन्न दिशा में साम्यता होने से वर्तमान सूर्य के वलन का भी अभाव होता है। उत्क्रमज्या के उपयोग से साम्यता नहीं होती।

अथ तन्मतिभ्रमे कारणमाह—

गर्वाद्रसराभस्यात् परविश्वासात् प्रमादतश्चापि।
मुह्यन्त्यपि मतिमन्तः किं मन्दोऽन्यैस्तथा चोक्तम्॥२३॥
गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य।
रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च॥२४॥

उक्तमतिभ्रम होने का कारण कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— गुरु मुख के द्वारा ठीक प्रकार से मन लगाकर अध्ययन न करने से विषय समझ में नहीं आते हुए भी विषय के ज्ञान के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिथ्यागर्व से, रस के अतिशय लाभ से, दूसरों के विश्वास से अथवा अति प्रमाद से बुद्धिमान छात्र भी अशुद्ध सिद्धान्त को शुद्ध मान लेता है तो मंदबुद्धि छात्र की तो बात ही क्या है?

कुत्सित काव्य के रचने वाले मंदबुद्धि कुकवि (गणक) व्याकरण शुद्ध शब्द के महत्व को नहीं जानने से काव्य रचना करके उससे संतोष तो अनुभव करते हैं लेकिन उस अभाव के कारण दूसरे आचार्यों द्वारा कहे गये अर्थपूर्ण शब्दों को भी नहीं जान पाते हें। जैसे वैश्याओं से सेवित रसिक होने के कारण मिथ्या अभिमान के कारण, सज्जन लोगों द्वारा की गई उसकी निंदा का भी वह ध्यान नहीं रखता, उसकी उपेक्षा ही करता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के उदयास्तवासना अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ शृङ्गोन्नतिवासना

तत्र शुक्लत्वे कृष्णत्वे च कारणमाह—

तरणिकिरणसङ्गादेष पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति।
तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः ॥१॥
सूर्यादधः स्थस्य विधोरधःस्थमर्धं नृदृश्यं सकलासितं स्यात्।
दर्शेऽथ भार्धान्तरितस्य शुक्लं तत् पौर्णमास्यां परिवर्तनेन ॥२॥
कक्षाचतुर्थे तरणेर्हि चन्द्रकर्णान्तरे तिर्यगिनो यतोऽब्जात्।
पादोनषट्काष्ट $\frac{८५}{४५}$ लवान्तरेऽतो दलं नृदृश्यस्य दलस्य शुक्लम् ॥३॥
उपचितिमुपयाति शौक्ल्यमिन्दोस्त्यजत इनं व्रजतश्च मेचकत्वम्।
जलमयजलजस्य गोलकत्वात् प्रभवति तीक्ष्णविषाणरूपतास्य ॥४॥
यद्याम्योदक् तपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहुः।
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यच्च तिर्यक् स कर्णः।
दोर्मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्चकोटिस्तदग्रे
चन्द्रः कर्णो रविदिगनया दीयते तेन शौक्ल्यम् ॥५॥

चन्द्रमा में शुक्लत्व तथा कृष्णत्व होने का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य की किरणों के संयोग से धवलकान्ति अमृतमय चन्द्रमा का सूर्य की तरफ का भाग चन्द्र की चान्दनी से जगमगाता है। उसके (चंद्र) इससे विपरीत दिशा में रमणीय रमणी के शिर के श्याम वर्ण के केशों की श्यामलता की भांति अथवा सूर्याभिमुख घट के विपरीत दिशा में स्वयं की छाया की श्यामलता के सदृश्य चन्द्रमा श्याम रंग का दिखाई देता है। यहाँ रमणी के शिर की छाया को श्यामलता भी कही है। सूर्य के नीचे (कक्षा में) स्थित चन्द्रमा का आधा भाग मनुष्यों को अदृश्य होता है क्योंकि वहाँ (पूर्वोक्त प्रकार से) अंधेरा रहता है और चन्द्रमा का आधा भाग ही दृश्य होता है जो पूर्णिमा से परिवर्तित होने लगता है। सूर्य से जब चन्द्रमा अपनी कक्षा के चतुर्थ भाग तुल्य स्थान पर चन्द्र कर्णान्तर दूरी पर होता है तब सूर्य से लम्बवत होता है उस समय चं. गोल के आधे भाग का आधा भाग अर्थात् दृश्य चतुर्थांश भाग (८५।४५ भाग) मनुष्यों को शुक्ल दिखाई देता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जलज होने से जलमय चंद्रमा के बिंब की सूर्य के सामने होकर दूर आगे जाते हुए सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से शुक्लता तथा समीप जाते हुए कृष्णता में वृद्धि होती है।

सूर्य तथा चन्द्रमा का याम्योत्तर अन्तर यहाँ बाहु है, उनका ऊर्ध्वाधर अन्तर कोटि है इनका जो तिर्यक अन्तर है वह कर्ण है। भुज के मूल में सूर्य चन्द्र दिशा में भुजाग्र और कोटि के अग्रभाग (तक) के कर्ण मार्ग से शुक्लता देता है।

यहाँ ध्यान देवें यही बातें आचार्य ने पूर्व में गणिताध्याय में कही है। वहाँ भी ऐसी ही व्याख्या की गई है। कृपया वहाँ पर भी अवलोकन करें।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १० में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"धाम्ना धामनिधेरयं जलमयो धत्ते सुधा दीधितिः
सद्यः कृत्तमृणालकन्दविशदच्छायां विवस्वद्दिशि।
हर्म्ये धर्मघृणेः करैर्घट इवान्यस्मिन् विभागे पुन-
र्बालाकुन्तलकालतां कलयति स्वेच्छां तनोश्छायया॥२॥
अर्धबिम्बसदृशे सिते विधोः खण्डिते वपुषि चार्धजीवया।
रूपमुद्वहति लोललोचना भालपट्टभवमेणलाञ्छनः॥२६॥"

अथाध्य योपसंहारश्लोकमाह—

ईषदीषदिह मध्यगमादौ ग्रन्थगौरवभयेन मयोक्ता।
वासना मतिमता सकलोह्या गोलबोध इदमेव फलं हि॥६॥

अध्याय के उपसंहार श्लोक कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यमाधिकार से आरंभ करके सभी अधिकारों की ग्रंथ की विस्तृत्ता के भय से आचार्य कहते हैं मैंने अपनी बुद्धि से वासना अर्थात् उपपत्ति कही है। सभी गोलविदों को इन सभी विषयों की व्याख्या करते रहना चाहिये। गोल ज्ञान का यही फल है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के शृङ्गोन्नतिवासना अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ यन्त्राध्यायः

अथ यन्त्राध्यायो व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह—

दिनगतकालावयवा ज्ञातुमशक्या यतो विना यन्त्रैः।
वक्ष्ये यन्त्राणि ततः स्फुटानि संक्षेपतः कतिचित्॥१॥
गोलो नाडीवलयं यष्टिः शङ्कुर्घटी चक्रम्।
चापं तुर्यं फलकं धीरेकं पारमार्थिकं यन्त्रम्॥२॥

अब यन्त्राध्याय की व्याख्या कर रहे हैं। सर्वप्रथम इसको आरम्भ करने का प्रयोजन कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनगतकाल के अवयवों को यन्त्रों के उपयेाग के बिना नहीं जाना जा सकता। अतः यन्त्रों से देखकर उसको स्फुट करने के संबंध में यहाँ आचार्य संक्षेप में कह रहे हैं। गोल, नाडीवलय, यष्टि, शङ्कु, घटी, चक्र, चाप, तुर्य तथा फलक नामक यन्त्रों के अतिरिक्त एक अलग 'बुद्धि' नामक परमार्थिक यन्त्र होता है। इनका वर्णन आचार्य इस अध्याय में 'बुद्धि' नामक यंत्र की सहायता से करेंगे।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने भी ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त ही कहा है।यथा–

"गोलस्य परिच्छेदः कर्त्तु यन्त्रैर्विना यतोऽशक्यः।
संक्षिप्तं स्पष्टार्थं यन्त्राध्यायं ततो वक्ष्ये॥४॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शक्यः परिच्छेदविधिर्विधातुर्यन्त्रैर्विना नो समयस्य तज्ज्ञैः।
तेषां स्वयंवाहक पूर्वकाणामतः प्रवक्ष्ये खलु लक्षणानि॥"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में निम्नलिखित यन्त्र कहे हैं–

"सप्तदशकाल यन्त्राण्यतो धुनस्तुर्यगोलकं चक्रम्।
यष्टि शङ्कुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम्॥५॥
सलिलं भ्रमोऽवलम्बः कर्णश्छाया दिनार्धमर्कोऽक्षः।
नतकाल ज्ञानार्थं तेषा संसाधनान्यष्टौ॥६॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ प्रथमं गोलयन्त्रमाह—

अपवृत्तगरविचिन्हं क्षितिजे धृत्वा कुजेन संसक्ते।
नाडीवृत्ते बिन्दुं कृत्वा धृत्वाथ जलसमं क्षितिजम्॥३॥
रविचिह्नस्य च्छाया पतति कुमध्ये यथा तथा विधृते।
उडुगोले कुजबिन्द्वोर्मध्ये नाड्यो द्युयाताः स्युः॥४॥

प्रथम गोलयन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— इस विधि में खगोल के अन्तर्गत भगोल को बांध कर वहाँ क्रांतिवृत्त में मेषादि से आरंभ करके रवि के भुक्त राशि अंशादि पर चिन्ह लगावें उसको क्रांतिवृत्त पर रवि चिन्ह कहते हैं। भगोल में उस बिंदु को चला कर क्षितिज के साथ मिलावे। पूर्वी क्षितिज में विषुवद्वृत्त जहाँ संपात करता है उस स्थान पर खड़िया (चाक) से निशान लगावे। जल से समान की हुई भूमि में गोल यन्त्र को स्थापित करके भगोल को चलाकर इस प्रकार स्थापित करें कि रवि बिंब की छाया भूगर्भ में पतित हो। इस प्रकार करने से विषुवद वृत्त में क्षितिज वृत्त और बिंदु के मध्य जितनी घटियाँ होती हैं उतना काल सूर्योदय के पश्चात दिन गत का मान ज्ञात होता है और क्रांतिवृत्त में मेषारम्भ बिंदु से आगे क्षितिज वृत्त पर्यन्त जितनी राशि अंशादि होती है व लग्न का मान ज्ञात होता है। यह गोल यन्त्र है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"धार्य धनुस्तथाऽन्यत् छाया साम्यं यथोन्नता भागाः।
दिनगतशेषाः घटिका स्वलम्बभुक्ता धनुर्मध्या॥८॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय १९–

"चक्रांशाङ्कं क्रान्तिवृत्तं विधेयं उर्वीवृत्तं याम्यवृत्तं च तद्वत्।
नाडीवृत्तं षष्टिभागाङ्कितं हि याम्योदक्स्था यष्टिरुर्वीजमध्ये॥३॥
कार्य खगोलस्य दृढ़स्य मध्ये भगोलमेतत् परितस्तथा च।
यन्त्रांशके तिग्मकरोऽपवृत्ते क्षिपेच्छलाकामिह तत्र भागे॥४॥
तान्नाडिकावृत्तगतां विधाय समुद्गमात् सूर्यवशेन भूजात्।
तदीयभा केन्द्रगता यथा स्यात् स खम्बुनाड्या भ्रमयेत्तथैव॥५॥
पातज्ञचिन्हक्षितिजान्तरस्थाः समुद्गतांशा गणकैर्निरुक्ताः।
नाडयः शलाका कुजयोस्तु मध्ये समुन्नतास्ता नियतं भवन्तीति॥६॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है।

"अथ लग्नकालसिद्धयै पूर्वापरपरिकरोत्तरैर्नवभिः।
निर्मापयेद् भगोलं प्राग्विधिना क्रान्तिवृत्तमिह॥३॥
तस्य बहिश्च खगोलं समवृत्तक्षितिजदक्षिणोत्तरगैः।
उन्मण्डलेन च तथा ध्रुवयष्ट्या पूर्ववत् सभुवा॥४॥
षष्ट्याङ्कयेद् भगोलं प्रागपराणीतराणि चक्रांशैः।
कुर्याद् दृढ़ं खगोलं श्लथं भगोलं च नलिकाभ्याम्॥५॥
यस्मिन्नंशे सविता तत्र शलाकां क्षिपेद्पमवृत्ते।
नाडीवृत्तस्थां तामुदये क्षितिजाद्रविवशेन॥६॥
भ्रमयेच्छश्वत् तद्वत् यथा न केन्द्रं त्यजेब्छलाकाभा।
रविचिन्हक्षितिजान्तरमुदितांशस्तृणकुजान्तरा घटिकाः॥७॥"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा—

"पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरञ्चैव।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ॥१८॥
पूर्वापरादिलग्नं क्षितिजादक्षाग्रयोश्च लग्नं यत्।
उन्मण्डलं भवेत्तत् क्षयवृद्धौ यत्र दिवसनिशोः॥१९॥
काष्ठमयं समवृत्तं समन्ततस्समगुरुं लघुं गोलं।
पारततैलजलैस्तं भ्रमयेत्स्वधिया च कालसमं॥२२॥"

अथ नाडीवलयमाह—

अपवृत्ते कुजलग्ने लग्नं चाथो खगोलनलिकान्तः।
भूस्थं ध्रुवयष्टिस्थं चक्रं षष्ट्या निजोदयैश्चाङ्क्यम्॥५॥
व्यस्तैर्यष्टीभायामुदयेऽर्कं न्यस्य नाडिका ज्ञेयाः।
इष्टच्छायासूर्यान्तरेऽथ लग्नं प्रभायां च॥६॥
केनचिदाधारेण ध्रुवाभिमुखकीलकेऽत्र धृते।
अथवा कीलच्छायातलमध्ये स्युर्नता नाड्यः॥७॥

नाडी वलय यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चारु अथवा दारु वृक्ष की लकडी से इष्ट प्रमाण का वृत्ताकार चक्र बनाकर उसमें साठ (६०) घटिकायें अंकित करके उस यन्त्र को खगोल के मध्य में ध्रुव यष्टि में पृथ्वी के मध्य में ध्रुवप्रोत सूत्र की भांति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थापित करे तथा राशि स्वोदय मान प्रमाण तुल्य उस वृत्त में चारों ओर पीछे की तरफ में चिन्ह लगावे। इनको इसी प्रकार इस पर विलोम क्रम से भी लगावें। मेष राशि से पश्चिम में वृषभ, वृषभ के पश्चिम में मिथुन इत्यादि (इस प्रकार) लगावें। इस प्रकार यन्त्र बनाकर जिस दिन इससे काल को ज्ञात करना अपेक्षित हो उस दिन सूर्योदय समय में स्पष्ट सूर्य की राश्यादि को मेष आरम्भ से चिन्हित करें तथा वर्तमान भुजमान राशि अंशादि को चक्र में चिन्हित करके उसके अग्रबिंदु पर रवि का चिन्ह लगावे तथा उसी प्रकार यन्त्र को स्थापित करे। इसके अनन्तर रवि जैसे-जैसे ऊपर जायेगा वैसे-वैसे छाया नीचे-नीचे जावेगी। छाया तथा रवि चिन्ह के मध्य जितनी घटियाँ होगी उतना दिन गत ज्ञात होता है तथा यष्टि छाया द्वारा जो राशि क्षेत्र अंश जहाँ-जहाँ लगते हैं वह ज्ञात करे वे षडवर्ग होते हैं। अथवा जिस प्रकार खगोलं के अन्दर यष्टि पिरोई है उसी प्रकार चक्र के अन्दर इष्ट प्रमाण का कीलक पिरोये। वह कीलक ध्रुवाभि मुख जैसे हो वैसे किसी आधार पर चक्र को स्थिर करे। इस प्रकार करके इष्टकाल पर कीलक की छाया जहाँ लगती है उसके तथा यन्त्र के नीचे स्थ चिन्ह के मध्य की घटियाँ ज्ञात होती हैं। इस प्रकार नाडीवलय हुआ।

अथ घटिकामाह—

घटदलरूपा घटिता घटिका ताम्री तले पृथुच्छिद्रा।
द्युनिशनिमज्जनमित्या भक्तं द्युनिशं घटीमानम्॥८॥

घटिका के लिए कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— आधे घट (घड़ा) के सदृश ताम्र का पात्र घटी यन्त्र होता है। इसके तल के मध्य में छोटा छिद्र इस प्रकार करना चाहिये जिससे जलपात्रस्थ जल में साठ बार उसके डूबने से अहोरात्र मान हो अर्थात् एक बार डूबने से एक घटी हो।

विशेष— आचार्य ने स्वकृत वासना भाष्य में कहा है कि जिन आचार्य ने ताम्र के दस पल तुल्य पात्र से घटीकाल लक्षण कहा है वह युक्तिशून्य होने से दुर्घट है अर्थात् सही नहीं है। अतः उसकी उपेक्षा की जानी चाहिये। इष्ट प्रमाण के छिद्र वाला पात्र ही घटी संज्ञक स्वीकार किया गया है। यदि दिनरात्रि में डूबने व उसकी निमज्जन संख्या में ३६०० पल पाते हैं तो एक निमज्जन में क्या? इस रीति से घटी यन्त्र प्रमाण निरुपण किया गया है।

सि.शे. में श्रीपति ने इस प्रकार कहा है। यथा अध्याय १९—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

''शुल्बस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत् षडङ्गुलोच्चं द्विगुणायतास्यम्।
तदम्भसा षष्टिपलैः प्रपूर्य पात्रं घटार्धप्रमितं घटी स्यात्॥१९॥
सत्र्यंशमाषत्रय निर्मिता या हेम्नः शलाका चतुरङ्गुला स्यात्।
विद्धं तया प्राक्तनमत्र पात्रं प्रपूर्यते नाडिकयाऽम्बुना तत्॥२०॥''

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''घटिका कलशार्धाकृति ताम्रम् पात्रं तलेऽपृथुच्छिद्रम्।
मध्ये तज्जलमज्जनषष्ट्या धुनिशं यथा भवति॥४१॥''

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ में इस प्रकार कहा है जिसको आचार्य ने गलत बताया है। यथा– यन्त्राध्याय—

''दशभिः शुल्बस्य पलैः पात्रं कलशार्धसन्निभं घटितम्।
हस्तार्धमुखव्यासं समघटवृत्तं दलोच्छ्रायम्॥३४॥
सत्र्यंशमाषकत्रयकृतनलया समसवृत्तया हेम्नः।
चतुरङ्गुलया विद्धं मज्जति विमलेजले नाड्या॥३५॥''

लेकिन आगे के दो श्लोकों में आचार्य ने अन्य विधि भी कही है जो आचार्योक्त प्रकार की ही है। यथा–

''अथवा स्वेच्छाघटितं घटीप्रमाभिः प्रसाधितं भूयः।
त्रैराशिकसिद्धं वाङ्गुलवद् गुरु विपुलरन्ध्रं यत्॥३६॥
इष्टदिनार्धघटीभिः सममथवापं निमज्जति घटी सा।
षष्टैः शतैस्त्रिभिर्वा विंशतिघ्वक्षरासूनाम्॥३७॥''

सूर्यसिद्धान्त में इस यन्त्र को ज्योतिषोपनिषदध्याय में कपालयन्त्र के नाम से कहा है। यथा–

''ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि।
षष्टिर्मज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्॥२३॥''

अथ शङ्कुमाह—

समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शङ्कुः।
तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम्॥९॥

शंकु यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिसका तल समतल हो तथा मूल स्थान की परिधि के तुल्य अग्र भाग तक की भी जिसकी परिधि हो तथा जो हाथीदाँत

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

का बना हो। ऐसा शंकु होना चाहिये। इसकी छाया से दिगदेश तथा काल का ज्ञान करना चाहिये।

विशेष— आचार्य ने ब्रह्मगुप्त, लल्लाचार्य तथा श्रीपति आदि द्वारा कथित शंकु के प्रकार का शंकु कहा है। उन्होंने इन सबको मिलाकर श्लोक कहा है। हाथीदाँत यहाँ पर दारु, सार आदि का उपलक्ष है। श्रीपति ने शाण से निर्मित अर्थात घिसने वाले पत्थर से निर्मित कहा है तथा भाटी, सरलाकार, व्रण रहित कहा है। लल्लाचार्य ने शंकु का प्रकार आचार्योक्त ही कहा है।

लल्लाचार्य ने सि.धी.वृ.ग्रंथ के यन्त्राध्याय में इसी प्रकार कहा है। यथा–

"भ्रमसिद्ध सममूलाग्रपरिधिरतिसुगुरुसारदारुमयः।
ऋजुरव्रणराजिलाञ्छनस्तथा च समतलः शङ्कुः॥३१॥
वृत्तः षडङ्गुलानि द्वादशदीर्घश्चतुर्भिरवलम्बै।
स्याप्यः सुसमः प्रथमे जलेन च सुसमीकृते फलके॥३२॥"

सि.शे. में श्रीपति ने इस प्रकार कहा है। यथा–

"भ्रमविरचित वृत्तस्तुल्य मूलाग्रभागो
द्विरदरदनजन्मा सारदारुद्भवो वा।
गुरु ऋजुरवलम्बादव्रणः षट्कवृत्तः
समतल इह शस्तः शंकुरर्काङ्गुलः स्यात्॥अ.२२ श्लो.३५॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में इस प्रकार कहा है। उन्होंने शंकु का आकार उपरोक्त आचार्यों से कुछ भिन्न कहा है। यथा–

"मूले द्वयङ्गुलविपुलः सूच्यग्रो द्वादशाङ्गुलोच्छ्रायः।
शंकुस्तलाग्रविद्धोऽग्रवेधलम्बादृजुर्जेयः॥३९॥"

अथ चक्रमाह—

**चक्रं चक्रांशाङ्कं परिधौ श्लथशृङ्खलादिकाधारम्।
धात्री त्रिभ आधारात् कल्प्या भार्धेऽत्र भार्धं च॥१०॥
तन्मध्ये सूक्ष्माक्षं क्षिप्त्वार्काभिमुखनेमिकं धार्यम्।
भूमेरुन्नतभागास्तत्राक्षच्छायया भुक्ताः॥११॥
तत्खार्धान्तश्च नता उन्नतलवसंगुणीकृतं द्युदलम्।
द्युदलोन्नतांशभक्तं नाड्यः स्थूलाः परैः प्रोक्ताः॥१२॥**

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अब चक्र यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— एक चक्र को भ्रमण योग्य आधार बनाकर चक्र में एक छेद करना चाहिये। वृत्ताकार काष्ठ के चक्र में साठ घटी और तीन सौ साठ अंश को अंकित करके मध्य में छिद्र में होकर अवलम्बयष्टि को सूर्याभिमुख इस तरह रखना चाहिये जिससे यन्त्र को बढ़ाने से सूर्य बिम्ब के केन्द्र में चला जाये। इसलिए वह दृग्मण्डलाकार हुआ। इसके केन्द्र में लम्बयष्टि की छाया उसकी परिधि में जहाँ लगती है वह बिन्दु सूर्यकेन्द्र बिंब से षड्भान्तर (छैः राशि अन्तर) पर होता है। सूर्योदय काल में सूर्याधिष्ठित अंश (जिस अंश में सूर्य है) से षड्भान्तर पर पश्चिम बिन्दु ही में अवलम्ब की छाया यन्त्र परिधि में लगती है। उसके बाद ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं त्यों-त्यों लम्ब की छाया पश्चिम बिन्दु से नीचे जाती है। वही लम्ब से त्यक्त अंश है, वह सूर्याधिष्ठित अंश से लेकर उन्नतांश ही है। यह यन्त्र घटिकाओं से अंकित है अतः यन्त्रमुक्त घटी सूर्योदय से गत घटी है।

पूर्वोक्त में छिद्र में सूक्ष्म रेखा गमनशील लकडी चक्र भ्रमण के लिए (अक्ष) देनी चाहिये। सूर्याभिमुख परिधि जैसे हो वैसे चक्र को आधार पर स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार कील अक्ष की छाया जहाँ पर परिधि में लगे वहाँ से क्षितिज गत चिन्ह तक के अंश सूर्य के उन्नतांश तथा छाया और खमध्य के अन्तर में नतांश होते हैं।

अन्य आचार्यों ने इस यन्त्र के द्वारा नत उन्नत घटियों को भी ज्ञात किया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"वृत्तं कृत्वा फलकं षड्वर्गाङ्कं तथा च षष्ट्यङ्कम्।
मध्यस्थितावलम्बं मध्यस्थित्या प्रविष्टोष्णम्॥२०॥
तदधोलम्बविमुक्तं गृहादि यत्तदुदितं दिनकरांशात्।
नाडयः पूर्वकपाले द्युगतास्ताः पश्चिमे द्युदलात्॥२१॥"
चक्राख्यं यन्त्रमिदं दल धनुर्यन्त्रमाहुरस्यैव।
ज्याकार्मुकभृच्छिद्रप्रविष्टदिनकरकरं धार्यम्॥२२॥
मध्यस्थ लम्बमुक्ताः कोटेरारभ्य नाडिका द्युगताः
उदिताश्च दिन करांशादारभ्य भवन्ति गृहभागाः॥२३॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्लोक २२-२३ में आचार्य ने धनुर्यन्त्र का उल्लेख किया है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने लल्लचार्य तथा ब्र.गु. के श्लोक को ही अन्य प्रकार से कह दिया है। यथा अध्याय १९ —

"कृत्वा सुवृत्तं फलकं हि षष्ट्या चक्रांशकैश्चाङ्कितमत्र मध्ये।
लम्बस्तदग्रात् सुषिरेण यद्वत केन्द्रेऽर्करश्मि पततीतिदध्यात्॥१२॥
लम्बेन मुक्ता रविभागतोंऽशास्तत्रोदितास्ते घटिकास्तु याताः।
चक्राख्य मेतद्दलमस्य चापं ज्यामध्यरन्ध्र स्थित लम्बमेतत्॥१३॥"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त चक्र यन्त्र कहा है।–

"परिधौ भगणांशाङ्कं मीनान्तं चक्रतोविद्धवा।
चक्रयन्त्रं मध्याल्लम्बोऽत्र फलं धनुस्तुल्यम्॥१८॥"

अथ वेधेन ग्रहज्ञानमाह—

पैत्रर्क्षपुष्यान्तिमवारुणानामृक्षद्वयं नेमिगतं यथा स्यात्।
दूरेऽन्तरेऽल्पेषु भखेचरौ वा तथात्र यन्त्रं सुधिया प्रधार्यम्॥१३॥
नेमिस्थदृष्ट्याक्षगतं प्रपश्येत् खेटं च धिष्ण्यस्य च योगताराम्।
नेम्यङ्कयोरक्षयुजोस्तु मध्ये येंऽशाः स्थिता भध्रुवको युतस्तैः॥१४॥
प्रत्यक् स्थिते भेऽथ पुरः स्थिते तैर्हीनो ध्रुवः स्यात् खचरस्य भुक्तम्।

चक्र यंत्र के द्वारा ग्रहवेध से ग्रह का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मघा योगतारानक्षत्र (पैत्रर्क्ष), पुष्य योगतारा नक्षत्र, रेवती (अन्तिम) योगतारा नक्षत्र, शततारा (वारुणं) इस प्रकार इन चारों नक्षत्रों के मध्य यन्त्र को नीचे से दृष्टि करके ऊपर की ओर चक्र की परिधि (घेरे) को दो नक्षत्रों के मध्य जिस प्रकार समसूत्र लगे उस प्रकार यंत्र को स्थिर करे तथा चक्र के घेरे में नक्षत्र का स्थान अंकित करे। इसके आगे पीछे दृष्टि को चला कर ग्रह का वेध करे। ग्रह चक्र परिधि में अक्षगत होगा तब ही दिखाई देता है। अक्षमूल और ग्रह के अन्तर तुल्य ग्रह का शर होता है। चक्र परिधि में जहाँ अक्षमूल लगे वहाँ उस स्थान पर भी चिन्ह लगावे। नक्षत्र तथा ग्रह के अंकित अंकों के मध्य जितने अंशादि हो उनमें ग्रह से पश्चिम में नक्षत्र हो तो नक्षत्र के ध्रुवाँक जोड़ने चाहिये और यदि पूर्व में हो तो नक्षत्र के ध्रुवाँक घटाने चाहिये। इस प्रकार करने से स्फुट ग्रह प्राप्त होते हैं। अथवा यदि रोहिणी आदि की तरह अल्प शर वाले नक्षत्र हों तथा उनसे ग्रह दूर स्थित हो तो उन दोनों का वेध करके उक्त प्रकार से ग्रह को ज्ञात करना चाहिये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चाप तुर्यगोलं चाह—

दलीकृतं चक्रमुशन्ति चापं कोदण्डखण्डं खलु तुर्यगोलम्॥१५॥

चाप तथा तुर्य गोल यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चक्र यन्त्र को आधा करने से चाप यन्त्र होता है तथा उसे धनु यन्त्र भी कहते हैं।

विशेष— आचार्य ने गोल यन्त्र श्लोक ३ व ४ में कह कर वहीं पर न कहकर यहाँ चाप यंत्र कहा है। इनके विषय में हमने अन्य आचार्यों के कथन वहीं पर व्याख्या में कह दिये हैं। अतः यहाँ दुबारा नहीं कह रहे हैं। लेकिन इस यन्त्र को कैसे उपयोग में लेते हैं वह यहाँ बताते हैं।

धनुर्यन्त्र को इस तरह धारण करना चाहिये जिससे अन्य छाया साम्य हो अर्थात क्रांतिवश से चरज्या साधन करे तथा इष्ट शंकु से इष्ट हृति का ज्ञान, उससे इष्टान्त्या का ज्ञान कर उसमें चरज्या संस्कार से सूत्रज्ञान कर उससे उन्नत काल का ज्ञान होता है। एवं प्रत्येक घटिकोन्नत काल वश से धनुर्यन्त्र केन्द्र में स्थापित इष्ट प्रमाण कील की छाया साधन कर अपने-अपने उन्नत काल के संमुख अंकित करना। धनुर्यन्त्र को इष्ट दिन में ऐसे धारण करना चाहिये जिससे कील की छाया धनुष के दोनों अग्र के अन्तर में कीलच्छाया सम्बन्धी गणितागत शङ्कु भाग के बराबर भाग (अंश) हो। इस प्रकार धरने से अवलम्ब ही दृक् सूत्राकार लगता है। धनुष के मध्य से अपने लम्बयुक्त भाग रवि के उन्नत भाग (उन्नतांश) होते हैं। वहाँ अंकित उन्नतकाल पूर्व कपाल और पश्चिम कपाल में दिनगत घटी-दिन शेष घटी होती है।

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में धनुर्यन्त्र की आचार्योक्त परिभाषा ही दी है। यथा—

"घटिका स्वशङ्कुभागैः पृथग्गतैलम्बभूसमज्यार्धात्।
साशीतिशतांशाङ्कं चक्रस्यार्धं धनुर्यन्त्रम्॥१०॥"

इसका अर्थ है— यदि इष्टदिन में इष्टकाल में शङ्कुभाग ही विदित हो तब धनुः कोट्यग्र से उन अंशों को दान देकर उसके अग्र से धनुष की ज्या रूप भूमि के ऊपर लम्ब ही शङ्कु है। उससे त्रिप्रश्नाधिकारोक्त विधि से इष्टान्त्या ज्ञात करके इष्टघटी को ज्ञात करना चाहिये। वृत्तार्ध में एक सौ अस्सी (१८०°) अंशों को अंकित करने से धनुर्यन्त्र होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"अंकितमंशनवत्या धनुषोऽर्ध तुर्यगोलकं यन्त्रम्।
घटिकानतोन्नतांश ग्रहान्तराद्यं धनुर्वदिह॥१७॥ यन्त्राध्याय॥"
इस प्रकार आचार्योक्त ही कहा है।

अथ फलकयन्त्रार्थमाह—

दृङ्मण्डलेऽत्र स्फुटकाल उक्तः सुखेन नान्यैर्यतितं मयातः।
सद्गोलयुक्तेर्गणितस्य सारं स्पष्टं प्रवक्ष्ये फलकाख्ययन्त्रम्॥१६॥

अब फलक यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— दृगमण्डल से स्फुट काल आचार्य द्वारा निर्मित यन्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य पूर्वोक्त यन्त्र द्वारा प्रयास करने से ज्ञात नहीं हो सकता, ऐसा आचार्य का कहना है। अतः सद्गोल की युक्ति तथा गणित के सार रूप फलक यन्त्र को आचार्य स्पष्टता से कह रहे हैं।

इदानीमभीष्टदेवतानमस्कारपूर्वकमाह—

नित्यं जाड्यतमोहरं सुमनसामुल्लासनं सप्रभं-
चाक्लेशं समयावबोधनविधौ प्रौद्बोधितज्योतिषम्।
सेव्यं मण्डलमध्यगं सुकृतिर्भिर्यत्रं स्फुटं वच्म्यहं
नत्वैतद्गुणमेव देवममलं श्रीभास्करं भास्करः॥१७॥

आचार्य अब अभीष्ट देवता को नमस्कार करके फलक यन्त्र के लिए कह रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जो अविनाशी तथा नित्य है, अज्ञान तथा अंधकार का नाश करने वाला है, शीतलता को दूर करने वाला है तथा कमलादि को उल्लासित करने वला है। सुप्रकाशित है तथा अक्लेश पूर्वक काल ज्ञान के विधान का उद्बोधक है, तारगण को उल्लासित करने वाला है तथा पुण्यात्माओं से जो सेवित है उन भगवान भास्कर को आचार्य प्रमाण करते हैं।

इसी प्रकार के विशेषणों से आचार्य ने यन्त्र की व्याख्या भी की है कि यंत्र की क्या विशेषताएँ हैं? वे कहते हैं यह अज्ञान के शीत तथा अंधकार का नाश करने वाला है, नित्य अर्थात प्रतिदिन सुमानस तथा विदुषियों को उल्लास देने वाला है, प्रकाश तथा छाया सहित है, सरलता से बिना कष्ट के समय का बोध कराने वाला है, ज्योतिष शास्त्र को अपनी उज्वल ज्योति से उज्ज्वल करने वाला है, सुगणकों से सेवित है, मण्डल के मध्यगत अर्थात यन्त्रमध्य लिखित मण्डल युक्त यंत्र राज 'फलक यन्त्र' को आचार्य भास्कर (स्वयं) नमस्कार करते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं यन्त्रलक्षणमाह—

कर्तव्यं चतुरस्रकं सुफलकं खाङ्का ९० ङ्गुलैर्विस्तृतं
विस्ताराद्द्विगुणा १८० यतं सुगणकेनाय्ममध्ये तथा।
आधारः श्लथशृङ्खलादिघटितः कार्या च रेखा तत-
स्त्वाधारादवलम्बसूत्रसदृशी सा लम्बरेखोच्यते॥१८॥
लम्बं नवत्य ९० ङ्गुलकैर्विभज्य प्रत्यङ्गुलं तिर्यगतः प्रसार्य।
सूत्राणि तत्रायतसूक्ष्मरेखा जीवाभिधानाः सुधिया विधेयाः॥१९॥
आधारतोऽधः खगुणा ३० ङ्गुलेषु ज्यालम्बयोगे सुषिरं च सूक्ष्मम्।
इष्टप्रमाणा सुषिरे शलाका क्षेप्याक्षसंज्ञा खलु सा प्रकल्प्या॥२०॥
षष्ट्यङ्गुलव्यासमतश्च रन्ध्रात् कृत्वा सुवृत्तं परिधौ तदङ्क्यम्।
षष्ट्या घटीनां भगणांश ३६० कैश्च प्रत्यंशकं चाम्बुपलैश्च दिग्भिः॥२१॥
अग्रे सरन्ध्रा तनुपट्टिकैका षष्ट्यङ्गुला दीर्घतया तथाङ्क्या।

अब फलक यन्त्र के लक्षण कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— किसी धातु, श्रीवर्ण्य अथवा दारु आदि वृक्ष की लकड़ी से एक चौकोर फलक यन्त्र बनावे जिसका ९० अंगुल विस्तार (चौड़ाई) तथा इससे द्विगुणित १८० अंगुल की दैर्घ्य (लम्बाई) हो। लम्बाई मध्य किसी आधार पर रख कर यन्त्र को खड़ा (लम्बन) स्थापित करे तथा फलक यन्त्र को जिस आधार पर स्थापित किया है उसके नीचे से एक लम्ब रूप रेखासूत्र बनावे, उसकी लम्ब संज्ञा है। उस लम्ब के नब्बे (९०°) भाग करके प्रत्येक भाग से एक-एक लम्ब रेखा खेंचे जो आधार गत लम्ब रेखा के लम्ब हों। यह रेखायें ज्या संज्ञक होती हैं। आधार के नीचे तीस (३०) अंगुल अन्तर पर जो ज्या है उसके तथा ऊर्ध्वाधर लम्ब के संपात बिन्दु पर एक छिद्र करे। उसमें अभीष्ट प्रमाण की शलाका पिरो देवे यह अक्ष रेखा है। उस छिद्र से तीस अंगुल पर कर्कटक (गोलाप्रकार) से एक वृत्त बनावे। उसमें ६० घटी की गणना के ६० अंश तथा ३६० अंश कलादि के चिन्ह बनावे। प्रत्येक अंश को दश-दश पानीय पल के चिन्ह बनावे। ताम्रादि धातु की या बांस की आधा अंगुल चौड़ी तथा साठ (६०) अंगुल लंबी (जिससे फलक अंगुल नापी गई है) पट्टि लेवे। उसमें एक अग्र भाग पर एक अंगुल चौड़ी कुल्हाड़ी लगावे तथा उस कुल्हाड़ी की चौड़ाई में एक छिद्र बनावे। उक्त अक्ष में पिरोकर इस पट्टी को लम्ब रेखा में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस प्रकार रखें कि अक्ष रेखा का एक भाग लम्ब रेखा में ही रहे उसका त्याग न करे।

विशेष— आचार्य ने जो फलक यन्त्र कहा है उसकी रचना का स्पष्टीकरण भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त के ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय के निम्नलिखित आदर्श को लेकर किया है। यथा–

"अवलम्बनं शलाकाज्यार्ध यष्टिं प्रकल्प्य वा धनुषि।
भूम्युच्छ्रायाल्लम्बो यष्ट्युक्तैशनयेत् करणै॥१६॥"

अर्थात् धनुर्यन्त्र में केन्द्रगतशलाका को अवलम्बसूत्र, चाप के ज्यार्ध शलाका प्रोत (पहराई हुई) यष्टि मान कर यष्ट्यादि से कथित साधनों से क्षितिज के उच्छ्राय से उन्नतांशादि को गणक लावे।

अतः स्पष्ट है कि आचार्योक्त फलक यन्त्र उनकी मौलिक कृति नहीं कही जा सकती। सब कुछ ब्र.गु. ने कहा है। भास्कराचार्य ने तो उसे एक विशिष्ट नाम देकर एक यन्त्ररूप में कह दिया है।

इदानीं यन्त्रोपकरणमाह—

यत् खण्डकैः स्थूलचरं पलाद्यं तद्गोकु १६ हृत् स्याच्चरशिञ्जिनीह॥२२॥

सूर्य-प्रभा टीका— जो खण्ड के प्राप्त चरार्ध पानीय पलात्मक है उसको उन्नीस से भाग देने से प्राप्त अंशादि यहाँ यंत्र में चरज्या जाने।

विशेष— चरखण्ड बनाने के लिए पलभा को १०।८।$\frac{३}{२०}$ से क्रमशः गुणा करने से चरखण्ड प्राप्त होते हैं। जहाँ पलभा ४।३० हो वहाँ चरखण्ड क्रमशः १० × ४।३० = ४५; ८ × ४।३० = ३६ तथा $\frac{१०}{३}$ × ४।३० = १५ होते हैं।

यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतनी चरज्या होती है तो ३० व्यासार्ध में कितनी होगी?

$$\text{फल} = \frac{६ \times ३०^{\circ} \text{ चरज्या}}{\text{त्रिज्या} = ३४३८} = \text{चरज्या फल यन्त्र।}$$

$$\text{या चरज्या} = \frac{\text{चरज्या} \times १८०}{३४३८} = \frac{\text{चरज्या}}{१६} = \text{फलक यन्त्र में ज्या}$$

उपपन्न हुआ।

यहाँ स्थूल चरपल × ६ = जीवारूप होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्योक्त प्रकार से—

$$\text{दिनार्ध में यष्टि} = \frac{(१२+\text{व्यंगुल}) \times \text{पलकर्ण} \times \text{शंकु}}{१२ \times १२}$$

$$= \frac{१२ \times \text{शंकु} \times \text{प.क.}}{१२ \times १२} + \frac{\text{व्यंगुल} \times \text{प.क.} \times \text{शं}}{१२ \times १२}$$

$$= \frac{\text{शं.} \times \text{प.क.}}{१२} + \frac{\text{व्यं.} \times \text{शं} \times \text{प.क.}}{१२ \times १२}$$

$$= \frac{\text{शं.} \times \text{प.क.}}{१२}\left(१ + \frac{\text{व्यं.}}{१२ \times ६०}\right)$$

$$= \frac{३० \times \text{प.क.}}{१२}\left(१ + \frac{\text{व्यं.}}{१२ \times ६०}\right)$$ यहाँ शंकु का मान ३० रखा है।

$$= \frac{१०}{४}\left(\text{प.क.} + \frac{\text{प.क.} \times \text{व्यं.}}{१२ \times ६०}\right) = \frac{१०}{४}(\text{पं.} + \text{इ.अंगुल})$$

इदानीं यष्टिसाधनमाह—

वेदा ४ भवाः ११ शैलभुवो १७ धृतिश्च १८
विश्वे १३ च बाणा ५ पलकर्णनिघ्नाः।
अर्कोद्धृताः स्युः क्रमशः स्वदेशे
राश्यर्धलभ्यानि हि खण्डकानि॥२३॥
तैः क्रान्तिपाताढ्यरवेर्भुजज्या षष्ट्युद्धृताक्षश्रवणेन युक्ता।
दिग्घ्नी कृतात्रा भवतीह यष्टिः सा पट्टिकायां सुषिरात् प्रदेया॥२४॥

यष्टि साधन बनाते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्ष देश में ४।११।१७।१८।१३।५ इतने चर खण्डों को पल कर्ण से गुणा तथा द्वादश से विभक्त करने से स्वदेश के चरखण्ड होते हैं। (पन्द्रह-पन्द्रह अंशों के एक-एक खण्ड होने से कुल छः खण्ड होते हैं।) एक-एक खण्ड की क्रांति पर सूर्य भुजांश की भुजज्या को ६० से विभक्त करके पलकर्ण में जोड़ने से प्राप्तफल को १० से गुणा करके (४) चार से विभक्त करने से यष्टि का मान ज्ञात होता है। पट्टिका में वह यष्टि तुल्य अंगुल छिद्र से आरम्भ करके गणना के लिए चिन्ह लगावें।

उपपत्ति— छिद्र के ऊपर जो रेखा है वह मध्य रेखा है वह ज्ञात है। यंत्र को दृङ्मण्डलाकार में रखकर उसकी कीलक की छाया उसकी परिधि में जहाँ लगे उसके तथा मध्य रेखा के बीच में जो अन्तर है वह उन्नतांश है। इनकी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्या उन्नत ज्या होती है। इसका अर्थ हुआ कि मध्यरेखा तथा छाया (यंत्र परिधि में) के बीच की अंगुलादि नाप उसकी उन्नत ज्या है। इष्टकाल पर यह उन्नतांश ज्या ही शंकु होती है। इसको पलकर्ण से गुणा करके बारह से विभक्त करने से इष्ट हृति होती है जिसको त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से इष्ट अन्त्या होती है। सूर्य के उत्तर गोल में रहने पर त्रिज्या में चरज्या युत करने से तथा दक्षिण गोल में घटाने से अन्त्या होती है। अन्त्या में से इष्ट अन्त्या घटाने से जो शेष रहता है वह नतकाल की उत्क्रमज्या होती है। उसका उत्क्रम चाप बनाकर नतकाल ज्ञात करे। यह गोल में कालज्ञान की उपपत्ति आचार्योक्त प्रकार से हुई।

अब (इसको) धूलीकर्म से यष्टि करे। जब आधि राशि तुल्य भुज हो तो द्युज्या ३४१८ होती है। एक राशि भुज की द्युज्या ३३६६ होती है। साअर्ध (डेढ़) राशि की ३२९२ तथा दो राशि की ३२१८ होती है एवं अढ़ाई ($२\frac{१}{२}$) राशि की ३१६१ होती है। तीन राशि की ३१४१ होती है।

यदि बारह अंगुल शंकु को त्रिज्या से गुणा करके इन अभीष्ट द्युज्या मानों से प्रथक्-प्रथक् विभक्त किया जाये तो सर्वत्र बारह अंगुल प्राप्त होते हैं तथा ४, ११, १७ आदि व्यंगुल होते हैं। ऊपर के बारह को त्यागने से तथा अन्य अनुपात करने से कि यदि स्व देश में इतने खण्ड को पलकर्ण से गुणा करके बारह से विभक्त करने से १५ अंश खण्ड प्राप्त होते हैं कल्पित करे यथा $\frac{४ \times \text{पलकर्ण}}{१२}$ = १५ अंश। वे खण्ड सायन अंश सूर्य भुजज्या व्यङ्गुलात्मक होते हैं। अतः १६० से विभक्त किया तथा उसको अक्ष कर्ण में युत किया। ऊपर के बारह त्याग किये को अक्षकर्ण से गुणा करके बारह से विभक्त करने से उतना अक्ष कर्ण प्राप्त होता है। इस प्रकार बारह अंगुल की इष्ट अन्त्या हो जाती है। धूली कर्म के उपसंहारार्थ ३० अंगुल शंकु में इसको परिणत करने के लिए अनुपात किया कि यदि १२ अंगुल शंकु होता है तो इतनी इष्ट अन्त्या होती है। अतः ३० अंगुल शंकु में कितनी होगी?

$\frac{\text{इष्ट अन्त्या} \times ३०}{१२} = \frac{\text{इष्ट अन्त्या} \times १०}{४}$ = ३० अंगुलशंकु की इष्ट अन्त्या, इसकी यष्टि संज्ञा है।

पुनः यदि ३० अंगुल शंकु यष्टि में इतनी इष्ट अन्त्या होती है तो इष्ट शंकु में कितनी होगी? यह अनुपात किया।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतः फल इष्ट अंत्या = $\frac{\text{इष्ट शंकु} \times \text{यष्टि}}{३० \text{ अंश}}$। इसके तुल्य ही यष्टि पट्टिका में देकर उसके आगे चिन्ह लगावें।

इदानीं यष्टिप्रयोजनमाह—

धार्यं तथा फलकयन्त्रमिदं यथैव
तत्पार्श्वयोर्लगति तुल्यमिनस्य तेजः।
छायाक्षजा स्पृशति तत्परिधौ यमंशं
तत्रांशके मतिमता तरणिः प्रकल्प्यः ॥२५॥
अक्षप्रोतां रविलवगतां पट्टिकां न्यस्य तस्माद्-
यष्टेरग्रादुपरि फलकेऽधश्च गोलक्रमेण।
यत्राद्येयश्चरदलगुणस्तत्र या ज्या तयात्र
छिन्ने वृत्ते तलगघटिकाः स्युर्नता लम्बकान्ता ॥२६॥

यष्टि का प्रयोजन बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— यन्त्र को किसी आधार पर अवलम्बित करके इस प्रकार धारण करना चाहिये जिससे यन्त्र के आगे तथा पीछे दोनों ओर तुल्य काल में सूर्य का प्रकाश पड़े। सूर्योन्मुख परिधि दृग्मण्डलाकार है तथा छिद्र में पिरोये हुए अक्ष की छाया वृत्त परिधि पर जितने अंशों पर लगे उतने अंश पर सूर्य को कल्पित करना चाहिये और अक्षप्रोत पट्टिका को रविचिन्ह पर स्थापित करे तथा पट्टिका को पूर्व में लगाये हुए यष्टि चिन्ह पर रखें। उसके ऊपर उत्तर गोल तथा उसके नीचे दक्षिण गोल में चरज्या तुल्य मान की अंगुलादि फलक पर गणना करके निशान लगावे। उस चिन्ह पर जो ज्यारेखा उस वृत्त में जहाँ लगती है उससे नीचे वृत्त में लम्बरेखा अवधि तक जितनी घटियाँ हैं उतना काल नतकाल होता है। रविचिन्ह यदि रेखा के मध्य में न हो अर्थात दो रेखाओं के मध्य कहीं पर हो तो उसके अनुसार यन्त्र में अन्य रेखा मान कर नत काल को ज्ञात करना चाहिये।

उपपत्ति— आचार्य ने उपपत्ति में कहा है। रवि उत्तरगोल में होने पर छिद्र के ऊपर की ओर तथा दक्षिण गोल में होने पर उसके नीचे चरज्या तुल्य अंगुलादि माप पर चिन्ह लगावे। यह अन्त्या अग्र होता है। इसीलिए वृत्त के व्यासार्ध में चरज्या जोड़ अथवा घटाई जाती है। अतः वह अन्त्या है। वृत्त परिधि पर जहाँ छाया लगती है उसके तथा मध्य रेखा के बीच के मध्य में शंकु

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होता है। छाया के ऊपर न्यासित पट्टि के ऊपर जहाँ यष्टि चिन्ह है उसके तथा मध्यरेखा के मध्य इष्ट अन्त्या है। अब अनुपात किया कि यदि त्रिज्याग्र पर शंकुतुल्य दूरी होती है तो यष्टिग्र पर कितनी होगी? यह दिनार्ध में अन्त्या घटाने से प्राप्त होती है। अन्त्याग्र चरज्या मध्यज्या से उत्तर गोल में ऊपर तथा दक्षिण गोल में नीचे होती है। अतः यष्टिग्र के ऊपर तथा नीचे चरज्या दान दी गई है। उसके आगे जो ज्या रेखा है उससे अवच्छिन्न (काटा गया, अलग किया गया) नीचे के वृत्तखण्ड में अवशेष बाण रूप होता है। इसकी उत्क्रमज्या का चाप नतघटी होता है। ज्यारेखा से लम्बरेखा तक जो नत घटियाँ हैं वह वृत्त में गणना करके गृहण करे।

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त श्लोक की आधारभूत बात इस प्रकार कही है। यथा–

"घटिका स्वशङ्कुभागैः पृथग्गतैर्लम्बभूसमज्यार्धत्।
साशीतिशतांशाङ्कं चक्रस्यार्ध धनुर्यन्त्रम्॥१०॥"

भास्कराचार्य ने जो श्लोक १० से १२ में चक्रयंत्र के लिए कहा है वह फलक यन्त्र से काम लेना चाहिये।

एवं छायादर्शनात् कालज्ञानमुक्त्वेदानीमेतावत्यभीष्टे काले नते क्व छाया लगिष्यतीत्येतदर्थमाह —

लम्बाद्देया विनतघटिकास्तज्ज्यकातश्चरज्या
व्यस्ता देया भवति च तथा यापरा तत्र मौर्वी।
धार्या पट्टी स्पृशति हि यथा तज्ज्यकां यष्टिचिह्नं
पट्टीस्थाने निपतति तदाक्षस्य नूनं प्रभास्य॥२७॥

इस प्रकार छाया देखकर काल ज्ञात करना बता कर अब इष्ट काल नत पर कितनी छाया लगेगी, यह कहते हैं।

सूर्य-प्रभा टीका— नीचे स्थित लम्ब तथा ऊर्ध्ववृत्त के संपात से नत घटियों की गणना करे। उसके आगे जो ज्यारेखा है उससे नीचे उत्तर गोल में और दक्षिण गोल में उससे ऊपर चरज्या तुल्य अंगुल गिन कर वहाँ चिन्ह लगावे। वहाँ जो ज्या रेखा है उससे पट्टिका स्थित यष्टि चिन्ह जैसे लगता है उसी प्रकार अक्षप्रोत (पिरोई) पट्टिका करने से पट्टिस्थान पर जिस समय अक्ष की छाया पड़ती है, यह ज्ञात करे।

उपपत्ति— यहाँ फलक यंत्र में ९० अंगुल चौड़ाई तथा इससे दुगुनि १८० अंगुल लम्बाई जो कही गई है वह सभी प्रदेशों के लिए कही गई है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्यथा जिस स्वदेश के लिए जितनी आवश्यक हो उसके लिए उतनी ही अपनी बुद्धिसे बना लेनी चाहिये। जैसे यदि वृत्तमध्य छिद्र के ऊपर परम चरज्या तुल्य रेखा और नीचे ३८ अंगुल मान लेवे। यह ४६ अंगुल मान तक की विस्तार की हो सकती है। तथा परम यष्टि तुल्य अंगुलादि ३८×२=७६ लेवे। इतने मान तक से कुरुक्षेत्र प्रदेश पर्यन्त तक के काल को ज्ञात किया जा सकता है।

अथ यष्टियन्त्रमाह—

त्रिज्याविष्कम्भार्धं वृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र।
दत्त्वाग्रां प्राक् पश्चाद्द्युज्यावृत्तं च तन्मध्ये॥२८॥
तत्परिधौ षष्ट्यङ्कं यष्टिर्नष्टद्युतिस्ततः केन्द्रे।
त्रिज्याङ्गुला निधेया यष्ट्यग्राग्रान्तरं यावत्॥२९॥
तावत्या मौर्व्या यद्द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत् तत्र।
दिनगतशेषा नाड्यः प्राक् पश्चात् स्युः क्रमेणैवम्॥३०॥

अब यष्टि यन्त्र को कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— समान की हुई पृथ्वी पर त्रिज्या तुल्य अंगुल का कर्कटक (प्रकार) की सहायता से एक वृत्त बनावे तथा उसमें दिशायें अंकित करे एवं तीन सौ साठ समान भाग करे। यह क्षितिज वृत्त है। उसके मध्य (केन्द्र) में अपनी इच्छा से कल्पित त्रिज्या अंगुल संख्या से चिन्हित और सब तरफ से समान छाया हीन अर्थात सूर्याभिमुख यष्टि इस प्रकार रखी जावे जिससे स्वमार्ग में यष्टि को बढ़ाने से वह सूर्य बिंब केन्द्र में चली जाये। यष्टिग्र से नीचे क्षितिज के ऊपर लम्बशंकु होता। इस वृत्त (पूर्वलिखित) में शंकुमूल और केन्द्र के अन्तर दृग्ज्या अर्थात नतांशज्या होती है। शंकुमूल से उदयास्त सूत्र पर्यन्त लम्बरूप अन्तर भुज है। शंकुमूल से उदयास्त सूत्रपर्यन्त लम्बरूप रेखा शंकुवग्र संज्ञक है। यही शंकुतल है। (शलाका) यष्टिग्र और अग्रा के मध्य द्युज्यावृत्त में धनु जितना है वह घटिकायें हैं उतना दिन गत ज्ञात काल होता है तथा पश्चिमग्रा और यष्टि अग्र के मध्य शलाका दिन शेष घटी होता है। दिन शेष को दिनमान में से घटाने से दिनगत नाडियाँ प्राप्त होती है। इन दोनों का योग दिनमान तुल्य होता है। यदि एक दिन में द्युज्या स्थिर मानी जाय अर्थात् क्रांति स्थिर माने तब ही इस विधि से काल ज्ञान शुद्ध हो सकता है।

उपपत्ति— त्रिज्या रूप यष्टि और शंकुरूप लम्ब है का वर्गमूलान्तर नतांशज्या (द्युज्या) शंकुमूल तथा वृत्त केन्द्र का अन्तर होता है। शंकुमूल से

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वापर रेखा के ऊपर लम्ब भुज है। अग्राग्रगत (पूर्व पश्चिम दिग्गत अग्राद्वयगत) रेखा उदयास्त सूत्र है। उदयास्त सूत्र और शंकुमूल का लम्बरूप अन्तर शंकुवग्र (शंकुतल) है। तब अनुपात किया कि यदि शंकु में शंकुतल तुल्य भुज प्राप्त होता है तो बारह (१२) अंगुल शंकु में क्या? इससे प्राप्त फल स्फुट पलभा होती है। इसका स्वरूप पहले कहा गया है। यहाँ नतज्या अग्राग्र बिंदु से यष्ट्यङ्गुल मान के अनुसार अंगुलात्मक प्रमाण वाली लानी है। शंकुमूल तथा यष्टिमूल के अन्तर में एक सरल शलाका रखकर उसको अंगुल से माप कर उसका मान जानना चाहिये।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु. सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"परिलिख्य वृत्तमवनौ यष्टि व्यासार्धमन्यदस्यान्तः।
स्वाहोरात्रार्धार्ध घटिका षष्ट्यङ्कितं परिधौ॥२०॥
यष्टि व्यासार्धेऽग्रा यष्ट्यग्रान्तरसमज्यया धनुषि।
घटिका द्वितीयवृत्ते याताः प्रागपरतः शेषाः॥२१॥"

सि.शे. में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"संसाधिताशं कृतचक्रभागं विधाय वृत्तं समभूप्रदेशे।
त्रिज्याङ्गुलाऽङ्कां सुसमां च यष्टिं नष्टद्युतिं तज्जठरे निदध्यात्॥२१॥
तदग्रलम्बः खलु शंकुरुक्तस्तन्मूलकेन्द्रान्तरमत्र दृग्ज्या।
पूर्वापरात्तद्विवरं भुजः स्याच्छङ्क्वग्रमस्तोदयसूत्रमध्यात्॥२२॥
शंक्वग्रमर्कैगुणितं विभक्तं तल्लम्बकेन स्फुटमक्षभा स्यात्।
अग्राग्रभागान्नतभागमौर्वी कार्येह खल्वङ्गुलवृत्तजाता॥२३॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रं. के यंत्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिङ्मूध्यस्थितमूला यष्टिर्नष्टप्रभा त्रिगुणतुल्या।
धार्यातदीयलम्बकाष्ठांशा वोदिता भागाः॥४८॥
यष्टिस्त्रिज्या कर्णो लम्बो ना कृतिविशेषपदमनयोः।
दृग्ज्या छाया प्राक्परलम्बनिपातान्तरं बाहुः॥४९॥
प्रागपराग्रासक्तं सूत्रं शंक्वन्तरं हतं सूर्यैः(१२)।
षष्ट्यवलम्बविभक्तं यष्ट्यवलम्बेन विषुवद्भा॥५०॥"

अथान्यदाह—

यष्ट्यग्रालम्बो ना ज्ञेया दृग्ज्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्य बात करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज वृत्त केन्द्रगत यष्टि को इस तरह रखना चाहिये कि जिससे छाया रहित (नष्ट छाया) यष्टि हो। एवं यष्टिव्यासार्धोत्पन्न गोल में यष्टि के अग्र में रवि होता है। इस प्रकार नष्ट छाया की (स्थित) यष्टि के अग्र बिंदु से अर्थात् रविकेन्द्र से क्षितिज धरातल (नीचे) के ऊपर लम्ब रूप इष्ट शंकु है। यष्टि के मूल से शंकुपर्यन्त अन्तर दृग्ज्या है। शंकुमूल तथा पूर्वापर रेखा का अन्तर भुज (बाहु) है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यंत्राध्याय में भास्करोक्त तथा विशेष कहा है। यथा–

"यष्टिस्तिर्यग्धार्या नष्टच्छायावलम्बकः शंकुः।
दृग्ज्यान्तरमनुपातात् स्वहोरात्रार्धमग्रा च॥१६॥"

केवलदिग्ज्ञाने सत्यक्षभामाह—

उदयेऽस्ते यष्ट्यग्रप्राच्यपरामध्यमग्रा स्यात्॥३१॥
शङ्कूदयास्तसूत्रान्तरमर्कगुणं नरोद्धृतं पलभा।

केवल दिशा ज्ञान से पलभा का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उदयास्त कालों में पूर्वोक्त प्रकार से नष्ट छाया की भांति ही यष्टि स्थापित करने से वह समग्र वृत्त में भूमि लग्न होती है। इस प्रकार यष्टग्र तथा पूर्वापर (उदयास्त) सूत्र का अन्तर त्रिज्या वृत्त में ज्यार्धवत् स्थित होता है। यह अग्रा होती है। पूर्वोक्त प्रकार से उदयास्त सूत्र से इष्ट काल शंकु होता है। शंकु से उदयास्त सूत्र के अन्तर को बारह से गुणा करके शंकु से विभक्त करने से पलभा होती है।

उपपत्ति— त्रैराशिक से यदि इतना शंकु में शंकु उदयास्त सूत्र का अन्तर शंकुतल भुज होता है तो द्वादश अंगुल शंकु में क्या? प्राप्तफल पलभा होती है। अर्थात

$$\text{पलभा} = \frac{\text{शंकुतल} \times १२}{\text{शंकु}}$$

विशेष— पूर्व श्लोक की विशेष व्याख्या देखें।

अथोद्यन्तमर्कमदृष्टवापि—

भुजयोरेकान्यदिशोरन्तरमैक्यं रविक्षुण्णम्॥३२॥
शङ्कन्तरहत् पलभा प्रागपराशानरान्तरं बाहुः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आद्यन्त का रवि देखकर पलभा ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— एक अथवा भिन्न दिशाओं के भुज के क्रमशः अंतर तथा योग को बाहर से गुणा करके शंकु अन्तर से विभक्त करने से पलभा तथा शंकुमूल एवं पूर्वापर रेखा का अंतर भुज होता है।

उपपत्ति— अग्रा तथा शंकुतल के संस्कार (योगान्तर) से भुज होता है। अतः भुज= अग्रा ± शंकुतल। अर्थात अग्रा$_१$ + शंकुतल$_१$ = भुज$_१$ और अग्रा$_२$ – शंकुतल$_२$ = भुज$_२$ दोनों का अन्तर करने से शंकुतल$_२$ – शंकुतल$_१$ = भुजान्तर। अतः शंकुतलान्तर = भुजान्तर; शंकुअन्तर = कोटी तथा हत्यान्तर कर्ण। इन तीनों से उत्पन्न अक्षक्षेत्र में–

$$\frac{\text{शंकु तलान्तर} \times १२}{\text{शंकु अंतर}} = \frac{\text{भुजान्तर} \times १२}{\text{शंकु अंतर}} = \text{पलभा}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

उदाहरण– ४ अंगुल पलभा वाले देश में उत्तर गोल में प्रथम शंकु ३० अंगुल दिखाई देता है तो इसका दक्षिण भुज ५ अंगुल होता है। दूसरा शंकु ३६ अंगुल दिखाईदेता है इसका दक्षिण भुज ७ अंगुल होता है। अग्रा ज्ञान से ही शंकुतल ज्ञात होता है। लेकिन भुजाग्र का जो अन्तर होगा वही शंकुतल का भी अंतर होगा। अत शंकुतल का अंतर= भुजान्तर= ७ – ५ = २ तथा शंकुओं की ऊँचाई का अन्तर= ३६ – ३० = ६ है। अतः अनुपात किया कि यदि इतना शंकु अंतर है तो इतना शंकु तलान्तर होता है। अतः बारह अंगुल में क्या होगा?

$$\frac{\text{शंकु तलान्तर} \times १२}{\text{शंकु अंतर}} = \frac{२ \times १२}{६} = ४$$

अतः पलभा का मान ४ आया। उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है—

"प्राच्यपरशंकुतलान्तर द्वयान्तरयुतिः समान्यदिशोः।
द्वादशगुणिता विषुवच्छाया शंकुवन्तर विभक्ता ॥३०॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रागपराग्रासक्तं सूत्रं शंक्वन्तरं हतं सूर्यैः।
षष्ट्यवलम्बविभक्तं यष्ट्यवलम्बेन विषुवद्भा॥५०॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सि.शे. के अध्याय १९ में श्लोक २३ में आचार्योक्त ही कहा है।

"शंक्वग्रमर्कैर्गुणितं विभक्तं तल्लम्बकेन स्फुटमक्षभा स्यात्।
अग्राग्रभागान्नतरभागमौर्वी कार्ये खल्वङ्गुलवृत्त जाता॥२३॥"

इदानीं दिग्देशकालानामज्ञाने केवलार्कदर्शनादेव सर्वमाह—

यष्ट्या शङ्कुत्रितयं ज्ञात्वा वा कथ्यते सर्वम्॥३३॥
आद्यन्तशङ्कुशिरसोस्तिर्यक् सूत्रं निबध्य तत्सक्ते।
मध्यमशङ्क्वग्राद्द्वे सूत्रे भूमिं पृथङ्नेये॥३४॥
भूचिह्नद्वितयोपरि सूत्रं तत्रोदयास्तसूत्रं स्यात्।
तत्केन्द्रान्तरमग्रा सूत्रादग्रान्तरे ततः प्राची॥३५॥
प्राग्वदतोऽक्षच्छाया तच्छ्रुतिविहताग्रकार्कसंगुणिता।
क्रान्तिज्या त्रिज्याघ्नी जिनभागज्योद्धृता दोर्ज्या॥३६॥

केवल रवि को देखकर दिग्देश तथा काल का ज्ञान—

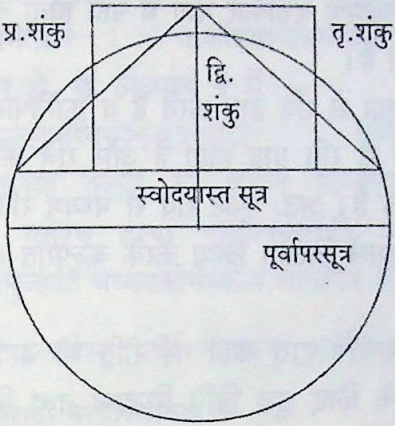
सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या वृत्त लिखकर पूर्व की भांति यष्टि से तीन अभीष्ट काल पर शंकु ज्ञात करे। इससे सब कुछ कहे। प्रथम तथा तृतीय शंकु के अग्र को लम्बवत् सूत्र बांधकर मध्यशंकु के अग्र पर दो अन्य सूत्र बांधकर उनको भूमि पर फैलाकर (अलग करके) भूचिन्ह पर बांध देवे वह स्वउदयास्त सूत्र होता है। अर्थात मध्यशंकु के अग्र पर एक सूत्र बांध कर पहले शंकु के अभिमुख नीचे के अग्र (आधार) बिन्दु पर कर्णगत त्रिज्या वृत्त परिधि तक ले जाकर वहाँ पूर्व भाग में चिन्ह लगावे तथा वही सूत्र (या अन्य सूत्र) तीसरे शंकु के अभिमुख नीचे के अग्र (आधार) बिन्दु पर इसी प्रकार ले जाकर वृत्त के पश्चिम भाग में चिन्ह लगावें। इन चिन्हों के ऊपर होकर जाने वाला सूत्र स्व उदयास्त सूत्र होता है तथा सूत्र तथा वृत्त केन्द्र का अन्तर अग्रा होता है। उदयास्त सूत्र से अग्रा तुल्य अंतर पर केन्द्रोपरि पूर्वापर रेखा करे। उसके पश्चात् शंकु उदयास्त सूत्र अन्तर इत्यादि से पलभा ज्ञात करे।

पूर्ववत अक्षच्छाया से उसके पल कर्ण ज्ञात करके अग्रा को १२ से गुणा करके पलकर्ण से विभक्त करने से क्रांतिज्या होती है। फिर अनुपात किया कि क्रांतिज्या में त्रिज्या तुल्य दोर्ज्या होती है तो अभीष्ट क्रांतिज्या में कितनी? इस प्रकार अनुपात करने से सायन सूर्य की दोर्ज्या होती है। अर्थात—

$$\text{सूर्य दोज्या} = \frac{\text{इष्ट क्रांतिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{जिनज्या}}$$

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस प्रकार पलभा ज्ञात करके उस स्थान का ज्ञान करे।



विशेष— श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अपमधनुषो मौर्व्या क्षुण्णा गृहत्रयशिञ्जिनी
जिनलवजया शिञ्जिन्याप्ता भवेद्दिनकृदगुणः।
कृतधनुरसौ तादृग्भार्धाच्च्युतोऽथ सषड्गृहो
भगणपतितः स्पष्टोऽर्कः स्यात् पदेषु चतुर्ष्वपि॥६३॥"

अथ कालज्ञानमाह—

तद्धनुराद्ये चरणे वर्षस्यार्कः प्रजायतेऽन्येषु॥
भार्धाच्च्युतः सभार्धो भगणात् पतितोऽब्दचरणानाम्॥३७॥
ऋतुचिन्हैर्ज्ञानं स्याद्ऋतुचिन्हान्यग्रतस्ततो वक्ष्ये।
भात्रितयाद्भाभ्रमणं न सदस्माद्विक्पलाद्यं च॥३८॥
छायातोऽग्रातो वा भानुः सक्रान्तिपात एव स्यात्।
पातोनः स्फुटभानुः स्फुटभानूनो भवेत् पातः॥३९॥

अब काल ज्ञान कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या को त्रिज्या से गुणा कर के जिनज्या से विभक्त करने से रवि भुजज्या होती है। उसका चाप प्रथम पद में मेषादि तीन राशियों में स्फुट रवि होता है, कर्क्यादि तीन राशियों में द्वितीय पद में उस चाप को छः राशि में घटाने से, तीसरे पद में तुलादि तीन राशियों में चाप में छः राशि जोड़ने से, चतुर्थ पद में मकरादि तीन राशियों में चाप को बारह राशि में से घटाने से स्फुट रवि होता है। इस प्रकार वर्ष के चरण ज्ञात करके ऋतु के चिन्ह लगावें।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्य आचार्यों ने तीन छायाओं से छाया भ्रमण से दिशा ज्ञान बताया है। लेकिन वहाँ छायाभ्रमण वृत्ताकार मार्ग में नहीं होता क्योंकि क्रांति की गति एक समान नहीं रहती है।

अग्रा तथा छाया से रवि ज्ञात करते हैं व क्रांतिपात सहित ही होती है। अतः पात कम करने से रवि प्राप्त होता है और रवि को घटाने से पात प्राप्त होता है। यह युतियुक्त है। अतः स्फुट रवि से मध्यम रवि तथा मध्यम रवि से अहर्गण ज्ञात करके उससे विलोम क्रिया करके कल्पगत वर्षादि काल को ज्ञात कर सकते हैं।

विशेष— आचार्य द्वारा कही गई रीति भी यहाँ पूर्ण सही नहीं है। कमलाकर जी ने इसके लिए शुद्ध विधि सिद्धान्त तत्त्व विवेक में कही है वह ठीक है।

श्रीपति ने सि.शे. में जो कहा है उससे लगता है कि रवि का कमलाकरोक्त शुद्ध ज्ञान श्रीपति का ही कहा हुआ है। यथा–

"आद्ये पदेऽपचयिनी पलभाल्पिका स्यात् छायाल्पिका भवति वृद्धिमति द्वितीये। छायाधिका भवति वृद्धिमती तृतीये तुर्ये पुनः क्षयवती तदनल्पिका च॥"

ब्र.गु.ने ब्र.स्फु.सि. में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"क्रांतिर्व्यासार्धगुणा जिनभागज्याहृता धनुरजादौ।
कर्क्यादौ चक्रार्धात् प्रोह्य तुलादौ समार्धेन॥६१॥
चक्रात् प्रोह्य मृगादौ स्फुटोऽसकृद् धनमृणे धनेत्वृणकम्।
अस्मादेशान्तरयुगयुगतो मध्यमः प्राग्वत्॥६२॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के त्रिप्रश्नाध्याय में भ्राभ्रमण वृत्ताकार में होना कहा है तथा श्रीपति ने भी लल्लाचार्योक्त कहा है। यथा–

"छायात्रयाग्रभवयोर्मुखपुच्छरज्वोर्योगो यमस्य दिगुदग्द्युदलप्रभाग्रे।
यत्र ध्रुवोधनपतेर्दिगसौ भवेद्वा तन्मत्स्यपुच्छमुखरज्जुरसिद्धसिद्धौ॥२॥
यो मत्स्यपुच्छमुखनिर्गतरज्जुयोगस्तस्मात् प्रभात्रितयचिन्हशिरोऽवगाहि।
वृत्तं लिखेन्न विजहाति हितस्य रेखां छाया कुलस्थितिमविमलवंशजा स्त्री॥३॥
अग्रेषु चिन्हानि विधाय वृत्तैर्मिथोऽवगाहैर्लिखितैस्तु तेभ्यः।
तिमी भवेतां मुखपुच्छसक्ते रज्जू प्रसार्यावन योर्युतिर्या॥४४॥
ततश्च चिन्ह त्रयसक्तवृत्तं यल्लिख्यते भाग्रपरिभ्रमः सः।
अतोऽन्यथा बाहुखमध्य भासां न्यासाद्भवेच्छंकुपरिभ्रमः सः॥४५॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शंकोर्दिशां मध्यगतस्य भाग्रं रेखां न जह्यात् खलु भाभ्रमः सः।
शंकुभ्रमेण भ्रमतश्च शंकोश्छायाग्रमाशागणयोगचिन्हम्॥४६॥''

श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय ४ में—

''छायात्रयग्रोद्भवमत्स्यमध्यस्पृक्सूत्रयोर्यत्र युतिः प्रदेशे।
याम्योत्तरा शंकुतलात् ककुप सा क्रमेण सौम्येतरगोलयोः स्यात्॥४॥
मत्स्योदरद्वयगसूत्र युतेश्च तस्या भाग्रत्रयस्पृगिति यद्भवतीह वृत्तम्।
छाया न तत्परिधिमुज्झति मध्यशङ्कोर्मध्यस्य भागमिव साधुगतिः कथंचित्॥५॥
शंकु प्रभाभ्रमणमण्डलयोस्तु मध्यं मध्यप्रभा भवति दक्षिणमुत्तरं वा।$\frac{१}{२}$।''

इदानीं धीयन्त्रं विवक्षुरादौ तत्प्रशंसामाह—

अथ किमु पृथुतन्त्रैर्धीमतो भूरियन्त्रैः स्वकरकलितयष्टेर्दत्तमूलाग्रदृष्टेः।
न तदविदितमानं वस्तु यद्दृश्यमानं दिवि भूवि च जलस्थं प्रोच्यतेऽथ स्थलस्थम्॥४०॥

धीयंत्र के लिए कहने से पूर्व उसकी प्रशंसा—

सूर्य-प्रभा टीका— वृहद् ग्रंथों में कहे हुए अनेकों यन्त्रों का लाभ बुद्धि तन्त्र के उपयोग से होता है। अतः अपने हस्त में पकड़ी हुई यष्टि के मूल भाग से आगे की ओर दृष्टि करके आकाशस्थ कोई भी वस्तु अविदित नहीं रहती अर्थात् उसका ज्ञान हो सकता है। बुद्धि के उपयोग से (भूलोक) आकाश, पाताल तथा स्थल पर स्थित कोई वस्तु दृश्य होकर उनके बारे में जाना जा सकता है।

अत्र प्रश्नः—

वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं तत्स्वान्तं तस्य समुच्छ्रयं च।
यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ धीयन्त्रवेदी वद किं न वेत्ति॥४१॥

प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— बांस के मूल तथा आगे अग्रभाग को देखकर, उससे दृष्टा के बीच (मध्य) की दूरी तथा (बांस) उसकी ऊँचाई अपने हस्तस्थ यष्टि से जो जान सकता है वह क्या नहीं जान सकता?

अथ यष्ट्या ध्रुववेधेन पलभामाह—

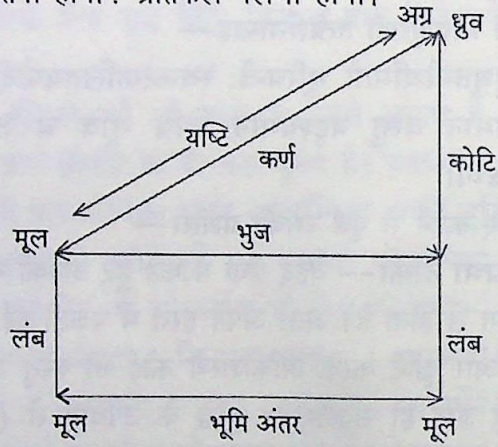
यष्ट्यग्रमूलसंस्थं विद्ध्वा ध्रुवमग्रमूलयोर्लम्बौ।
बाहुर्लम्बान्तरभूर्लम्बोच्छ्रायान्तरं कोटिः॥४२॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोटिर्द्वादशगुणिता बाहुविभक्ता पलप्रभा ज्ञेया।

यष्टि से ध्रुव के वेध द्वारा पलभा ज्ञान कहते हैं—

सूर्य-प्रभ टीका— समान की हुई भूमि पर स्थित होकर गणक को वेध करना चाहिये। यष्टि के अग्रभाग तथा मूल भाग की सीध में जब ध्रुव लगे ऐसे यष्टि को धारण करना चाहिये। इस स्थिति में यष्टि के मूल तथा अग्रभाग से पृथ्वी पर लम्ब डाले। इन लंबों की ऊंचाई का जो अन्तर है वह कोटि है तथा भूमि पर जो उन लंबों के पात बिन्दुओं का अन्तर है वह भुज है। और यष्टि प्रमाण कर्ण है। अब अनुपात किया कि इतनी बाहु में इतनी कोटि होती है तो बारह अंगल में कितनी होगी? प्राप्तफल पलभा होगी।



अनुपात से

$$\frac{\text{कोटि}}{\text{भुज}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$\text{या पलभा} = \frac{\text{कोटि} \times १२}{\text{भुज}}$$

यहाँ कोटि = लम्बान्तर तथा भुज = लम्ब मूलांतर = भूमि अंतर

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के यंत्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दिङ्मध्य स्थितमूला यष्टिर्नष्ट प्रभा त्रिगुणतुल्या।
धार्या तदीयलम्बकाष्ठांशा वोदिता भागाः॥४८॥
यष्टिस्त्रिज्या कर्णो लम्बो ना कृतिविशेषपदमनयोः।
दृग्ज्या छाया प्राक्परलम्बनिपातान्तरं बाहुः॥४९॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रागपराग्रासक्तं सूत्रं शङ्क्वन्तरं हतं सूर्यैः।
षष्ट्यलम्बविभक्तं यष्ट्यवलम्बेन विषुवद्भा॥५०॥"

इदानीं वंशादिवेधमाह—

विद्ध्वैवं वंशतलं दृष्ट्युच्छ्रायाहताद्बाहोः॥४३॥
कोट्या लब्धं ज्ञेयं स्ववंशमध्ये महीमानम्।
विद्ध्वाथो वंशाग्रं भूमानं कोटिसंगुणं भक्तम्॥४४॥
दोष्णा वंशेच्छ्रायो दृष्ट्युच्छ्रायेण संयुतो ज्ञेयः

उदाहरणम्—

पञ्चशक्राङ्गुला १४५ यष्टिरष्टषष्टिर्दृगुच्छ्रयः।
षट् करास्तलवेधो दोः कोटिः सप्तदशाङ्गुला
अग्रवेधे रसेशा ११६ दोः कोटिस्तुरगकुञ्जराः ८७।
वंशस्य यस्य तन्मानं चात्मवंशान्तरं वद।

अब बांस के वेध को कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— सीधे खड़े हुए बांस के तल को वेध करे। स्वयं तथा बांस के बीच अन्तर भूमि भुज है। दृष्टी की ऊँचाई कोटी है। दृष्टी तथा बांस के मूल से बद्ध सूत्र कर्ण है। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से यष्टि से वेध करने से लंबांतर = भुज तथा लम्बोच्चाई = कोटि। यह तलवेध करने से हैं इसी प्रकार अग्रवेध करने से दृष्टा की ऊँचाई जितना बांसमूल से ऊपर बांस पर चिन्ह लगावे। उसका दृष्टि से अन्तर भूत भूमिअंतर है। बांस के ऊपर पूर्वोक्त चिन्ह से ऊपर का भाग कोटि है। दृष्टि तथा बांस के अग्र भाग को बांधने वाला सूत्र कर्ण है। इस प्रकार इनसे अनुपात करे कि यदि वेध भुज में वेध कोटि प्राप्त होती है तो भूमि भुज में कितनी? प्राप्तफल चिन्ह के ऊपर बांस का खंड होगा। उसमें दृष्टा की ऊँचाई जोड़ने से पूरे बांस की ऊँचाई ज्ञात हो जावेगी।

वंशतल वेध करने पर—

$$\frac{\text{बाहु} \times \text{दृष्टा की ऊँचाई}}{\text{अपने तथा बांस के मध्य भूमिगत दूरी}} = \text{कोटि}$$

यहाँ अनुपात किया है कि यदि इतनी कोटि में इतना भुज प्राप्त होता है तो इतने दृग्ऊँचाई कोटि में कितनी होगी?

अथवा आत्मवंशांतर = $\frac{\text{बाहु} \times \text{दृष्टा की ऊँचाई}}{\text{कोटि}}$

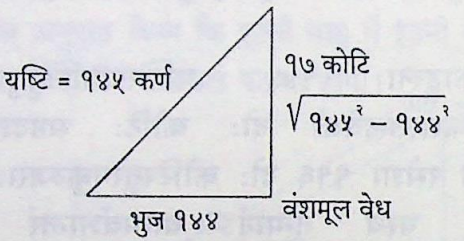
CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वंश अग्र का वेध करने से पूर्वोक्त प्रकार से–

$$\text{चिन्होपरि बांस खण्ड} = \frac{\text{वेध कोटि} \times \text{भुज भूमि}}{\text{वेध भुज}}$$

चित्र से स्पष्ट करते हैं। उदाहरण–

यष्टि = १४५, दृष्टा की ऊँचाई = ६८, अतः तल वेध से बाहु = १४४। यहाँ कोटि = १७ होती है।



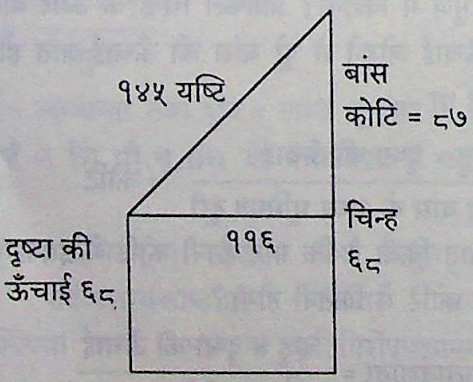
$$\text{कोटि} = \sqrt{१४५^२ - १४४^२} = १७$$

$$\text{चिन्होपरि वंशखंड} = \frac{\text{वेध कोटि} \times \text{भुज भूमि}}{\text{वेध भुज}}$$

$$\text{आत्म वंशांतर} = \frac{१४४ \times ६८}{१७} = ५७६$$

अग्रवेध से भुज = ११६, यष्टि = १४५

$$\text{अतः कोटि} = \sqrt{१४५^२ - ११६^२} = ८७$$



CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चिन्होपरिगत बांस खंड = $\frac{५७६ \times ८७}{११६}$ = ४३२

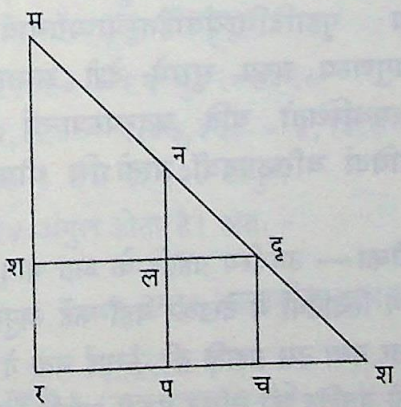
अतः बांस की समस्त लंबाई = ४३२+६८ =५०० हस्त

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यंत्राध्याय में पलभा, गृहोच्चई, वंशोच्चाई ज्ञान की अनेक विधियाँ दी हैं जो यष्टि यंत्र के द्वारा ज्ञात की जा सकती है। आचार्योक्त प्रकार से एक विधि दी है जो इस प्रकार है। यथा–

"लब्धोनो दृग्लम्बो दृग्लम्बादग्रलम्बके हीने।
अधिकेऽधिको गृहौच्च्यं तलाग्रके बिद्धया दृष्ट्या॥३५॥"

ब्र.गुप्तोक्त यह विधि इस प्रकार है—

इष्ट यष्टि की मूलस्थ दृष्टि से गृहादि के अग्र को वेध करना। यष्टि के मूल और अग्र से भूमि के ऊपर लम्ब डालना चाहिये। यष्टि के मूल से जो लम्ब होगा वह दृग्लम्ब कहलाता है। भू को लंबोच्च के अन्तर से गुणा कर लम्ब निपान्तर से भाग देने से जो लब्धि हो उसको दृग्लम्ब में से हीन करे यदि दृग्लम्ब से अग्रलम्ब न्यून हो तब। अग्रलम्ब से दृग्लम्ब न्यून हो तब जोड़ने से गृहादि/वंशादिं का औच्य (ऊँचाई) प्रमाण होता है। एवं तलवेध से भूमिज्ञान और अग्रवेध से औच्च्यज्ञान होता है।



चित्र में दृ न = यष्टि। दृ = दृष्टि स्थान। र म = गृहाद्योच्च। दृच = शर = दृष्ट्युच्छ्राय = दृग्लंब। न प = यष्ट् यग्र से लंब। न ल = लम्ब मूलांतर। प च = लंब निपांतरम् = दृल। तब मशदृ तथा नलदृ दोनों त्रिभुज सजातीय होने से अनुपात किया :—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

$$\frac{\text{लम्बान्तर} \times \text{भू}}{\text{लंब निपांतर}} = \text{म श}।$$

अतः म श + श र = म श + दृग्लंब = म र = गृहोच्च्य।

रच = दृश = आत्मगृहान्तर भूमि = भू।

यहाँ दृग्लंब से अग्रलंब अधिक है।

यह आचार्योक्त प्रकार ही है। अतः आचार्योक्त की उपपत्ति भी है।

अथ केवलाग्रवेधेनाह—

अग्रं विध्वोर्ध्वस्थः पुनरुपविष्टश्च तद्विद्ध्येत्॥४५॥
निजभुजभक्ते कोटी तदन्तरहतो दृगौच्च्यविश्लेषः।
भूमिर्वंशौच्च्यमतः पृथक् पृथक् पूर्ववज्ज्ञेयम्॥४६॥

बांस के केवल अग्रवेध से आत्मवंशान्तर तथा भूमि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— खड़े होकर बांस का अग्रभाग यष्टि के द्वारा वेध करे पुनः बैठ कर उसका वेध करे। प्राप्त कोटियों में स्व-स्व भुज का भाग देकर फलांतर में दृगोच्च अन्तर से भाग देकर आत्म वंशान्तर भूमि तथा पृथक्-पृथक् खड़े होकर तथा बैठकर वेध से संबंधित भुज कोटि से पूर्ववत् भूमान को कोटि से गुणा इत्यादि के द्वारा वंशोच्चाई वंशमान तुल्य ज्ञात करे।

अत्र प्रश्नः—

ऊर्ध्वस्थस्य गृहादिभिर्व्यवहितस्याप्यग्रमात्रं सखे
वंशस्य प्रगुणस्य यस्य सुसमे देशे समालोक्यते।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
मन्ये यन्त्रविदां वरिष्ठपदवीं यातोऽसि धीयन्त्रवित्॥४७॥

प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— ऊर्ध्वस्य ग्रहादि के अग्र भाग को सुसमान की हुई भूमि से अलग-अलग स्थितियों में देखकर यहाँ कहे अनुसार अवस्थित होकर यदि कोई उनका अन्तर तथा उस ग्रहादि की ऊँचाई बता दे तो हे मित्र, आचार्य कहते हैं कि वे उसको यंत्रविद की वरिष्ठ पदवी अर्थात 'धीयन्त्रवित्' (यन्त्रविद बुद्धिवाला) से अलंकृत मानेंगे।

उदाहरणम्—

इष्टयष्ट्योर्ध्वसंस्थेन वंशाग्रं विध्यता भुजः।
दृष्टश्चतुष्करोऽथान्ययष्ट्या खाङ्काङ्गुलः सखे॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निविष्टेन तथा कोटिरङ्गुलं वेधयोरपि।
आत्मवंशान्तरं ब्रूहि वंशोच्छ्रायं च वेधवित्॥

उदाहरण—

सूर्य-प्रभा टीका— खड़े होकर (ऊर्ध्व) वेध करने पर भुज ९६, कोटि १ तथा बैठकर वेध करने पर भुज ९०, कोटि १ होता है। इनमें इष्ट दृगुच्छाई ७२ तथा २४ क्रमशः है। आचार्य कहते हैं उक्त प्रकार से करने से भूमान २८८० हस्त तथा बांस की ऊँचाई ३३ हाथ होती है।

आचार्योक्त उदाहरण व्याख्यानुसार माना कि आत्मवंशान्तर भू है। अतः अनुपात किया कि यदि ऊर्ध्व वेध करने पर ९६ भुज में (१) इतनी कोटि प्राप्त होती है तो भु आत्मवंशांतर भुज में कितनी होगी? फल $\frac{\text{भु}}{९६}$। इसी प्रकार बैठकर वेध करने पर फल $\frac{\text{भु}}{९०}$ अतः—

$$७२ + \frac{\text{भु}}{९६} = २४ + \frac{\text{भु}}{९०}$$

$$\frac{६९१२ + \text{भु}}{९६} = \frac{२१६० + \text{भु}}{९०}$$

$$\frac{\text{भु}}{९६} + \frac{६९१२}{९६} = \frac{\text{भु}}{९०} + \frac{२१६०}{९०}$$

$$९०\ \text{भु} + ६२२०८० = ९६\ \text{भु} + २०७३६०$$

$$६\ \text{भु} = ६,२२,०८० - २,०७,३६० = ४,१४,७२०$$

$$\text{भु} = ४१४७२० \div ६ = ६९१२०\ \text{अंगुल}$$

एक हाथ = २४ अंगुल होता है। अतः—

$$\text{भु} = \frac{६९१२०}{२४} = २८८०\ \text{हस्त।}$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

$$\text{चिन्होपरिगत खण्ड} = \frac{२८८० \times १}{९०} = ३२$$

अतः वंशोच्छाई = ३२+१ = ३३ हस्त आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

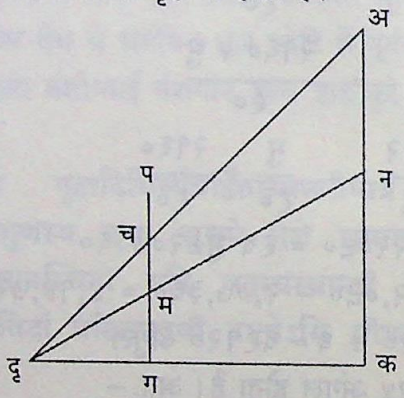
विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही का ग्रहोच्चानयन ब्र.गु. ने ब्रु.स्फु. सि. के यन्त्राध्याय में कहा। उसका विशेष रूप आचार्य ने कहा है। ब्रह्मगुप्तोक्त इस प्रकार है—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"मित्वा गृहैएदेशं विद्धेवष्ट शलाकया गृहं सर्वम्।
प्रथमशलाकाभक्तं मितं द्वितीय गुणितमौच्च्यम्॥३७॥"

इसका अर्थ इस प्रकार है—

जिस धरातल में लम्बरूप ग्रहादि है उसी धरातल में ऊर्ध्वाधराकाल अंगुलादि से अंकित एक शलाका स्थापित करे। दृष्टि को उसी धरातल में किसी स्थान पर रखकर नलिका या अन्य यष्टि से ग्रहादि का एक प्रदेश जिसकी ऊँचाई विदित है को वेध करे। नलिका वा अन्य यष्टि शलाका में जहाँ लगती है वहाँ से शलाका मूलपर्यंत प्रथम शलाका संज्ञक है। शलाका मूल दृष्टि स्थान का अन्तर यष्टि समझनी चाहिये। पुनः उसी स्थान स्थित दृष्टि से ग्रहाग्र को एक यष्टि से वेध करे। यह यष्टि पूर्व शलाका में जहाँ लगती है वहाँ से शलाका मूल पर्यन्त द्वितीय शलाका संज्ञक है। गृहादि के एक प्रदेश का प्रथम शलाकावश से गणना कर धारण करे। इष्ट शलाका से गृहोच्च को वेध कर द्वितीय शलाका समझे। तब ग्रह के प्रदेश के औच्च को द्वितीय शलाका से गुणा कर प्रथम शलाका से भाग देने से गृहोच्च होता है।



चित्र में– अ क = गृहादि की ऊँचाई। ग प = शलाका। दृ = दृष्टि स्थान। क न = ज्ञात ऊँचाई। क दृ = भूमि = भू। म ग = प्रथम शलाका। च ग = द्वितीय शलाका। ग दृ = दृष्टिसंज्ञक दृ। अब क न दृ तथा ग म दृ दोनों त्रिभुज सजातीय होने से अनुपात किया तो

$$\frac{\text{ज्ञात ऊँचाई} \times \text{दृ}}{\text{प्रथम शलाका}} = \text{भूमि} = \text{भू}$$

इसी प्रकार अकदृ तथा चगदृ दोनों त्रिभुज सजातीय होने से अनुपात किया–

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

$$\frac{\text{द्वितीय शलाका} \times \text{भू}}{\text{दृ}} = \text{गृहोच्च्वाई}$$

$$\text{अतः गृहोच्च्वाई} = \frac{\text{द्वितीय शलाका} \times \text{ज्ञात ऊँचाई} \times \text{दृ}}{\text{प्रथम शलाका} \times \text{दृ}}$$

$$= \frac{\text{द्वितीय शलाका} \times \text{ज्ञात ऊँचाई}}{\text{प्रथम शलाका}}$$

इस उदाहरण के साथ पूर्व श्लोक में कथित ब्र. गुप्तोक्त उदाहरण भी आचार्योक्त यहाँ कथित उदाहरण व श्लोक के अनुरूप है। अतः दोनों की सहायता से समझने का प्रयास करें।

अथ जलान्तर्वेधमाह—

एवं तोयेऽप्यौच्च्यं तत्र दृगौच्च्योनितं भवति।
किंवा यष्ट्या कोटी दृष्ट्युच्छ्रायो जलान्तरे बाहू॥४८॥

जल के अन्दर वेध—

सूर्य-प्रभा टीका— इसी प्रकार जल में खड़े हुए बांस की ऊँचाई में से उसकी दृगोच्चाई को कम करके यष्टि वेध द्वारा जलमध्य में कोटि, दृष्टि ऊँचाई तथा बाहु को ज्ञात करे।

अत्र प्रश्नः—

दूरस्थस्य न दूरगस्य यदि वादृष्टस्य दृष्टस्य वा
वंशस्य प्रतिबिम्बितस्य सलिले दृष्ट्वाग्रमात्रं सखे।
अत्रैव त्वमवस्थितौ यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
त्वां सर्वज्ञमतीन्द्रियज्ञमनुजव्याजेन मन्ये भुवि॥४९॥

प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— पास खड़ा दृष्टा यदि अपनी दूर दृष्टि पर दिखाई देते हुए अर्थात् बिना व्यवधान के जल में बांस के अग्रभाग को देखता है। हे मित्र! यदि ऐसे में तुम वहाँ स्थित हो तो उनकी अन्तर (दृष्टि तथा बांस की) दूरी तथा बांस की ऊँचाई बता दो तो आचार्य कहते हैं कि तुम मनुष्य शरीरधारी को वे संपूर्ण पृथ्वी पर सर्वज्ञ तथा अति इन्द्रिय ज्ञान से सम्पन्न मानेंगे।

उदाहरणम्—

दृष्टा चेत् त्र्यङ्गुला कोटिर्बाहुश्च चतुरङ्गुलः।
ऊर्ध्वस्थेनोपविष्टेन बाहुरेकादशाङ्गुलः॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोटिरष्टाङ्गुला तोये वंशाग्रं विध्यता सखे।
त्र्येकहस्तौ दृगुच्छ्रायौ वंशोच्च्यं चान्तरं वद॥

उदाहरण—

सूर्य-प्रभा टीका— जल में प्रतिबिंबित बांस की ऊर्ध्ववेध से कोटि = ३। भुज = ४ तथा बैठकर वेध करने से कोटि = ८ व भुज = ११ एवं दृष्टी ऊँचाई या क्रमशः ७२ व २४ होती हैं तो आत्मवंशांतर (८८ हस्त) तथा वंशोच्चाई (६३ हस्त) ज्ञात करके बताओ। ऊर्ध्ववेध तथा बैठकर वेध करने से यष्टि के भिन्न मान होते हैं।

उपपत्ति— समातल की हुई भित्ति (दीवार) पर एक लम्ब रेखा खेंचे। वह जल से समतल की हुई भूमि की भांति है। उसके एक छोर पर खड़ी रेखा खेंचे। वह वंश है। बांस के मूल से नीचे की ओर जाति हुई वंश प्रमाण की एक अन्य रेखा खेंचे। वह वंश प्रतिबिंब है। भू रेखा से ऊपरी छोर पर दृष्टि उच्छ्रित तुल्य और एक अन्य रेखा खेंचे। दृष्टि ऊँचाई से वंश प्रतिबिंब तक जाने वाली एक कर्ण रेखा खेंचे। यह कर्ण रेखा भूरेखा से जहाँ लगे (काटे) उस स्थान पर जल में वंशाग्र पर दृष्टा देखता है। इस प्रकार जल के दोनों ओर दो त्रिभुज बनते हैं। वहाँ एक में जल वंशमूल का अंतर बाहु है। वंश प्रतिबिम्ब कोटि है। कर्ण का नीचे का भाग कर्ण है। अन्य त्रिभुज में आत्मजलान्तर बाहु है। दृष्टि ऊँचाई कोटि है। कर्ण का ऊर्ध्वखण्ड कर्ण है। ये दोनों त्रिभुज परस्पर सजातीय है जो यष्टि वेध करने से भुज कोटि से वे सजातीय हैं (तुल्य हैं)। किन्तु यहाँ जितनी दृष्टि की ऊँचाई है उसको बांस की ऊँचाई में से हीन करना युक्तियुक्त है। प्रतिबिंब उसके अधोमुख होने से दृग्गोच्चति सहित वह नाप आती है। अतः दृष्टि ऊँचाई को बांस की ऊँचाई में से घटाना है। इस प्रकार सभी उपपन्न होता है। उदाहरण के अंकों द्वारा पूर्व श्लोक के उदाहरण की भांति गणना करके आत्म वंशांतर ८८ हस्त तथा वंशोच्चाई ६३ हस्त ज्ञात कर सकते हैं।

किंवा यष्ट्येत्यस्योदाहरणम्—

षडङ्गैरमरैस्तुल्यान्यङ्गुलान्यथवा क्रमात्।
आत्मतोयान्तरं दृष्ट्वा वंशौच्च्यं चान्तरं वद॥

सूर्य-प्रभा टीका— ऊर्ध्वस्थान से जलान्तर = ९६। बैठकर वेध करने से जलान्तर = ३३। दृष्टि ऊँचाई क्रमशः ७२ तथा २४। इनसे गणना करने पर भूभान = ८८ हस्त तथा वंशोच्चति = ६३ प्राप्त होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यह आचार्योक्त (धी यंत्र) बुद्धि यंत्र है।

अथ स्वयंवहमाह—

लघुदारुजसमचक्रे समसुषिराराः समान्तरा नेम्याम्।
किंचिद्वक्रा योज्याः सुषिरस्याधः पृथक्ः तासाम्॥५०॥
रसपूर्णे तच्चक्रं द्व्याधाराक्षस्थितं स्वयं भ्रमति।

स्वतः भ्रमण शील (स्व चलित) यंत्र को कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— लघु काष्ठमय गांठ तथा कील रहित खरादी हुई लडकी से चक्र यन्त्र बनावे। जिसके आराओं में समान छिद्र हो तथा समानान्तर हो। उस चक्र यन्त्र के मुद्रित छिद्र हैं तथा आधी पारे से पूर्ण परिधि है। इस यन्त्र के मध्य में एक तिर्यक् कील लगानी चाहिये। चक्र को शाण चढ़ाने वाले चक्र की तरह दो आधार पर रखना चाहिये क्योंकि आराओं के छिद्र में पारा ऊपर और नीचे घूमता है, इसलिए उससे खिंचता हुआ चक्र स्वतः (बराबर) अनवरत भ्रमण करता है।

आचार्य ने चक्र में सम प्रमाण के समछिद्र के समान तौल के समानान्तर पर आराओं को नेमी (परिधि) में जोड़कर नदी के (पानी बहने के घुमाव) हिलोड़ की तरह एक ही ओर सभी को जोड़ने के लिए कहा है। फिर उन आराओं के छिद्रों को पारे से आधा ही भरना चाहिये जिससे मुद्रित आरा के अग्र भाग वाला वह चक्र शाण चढ़ाने के चक्र के सदृश दो आधारों पर स्थित होकर स्वतः घूमता है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.सफु. सिद्धान्त के यंत्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"लघुदारुमयं चक्रं समसुषिरान्तर पृथगराणाम्।
अर्धोन रसेन पूर्णे परिधौ संश्लिष्टकृतसन्धिः॥५३॥
तिर्यक्कीलोमध्ये द्व्याधारस्थोऽस्य पारदो भ्रमति।
छिद्राण्युर्ध्वमधोऽतश्चक्रमजस्रं स्वयं भ्रमति॥५४॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"श्रीपर्णीदारुमयं चक्रं सदरं सुनेभि सन्नाभि।
अर्धं पारदपूर्णं युक्त्याराणां स्वयं भ्रमति॥१८॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथान्यदाह—

उत्कीर्य नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम्॥५१॥
तदुपरि तालदलाद्यं कृत्वा सुषिरे रसं क्षिपेत् तावत्।
यावद्रसैकपार्श्वे क्षिप्तजलं नान्यतो याति॥५२॥
पिहितच्छिद्रं तदतश्चक्रं भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम्।

अब इस यंत्र के लिए विशेष बात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— यंत्र की परिधि को सभी ओर से भ्रमयंत्र (खराद यंत्र) से इस प्रकार ठीक करना चाहिये कि छिद्र की ऊँचाई और विस्तार दो अंगुल रह जाय। इसके पश्चात् उस छिद्र के ऊपर ताल पत्रादि को चिपका देवे। चक्र को दो आधार अक्ष (आधार धुरि) पर स्थापित करके ऊपर परिधि में ताल पत्र को वेध कर छिद्र में पारे को तब तक भरना चाहिये जब तक छिद्र का नीचे का भाग पारे से मुद्रित (छिप) हो जाय। फिर एक (बगल) पार्श्व में जल डाले, जल से पारा गुरुत्व के कारण चारों तरफ नहीं निकल सकता। अतः वह चक्र जिसमें छिद्र मुद्रित है जल से खिंच कर स्वयं भ्रमण करता है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"छिद्रे स्वधिया क्षिप्ता समं यथा पारदं भ्रमति।
कालासममिष्टमानैश्चक्रसमुत्तानमूर्ध्व वा॥५५॥"

अथान्यदाह—

ताम्रादिमयस्याङ्कुशरूपनलमस्याम्बुपूर्णस्य॥५३॥
एकं कुण्डजलान्तर्द्वितीयमग्रं त्वधोमुखं च बहिः।
युगपन्मुक्तं चेत् कं नलेन कुण्डाद्बहिः पतति॥५४॥
नेम्यां बद्ध्वा घटिकाश्चक्रं जलयन्त्रवत् तथा धार्यम्।
नलकप्रच्युतसलिलं पतति यथा तद्घटीमध्ये॥५५॥
भ्रमति ततस्तत् सततं पूर्णघटीभिः समाकृष्टम्।
चक्रच्युतं तदुदकं कुण्डे याति प्रणालिकया॥५६॥

और अन्य विशेष बात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ताम्बा आदि धातुमय अंकुशरूप टेढ़ा किये हुए जल से भरे हुए नल के एक सिरे को जल पात्र में तथा दूसरे सिरे को बाहर, यदि एक ही समय में खोल देते हैं तब सम्पूर्ण जल जो पात्र में है नल के द्वारा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बाहर गिर जाता है। जैसे कमल के नल को जलकुण्ड में छोड़ने से जल संपूर्ण छिद्र के एक अग्र को अधोमुख भाण्ड (जलपात्र) से बाहर यदि शीघ्र धरते हैं तो सम्पूर्ण भाण्डस्थित जल नल के द्वारा बाहर चला जाता है। परिधि में घटी को बांध कर जल यन्त्रवत् दो आधाराक्ष संस्थित इस तरह रखना चाहिये जिससे नलक से गिरा हुआ जल उसके घटी मुख में पतित हो। इस प्रकार पूर्ण घटी से खिचे हुए (आकृष्ट) उसके भ्रमण को कौन रोक सकता है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु. सि. के यन्त्राध्याय में आचार्यात्त कहा है। यथा—

"कीलस्योपरिगामिनि तत्पर्यय सूत्रके धृतमलाबु।
प्राग्वन्नलके प्रक्षिप्य नाडिका स्रवति पानीये॥५६॥"

इदानीमन्येषां स्वयंवहमुपहसन्नाह—

यदधोरन्ध्रनलं तत् सापेक्षत्वात् स्वयंवहं ग्राम्यम्।
चतुरचमत्कारकरी युक्तिर्यन्त्रं नहि ग्राम्यम्॥५७॥
एवं बहुधा यन्त्रं स्वयंवहं कुहकविद्यया भवति।
नेदं गोलाश्रितया पूर्वाक्तत्वान्मयाप्युक्तम्॥५८॥

अब स्वचलित अन्य यन्त्रों के लिए कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— नीचे छिद्र से सम्पूर्ण जल समाप्त (निकल जाने) हो जाने पर जल पात्र में जल फिर से भरना पड़ता है अतः यह स्वचालित यंत्र ग्राम्य यंत्र है। यह चमत्कारकारी युक्ति का यंत्र नहीं होने से यह ग्राम्य यंत्र है। इस प्रकार के स्व चलित अनेक यंत्र है जो जादू की विधाओं के हो सकते हैं। लेकिन वे गोलाश्रित नहीं है। उन यंत्रों का उल्लेख आचार्य ने पूर्व में समय-समय पर कर दिया है जिनको अन्य आचार्यों ने पूर्व में स्वग्रंथों में कहा है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के यन्त्राध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

 CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ ऋतुवर्णनम्

आचार्य ने यहाँ अपने काव्य पाण्डित्य का प्रदर्शन जरूर किया है लेकिन इससे ग्रंथ में ऋतुसंबंधी विवेचन आवश्यकता के अनुसार नहीं हो सका है। आचार्य ने ग्रंथ में स्थान-स्थान पर गर्वभरे शब्दों का प्रयोग कर अपने पूर्वज गुरुओं का अपशब्दों द्वारा अपमान किया है। यहाँ भी अपने गर्विले स्वभाव का प्रदर्शन आचार्य ने किया है। श्रीमान कमलाकरभट जी ने भी आचार्य द्वारा प्रदर्शित काव्य पाण्डित्य को उचित नहीं बताया है। उन्होंने स्वकृतग्रंथ 'सिद्धान्त तत्त्व विवेक' में इसके लिए इस प्रकार कहा है–

"त एव कवयो येऽत्र गोलतत्त्वार्थकल्पकाः।
कुकाव्य पाठका एव कवयो न कथञ्चन॥१८॥
शृङ्गारपदलालित्यग्रन्थासक्तया विषंत्विदम्।
वासनाशास्त्रमज्ञानां, चामृतं तद्विदां सताम्॥१९॥
प्राचीनरीतिभिन्नेऽस्मिन् मूर्खो निन्दां करिष्यति।
न दुःखं तेन मे यस्माज्ज्ञातारो कहवो भुवि॥२०॥

– उपसंहाराधिकार

इसकी वासनाभाष्य में श्री गङ्गाधर शर्मा ने कहा है कि जो स्वर्णकार आभूषण निर्माण में तो अनभिज्ञ हो और अन्य शिल्पकला में निपुण हो अथवा अपने आपको निपुण बतावे वह अपने विषय के शिल्प का ज्ञाता नहीं कहा जा सकता है। आचार्य ने इस ऋतुवर्णन के काव्य कला में शार्दूलविक्रीडित पहलापद्य, दूसरापद्य द्रुतविलम्बित, तीसरा मिश्रोपजात्य, चतुर्थ वंशस्थ, पञ्चम मालिनीछन्द, छठा तथा सात्वाँ वसन्ततिलक, आठवाँ मालिन्या, नवाँ वंशस्थ तथा १३ से १५ मालिनीछन्द पद्य कहे हैं। गणित संबंधी विषय तथा उसके ज्ञाता के लिए शृंगाररस की महत्वता नहीं है। गणित में कोई भी बात जितनी स्पष्टता से कही जावे वह उतनी ही प्रशंसनीय होती है। कोई भी गणित शास्त्र पूर्व में शृङ्गाररस की कविताओं के रूप में नहीं रचा गया है।

वसन्त ऋतु से लेकर चैत्रादि मास को ही परिगणित किये जाते हैं। मधु और माधव को लेकर वसन्त ऋतु, शुक्र और शुचि को लेकर ग्रीष्म ऋतु, नभ

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

और नभस्य को लेकर वर्षा ऋतु, इष और ऊर्ज को लेकर शरत् ऋतु, सह और सहस्य को लेकर हेमन्त ऋतु, तप और तपस्य को लेकर शिशिर ऋतु होती हैं। इन सब वाक्यों में ऋतु शब्द में द्विवचन लगा है। ये सब ऋतु के अवयव के अभिप्राय हैं। ये ऋतुयें क्रमानुसार आवर्तित होती हैं तथापि संवत्सर के उपक्रम के रूप में वसन्त को पहला ऋतु कहा गया है। ऋतुओं का मुख वसन्त है। मनुवाक्यों में वसन्त से ऋतुओं का प्रारम्भ हुआ है। ये वसन्तादि ऋतु दो प्रकार की होती है– चान्द्र तथा सौर। चैत्रमास से लेकर चान्द्र ऋतु होती है। ''मधुश्च माधवश्च'' वाक्य से यह स्पष्ट है। यहाँ मधु प्रभृति शब्द चैत्र प्रभृति शब्दों का पर्याय है। विद्वान लोग चैत्रमास को मधु, वैशाख को माधव, ज्येष्ठमास को शुक्र, आषाढ़ मास को शुचि, श्रावणमास को नभ, भाद्रपद मास को नभस्य, आश्विन मास को इष, कार्त्तिक मास को ऊर्ज मार्गशीर्ष मास को सह, पौषमास को सहस्य, माघमास को तप, फाल्गुन मास को तपस्य कहते हैं। आचार्य ने इस अध्याय में ऋतुओं के मासों के लिए इन्हीं नामों में से कुछ का प्रयोग किया है।

चैत्र प्रभृति मासों को लेकर वसंत प्रभृति ऋतुओं की प्रवृत्ति होती है। चन्द्रगति के अनुसार चैत्र प्रभृति मासों की प्रवृत्ति होने से उनको चन्द्र कहते हैं।

सौर गतिअनुसार मीन और मेष के सूर्य में वसन्त, वृषभ मिथुन के सूर्य में ग्रीष्म, कर्क-सिंह के सूर्य में वर्षा, कन्या तुला के सूर्य से शरद ऋतु तथा वृश्चिक धनु के सूर्य में हेमन्त ऋतु होती है तथा कुंभ मकर में शिशिर ऋतु होती है।

आचार्योक्त काव्य पद्यों का अर्थ हम करके बताते हैं जिससे स्पष्ट हो जावेगा की आचार्योक्त काव्य पद्यों से ऋतुओं के संबंध में स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता।

अथ ऋतुवर्णनमाह—

उत्फुल्लत्रवमल्लिकापरिमलभ्रान्तभ्रमद्भ्रामरे
रे पान्थाः कथमव्यथानि भवतां चेतांसि चैत्रोत्सवे।
मन्दान्दोलितचूतनूतनघनस्फारस्फुरत्पल्लवै-
रुद्वेलत्रववल्लरीष्विति लपन्त्युच्चैः कलं कोकिलाः॥१॥

सूर्य-प्रभा टीका— मन्द-मन्द आन्दोलित आम्रवृक्षों के सघन प्रसार से स्फुरित (चमकते) पल्लवों से उद्वेलित (कम्पित) हो रही नव वल्लरियों पर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बैठे कोकिल ऊँचे स्वर में (यही) कूंजन कर रहे हैं कि– 'हे (प्रियाओं से बिछुड़े) पथिकजनों! फूलों से लदी नवमल्लिका के परिमल (पराग) से भ्रान्त होकर उड़ते भ्रमर-समूह से सुशोभित (इस) चैत्रोत्सव (वसन्त ऋतु) में भ तुम लोगों के चित्त व्यथारहित कैसे हैं?

(अनुप्रास अलंकार) (शार्दूलविक्रीडित)

स्वकुसुमैर्मलिनामिव मालतीमवहसन्ति वसन्तजमल्लिकाः।
उपवनं विनिवारयतीव ताः किसलयैर्मलयानिलकम्पितैः॥२॥

सूर्य-प्रभा टीका— वसन्त ऋतु में खिले हुए अपने नव कुसुमों से वासन्ती मल्लिका लताएँ पुष्परहित (हो जाने वाली) मालती लताओं का मानो उपहास कर रही हैं– यह देखकर पुष्पोद्यान मलयानिल से कम्पित हो रहे किसलयों (नव पल्लवों) के बहाने से उन्हें (ऐसा करने से) रोक रहा है।

(उत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास अलंकार)

विहाय सौधं तृणकुड्यमण्डपे प्रसिच्यमाने सलिलैः समन्ततः।
शुचौ रमन्ते विरलं विलासिनः प्रियाजनैः सीकरसेचनोन्मुखाः॥३॥

सूर्य-प्रभा टीका— (ग्रीष्म ऋतु में) अपने भवनों को छोड़कर चारों ओर से पानी से सींचे जाते हुए फूस के छप्परों वाले मंडपों में बैठकर विलासी लोग प्रियाओं के साथ (फव्वारों के) जल-बिन्दु-सिंचन की क्रीडा की ओर (अधिक) उन्मुख रहते हैं और (परस्पर) विरल (अनमने) भाव से रमण करते हैं।

(अनुप्रास अलंकार)

निदाघदाहार्तिविघातहेतवे वनाय कामोच्छ्रितचूतकेतवे।
व्रजन्ति वापीजलकेलिलालसाः शुचौ रतिस्वेदगलज्जलालसाः॥४॥

सूर्य-प्रभा टीका— रति-श्रम से टपकते स्वेद-बिन्दुओं के कारण सुस्त हो जाने के कारण बावड़ियों के (शीतल) जल में क्रीड़ा की लालसा रखने वाले विलासी युवक-युवतियाँ विहार के लिए उस वन में चले जाते हैं, जो ग्रीष्म की कड़ी धूप के दाह से उत्पन्न व्याकुलता को नष्ट करने के हेतु (कारण) हैं और अत्यन्त सघन ऊँचे आम्रवृक्ष की पताकाओं (चिह्नों) वाले हैं।

(अनुप्रास और पादयमक की शब्दालंकार संसृष्टि)

मदनदहनखिन्नामागतेऽप्येत्य काले
परिमलबहलानां मालतीनां नदीनाम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अदय दयित सिञ्चस्यात्मदृग्वारिणा किं
परिमलबहलानां मा लतीनां न दीनाम्॥५॥

सूर्य-प्रभा टीका— अत्यधिक परिमल (गंध) से महकती मालती लताओं और अत्यधिक मात्रा में चारों ओर फैले मल से युक्त (उफनती) नदियों का समय (वर्षाकाल) आ जाने पर (परदेस से) भी घर आकर हे दयाहीन प्रियतम (दयित)! तुम काम की ज्वाला से तप्त, विरह दुःख से हीन और सौरभ की बहुलता से महकती मालती जिसे सूर्यकिरणों की तरह जलाती हैं ऐसी मुझको अपने दर्शन रूपी जल से क्यों नहीं सींचते? (मुझ विरहिणी के काम-तप्त हृदय को इस वर्षाकाल में घर आकर अपने दर्शन से ही शीतलता प्रदान क्यों नहीं करते?)

अनुप्रास, चरणयमक एवं शब्दश्लेष की शब्दालंकार संसृष्टि)

उच्चैर्विरौति हि मयूरकुलं यदम्ब
मन्दं कदम्बमकरन्दविमिश्रितश्च।
वातः प्रवाति पतिरेति न तेन मन्ये
निर्घ्राणनिर्घृणविकर्णविहृत्त्वमस्य॥६॥

सूर्य-प्रभा टीका— हे माता! वर्षा ऋतु है। मोरों का झुंड ऊँचे स्वर में झूमकर केका ध्वनि कर रहा है। प्रफुल्लित कदम्ब-पुष्पों के मकरंद-रस से सराबोर (सुगंधित) पवन भी मंद-मंद बह रहा है। फिर भी मेरा पति (परदेस से लौटकर) यदि (घर) नहीं आता है तो मुझे लगता है कि वह गंध-ग्रहण (घ्राण) की शक्ति से रहित है, दयाभाव से रहित (निष्ठुर) है, बहरा है और हृदयहीन है।

(अनुप्रास) (वितर्क)

एवं विधं विरहिणी विरहेण खिन्ना
भिन्नाञ्जनच्छविघने गगने घनर्तौ।
मत्वा प्रियं तमदयं हृदयं प्रविष्टं
ब्रूते सपेशलमलं परिहासमिश्रम्॥७॥

सूर्य-प्रभा टीका— वर्षाकाल है। घुटे हुए अंजन जैसी सघन छवि से युक्त गगन है। ऐसे समय प्रिय-विरह से व्यथित प्रोषित पतिका विरहिणी (परदेस में होते हुए भी अपने निर्दय प्रिय को अपने हृदय में प्रविष्ट मानकर) इस प्रकार के (पिछले श्लोक में कहे गये) वचन बड़े मधुर ढंग से, हँसी-ठिठोली करते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हुए कहती है (ताकि उसका हृदयास्थित प्रिय कहीं सुन भी ले तो नाराज़ न हो)।

(अनुप्रास अलंकार)

स्वतनुजवनराज्या पुष्पवत्याश्लिषन्त्या
ह्यनुचितकृतसङ्गोऽस्मीति शैलोऽनुतप्तः।
निशि शशिकरचञ्चन्निर्झरैरश्रुकल्पैः
शरदि हृदिजखेदस्वेदवान् रोदितीव॥८॥

सूर्य-प्रभा टीका— 'मेरी ही तनुजा (बेटियाँ) ये लता पंक्तियाँ, जो फूलों से सजी हैं, इस 'पुष्पवती' (रजस्वला) अवस्था में मुझसे ही आलिंगन कर रही हैं, अतः इनसे अनुचित (निन्दनीय/शास्त्रविरूद्ध) संग जैसा पाप मुझसे हो गया है, इस विचार से (पश्चात्ताप के कारण) अनुतप्त और हृदय में उत्पन्न असह्य दुःख से जन्मे स्वेद से सिक्त यह शैल (शिलावान् या शीलवान्) (पर्वत) शरद्ऋतु की रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से प्रतिबिम्बित होकर झलमिलाते झरनों के आँसुओं के समान जल-कणों के बहाने से मानों रूदन कर रहा है।

(अनुप्रास, श्लेष एवं उत्प्रेक्षालंकार)

सहस्यकाले बहुशस्यशालिनीं चितामवश्यायकमौक्तिकोत्करैः।
प्रहृष्टपुष्टाखिलगोकुलामिलां विलोक्य हृष्यन्त्यधिकं कृषीवलाः॥९॥

सूर्य-प्रभा टीका— हेमन्त (सहस्य) ऋतु में तुषार (हिम) कण-रूपी मोतियों की लड़ियों से खचित (आच्छादित) विपुल धान्य से समृद्धिशालिनी और अत्यंत हर्षित, हृष्ट-पुष्ट समस्त गो-समूहों (गाय-बैल-बछड़ों) से भरी-पूरी धरती को देखकर किसान अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं (खुशी से फूले नहीं समा रहे हैं)।

(अनुप्रास, रूपक अलंकार)

अरुणनीलनिमीलितपल्लवं प्रचुरफुल्लसमुल्लसनैः श्रियम्।
वहति कांचन काञ्चनकाननं नवतरां नितरां शिशिरागमे॥१०॥

सूर्य-प्रभा टीका— शिशिर ऋतु के आगमन पर लाल-नीले रंगों की मिश्रित छटा वाले पल्लवों से सुशोभित कचनारों का कानन (या सुवर्ण का वन) प्रचुर मात्रा में खिले पुष्पों के समुल्लास के कारण कोई अत्यन्त अद्भुत और नूतन शोभा को धारण कर रहा है।

(तृतीय चरण में यमक। अन्यत्र अनुप्रास)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपटुतिग्ममरीचिमरीचिभिर्नहि तथा शिशिरे शिशिरक्षतिः।
निशि यथोष्मलपीनघनस्तनी भुजनिपीडनतः स्वपतां नृणाम्॥११॥

सूर्य-प्रभा टीका— शिशिर ऋतु में ताप देने (या शीत-शमन करने में) असमर्थ (दुर्बल) सूर्य की किरणों से शिशिर (ठंड) की वैसी क्षति नहीं हो पाती, जैसी (ठंडी) रातों में सोये हुए पुरुषों को गरमाहट देने वाले (ऊष्मल), पुष्ट, पीन (स्थूल) और घने उरोजों वाली युवती प्रिया की भुजाओं के प्रगाढ आलिंगन (निपीड़न) से होती है।

पूर्वार्ध में यमक अलंकार।

ऋतुव्यावर्णनव्याजादीषदेषा प्रदर्शिता।
कविता तद्विदां प्रीत्यै रसिकानां मनोहरा॥१२॥

सूर्य-प्रभा टीका— ऋतुओं के स्वरूप-वर्णन के बहाने से मैंने काव्यतत्त्वज्ञों की प्रीति (प्रसन्नता) के लिए रसिकों की मनोहारिणी कविता की यह थोड़ी-सी बानगी ११ पद्यों में प्रदर्शित की है।

सरसमभिलपन्ती सत्कवीनां विदग्धानव-
रतरमणीया भारती कामितार्थम्।
न हरति हृदयं वा कस्य सा सानुरागा
नवरतरमणी या भारती कामितार्थम्॥१३॥

सूर्य-प्रभा टीका— सत्कवियों की सरस और अपरिमित अर्थ का कथन करने वाली, अनवरत (नित्य) रमणीय और सहज विदग्ध (प्रौढ) ऐसी कौन-सी वाणी है जो किसी का हृदय नहीं हर लेती? (अर्थात् सबका मन हर लेती है।) ऐसे ही अनुरागमयी, नव-सुरत में रमणयोग्य ऐसी कौन-सी भरतसंबंधिनी (भारती) नर्तकी है जो सरस और अभीष्ट कथन करके किसी का मन आकर्षित नहीं करती?

(दोनों प्रकार की भारतियाँ (वाणी और नर्तकी) रसिकजनों के हृदय हर लेती हैं।)

न भवति हृतचित्तो वाचमाकर्ण्य रम्यां
परभृतसरसां ना कोमलां सत्कवीनाम्।
सततमुपगतानां साम्बुजैर्वा पयोभिः
परभृतसरसां नाकोऽमलां सत्कवीनाम्॥१४॥

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार कमलों से सुशोभित जल से परिपूर्ण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सरोवरों के निरंतर समीप रहने वाले जल विहंगों की सुकोमल कूंजनमयी बोली को सुनकर किसका चित्तहरण नहीं होता (अर्थात् जलपक्षियों का कलरव सबका चित्त हर लेता है।) उसी प्रकार कौन ऐसा मनुष्य है जो सत्कवियों की रमणीय, कोकिल-कूंजन से भी अधिक सरस और निर्मल (दोषरहित) काव्य-वाणी को सुनकर प्रसन्नचित्त नहीं हो जाता? अर्थात् श्रेष्ठ कवियों की रम्य, सरस और निर्दोष कविता सबका मन हर लेती है।

त्रिदिवमधरयन्तस्तीरपङ्केन नानारुचि-
रसिकतया वाश्लेषिताङ्गैः सुवृत्तैः।
कृतिन इह रमन्ते रम्यसारस्वतौघे रुचि-
रसिकतया वा श्लेषिताङ्गैः सुवृत्तैः॥१५॥

सूर्य-प्रभा टीका— इस लोक में कृती (पुण्यवान्) पुरुष सुरम्य सरस्वती (शास्त्रवाणी) के प्रवाह में, उसके तीर के पंक की अनेक कान्तियों से झिलमिलाती सिकता (बालू) से लिपटे अंगों और अच्छे आचरणों से स्वर्ग को तुच्छ सिद्ध करते हुए क्रीडा करते हैं–

जैसे सुकृती (रससिद्ध) कविगण अपनी मौलिक रुचि-रसिकता के साथ सुन्दर छंदों में निबद्ध तथा श्लेषयुक्त काव्यांगों द्वारा रमणीय सारस्वत प्रवाह (काव्योक्ति-सलिलराशि) में रमण करते हैं।

(१३,१४,१५वें पद्यों में श्लेष, पादयमक एवं अनुप्रास अलंकारों की शब्दालंकार-संसृष्टि। मालिनी छंद)

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के ऋतुवर्णनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी टीका सम्पन्न॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ प्रश्नाऽध्यायः

अथ प्रश्नाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनं तत्प्रशंसां चाह—

प्रौढिं प्रौढसभासु नैति गणकः प्रश्नैर्विना प्रायशोऽ-
तस्ताम् वच्मि विचित्रभङ्गिचतुरप्रीतिप्रदानाय यान्।
आकर्ण्यापि सुवर्णवर्णवदनं वैवर्ण्यमेति क्षणात्
तस्याखर्वकुगर्वपर्वतशिरः प्रौढ्याधिरूढोऽत्र यः॥१॥
पाट्या च बीजेन च कुट्टकेन वर्गप्रकृत्या च तथोत्तराणि।
गोलेन यन्त्रैः कथितानि तेषां बालावबोधे कतिचिच्च वच्मि॥२॥

अब प्रश्नाध्याय की व्याख्या करते हैं। आरम्भ में इस अध्याय का प्रयोजन तथा उसकी प्रशंसा के संबंध में कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ज्योतिष की परिपक्व बुद्धि वाला गणक किसी भी ज्योतिषज्ञों की सभा में प्रश्न ज्ञान के बिना प्रौढ़ ज्योतिष विज्ञ नहीं कहला सकता। इसलिए आचार्य विचित्र-विचित्र प्रकार के प्रश्नों को चतुर बुद्धिवालों को प्रसन्नता प्रदान करने के लिए यहाँ कहेंगे। इन प्रश्नों को सुन कर जिन ज्योतिषविदों के चहरे (तथा शरीर) की कांति सुवर्ण की आभा के समान है उनके चेहरे का रंग (भाव) क्षणभर में क्षीण हो जाता है तथा उनका भी जो ज्योतिष के ज्ञान में अपंग समान तथा छोटे कद के होते हुए भी (जिनका) कुत्सित गर्व अर्थात् घमंड से पर्वत के समान सिर ऊँचा करके प्रौढ़ ज्योतिषि के पद पर आरूढ़ है।

गोल व यन्त्रों, पाटी गणित, बीजगणित और कुट्टक तथा वर्ग प्रकृति से संबंधित कुछ प्रश्नों तथा उनके उत्तरों को यहाँ कहेंगे।

अथ बुद्धमतः प्रशंसामाह—

अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते॥३॥
वर्गं वर्गपदं घनं घनपदं संत्यज्य यद्गण्यते
तत् त्रैराशिकमेव भेदबहुलं नान्यत् ततो विद्यते।
एतद्यद्बहुधास्मदादिजडधीधीवृद्धिबुद्ध्या बुधै-
र्विद्वच्चक्रचकोरचारुमतिभिः पाटीति तन्निर्मितम्॥४॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नैव वर्णात्मकं बीजं न बीजानि पृथक् पृथक्।
एकमेव मतिर्बीजमनल्पा कल्पना यतः ॥५॥

अब बुद्धिमान व्यक्ति की प्रशंसा में कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रैराशिक, पाटीगणित, बीज गणित और विमल बुद्धि गणित है। सूर्य सिद्धान्तादि शास्त्रों में पाटी गणित, बीज गणित का प्रतिपादन क्यों नहीं किया है? जो मनुष्यकृत है उसके प्रतिपादन के लिए कहते हैं कि सुबुद्धी वाले के लिए क्या अज्ञात है जो मन्दबुद्धि है उनके लिए कहा जाता है। मयासुर प्रभृति जैसे बुद्धिमानों के लिए क्या अज्ञात होता है? अतः उनके लिए पाटी गणित आदि विषय अज्ञात नहीं थे। अतः आर्ष ग्रंथों में उन विषयों को नहीं कहा गया। इस मूल प्रश्न के प्रतिपादन के लिए कहते हैं कि मनुष्य ऐसे लोगों की अपेक्षा मन्द बुद्धि है अतः उनकी बुद्धि की वृद्धि के लिए पाटी, बीज गणित आदि आचार्य कह रहे हैं। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है।

वर्ग, वर्गपद, घन, घनपद आदि वर्णात्मक नहीं है अतः बीज से विशुद्ध करते हैं। बीजगणित को बुद्धि के द्वारा विविध वर्णों की सहायता से करते हैं। मनुष्यों के लिए पाटी, बीज, कुट्टक वर्ग प्रकृति, गोल, यन्त्र आदि ग्रंथ विमल बुद्धि के द्वारा प्रश्न श्रवणमात्र से उनके उत्तर प्रतिपादित करते हैं। जो मंद बुद्धि हैं वे जैसा सुनने से ग्रहण करता है उसके अर्थ को उत्तर में प्रतिपादित करता है। पाटी, बीज, वर्ग प्रकृति, कुट्टक आदि के दृष्टांतों के द्वारा ग्रह गणित प्रतिपादित कर अवम शेष आदि राशि से दूसरी राशि ज्ञात करते हैं। ग्रह गणित गोल में जो प्रतिपादित किये हुए प्रश्न हैं उनको पुनः प्रतिपादित करने के लिए केवल प्रश्नाध्याय का यहाँ पाठकों के उपयोग के लिए कहा जा रहा है।

त्रैराशिक अनेक भेद युक्त हैं उनको अन्य किसी गणित के द्वारा ज्ञात नहीं किया जा सकता।

अथ प्रश्नानाह—

अहर्गणस्यानयनेऽर्कमासाश्चैत्रादिचान्द्रैर्गणकान्विता किम्।
कुतोऽधिमासावमशेषके च त्यक्ते यतः सावयवोऽनुपातः ॥६॥

अब प्रश्न करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण आनयन में सौर मासों में चैत्रादि चान्द्रमास

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्यों जोड़े गये हैं और अधिमास अवशेष को क्यों त्याग दिया गया है। सावयव अनुपात क्यों किया गया है?

विशेष— यह श्लोक गोलाध्याय के प्रश्नाध्याय का श्लोक १५ ही है जिसको आचार्य ने दुबारा शब्दशः कह दिया है। कृपया वहाँ पर इसी की पूर्ण व्याख्या देखें।

अथान्यमाह—

चन्द्रश्चन्द्रगुणो रवी रविगुणश्चाङ्गारकोऽङ्गाहत-
स्तद्योगो गुणसंगुणात् सुरगुरो राश्यादिकात् पातितः।
शेषं चापरपर्ययोत्थखचरेणोनं युतं वा शनिः

अन्य प्रश्न करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्र को एक से गुणा करे, रवि को १२ से गुणा करे, मंगल को छः से गुणा करे। इन सबके योग को ३ से गुणा करके सुरगुरु बृहस्पति की राश्यादि में से घटावे। शेष बचे उसको ग्रह कल्पित ग्रह भगण से प्राप्त ग्रह में से घटाने अथवा जोड़ने पर शनि ग्रह प्राप्त होता है। आचार्य कहते हैं (पूछते हैं) कि यदि मिश्रक गणित में तुम्हारी निपुणता है तो बताओ अन्य भगण संख्या कितनी है?

अथास्य भङ्गः—

स्यात् केऽन्ये भगणा वदेति तव चेदस्ति श्रमो मिश्रके॥७॥
उद्देशकालापवदेव कार्यं योगान्तराद्यं ग्रहपर्ययाणाम्।
दृष्टस्य चक्राणि तदूनितानि तैरूनितं तत् क्रमशो विधेयम्॥८॥
अज्ञातखेटः स्मृणं कृतश्चेदज्ञातचक्राणि भवन्ति तानि।
क्वहाः प्रदेया अविशुद्धशुद्धौ क्वहैश्च तक्ष्यं कुदिनाधिकं चेत्॥९॥

इस प्रश्न का समाधान—

सूर्य-प्रभा टीका— उद्देश कालाप में जिस प्रकार ग्रहों का योगान्तर कहा गया है उसी प्रकार उन ग्रहों के युगभगणों का भी योगान्तर करना चाहिये। इस प्रकार यदि राशि युगकुदिन से अधिक हो तो उसको युग कुदिन से भाग देवे। प्रयोजन न होने के कारण प्राप्तफल को छोड़ देवे तथा शेष को ही ग्रहण करे। दूसरे भगण से प्राप्त राश्यादिफल यदि धन हो तो युग कुदिन में से शेष को घटावें। यदि राश्यादिफल ऋण हो तो उसे युगकुदिन में जोड़ देवे। इस प्रकार जो फल प्राप्त हों उनको यदि अन्य भगणफल ऋण हो तो दृष्ट इष्ट ग्रह के

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

युगभगण से घटा देवे और यदि अन्य भगण फल धन हो तो युग भगण में जोड़ देवे। इस प्रकार अन्य भगण होते हैं। आचार्य ने इसको एक उदाहरण द्वारा समझाया है।

उदाहरण— माना यहाँ रवि के ३ भगण, चन्द्र के ४, मंगल के ५, गुरु के ७ तथा शनि के ९ हैं तथा कल्प कुदिन ६० हैं। अहर्गण २३ है। इस कल्पित अहर्गण से साधित ग्रह इस प्रकार हैं–

रवि १।२४, चंद्र ६।१२, मंगल ११।०, गुरु ८।६, शनि ५।१२।

अब प्रश्नानुसार १२×सूर्य+६×मं.+१×चं. = १२× (१।२४)+६×(११।०) + १×(६।१२) = सू ९।१८+चं. ६।१२+मं.६।०

इन सबका योग ९।१८+६।१२+६।०= २२÷१२=१०।०।०

तीन गुणा गुरु में से इस योग को घटाने से=३×८।६–१०।०=२४।१८ – १०।० = ०।१८ – १०।० = २।१८ प्राप्त हुआ।

अब अज्ञात भगण ज्ञात करने के लिए उक्त प्रकार से योग वियोग करने पर–

र चं मं गु श

३+४+५+७+२–१०=२१–१०=११ प्राप्त हुआ।

इस में से शनि भगण घटाये तो ११ – ९ = २

यदि अन्य भगण ऋण है तो उन २ भगणों में ग्रह स्पष्ट ९।६ है। इसको पूर्व प्राप्त २।१८ में से घटाने से शनि= २।१८ – ९।६ = ५।१२। इसको अज्ञात ग्रह धन है तो शनि भगणों में कुदिन जोड़ने तथा ११ घटाने से अन्य भगण= ९+६०–११=५८

इस प्रकार के भगणों में प्राप्त ग्रह २।२४ होंगे। इनमें पूर्व शेष जोड़ने पर शनि= २।२४+२।१८=५।१२ प्राप्त हुआ।

उपपत्ति— युगग्रह भगण में इष्ट गुणगुणित कुदिन जोड़ने या घटाने से जो प्राप्त होता है उस पर से राश्यादिग्रह वही होता है, क्योंकि युगग्रहभगण को अहर्गण से गुणाकर युगकुदिन से भाग देने से इष्ट समभगण करके युत हीन पूर्व भगण होते हैं और भगण शेष भी पूर्वतुल्य ही होता है। इसलिए यहाँ इष्ट गुणगुणित ग्रह भगणों के योग या अन्तर कुदिन से अधिक हो तो कुदिन से भाग देने से, शेष ही को ग्रह भगण मानना चाहिये जिससे राश्यादिकग्रह अभीष्ट गुणगुणित ग्रहयोग या अन्तर ही उपपन्न होता है। यदि अन्य भगण ग्रहधन है

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तो अन्य भगण युत शेष दृष्टग्रह भगण तुल्य होता है। इसलिए शे+अभ=इभ
अभ = इभ – शे = इभ +युकुदि –शे।

ऐसे ही जब अन्य भगणोत्पन्न ग्रह ऋण हो तब–

शे – अभ = इभ

अभ =शे – इभ = शे+युकुदि – इभ

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के मध्यगत्युत्तराध्याय में कहा है। यथा–

''इष्ट गुणकारगुणित ग्रहभगणैक्यान्तरं यथाऽभिहितम्।
कृत्वाकुदिनैर्भजेत् शेषोनयुतानि कुदिनानि॥३४॥
यद्यन्यभगणलब्धं धनर्णमिष्टग्रहस्य युगभगणैः।
अन्यफलमृण धनं चेदूनयुतान्यन्य युगभगणाः॥३५॥''

वटेश्वराचार्य ने व.सि. के प्रश्नविधि अध्याय १० में इसी प्रकार के अन्य प्रश्न कहे हैं। यथा–

''द्वित्रिगुणयो रवीन्द्वोर्योगादष्टोद्धृताज्ज्ञ हीनाद्यात्।
आनयतीष्टद्युचरं करामलकवत्स वेत्सि मध्यगतिम्॥१३॥
नवधी गोहत भूमिज गुरुशनि योगाद् दिगीशगुणिताताभ्याम्।
ज्ञसिताभ्यां युक्ताद् यो वेत्तीष्टखगं स तन्त्रज्ञः॥१४॥
रवि शशि कुज बुधयोगः पृथक् पृथक् त्रिगुणितैश्च तैर्हीनः।
युक्तो वा तद्योगात् स्वधनगुरुं वेत्ति यः स यन्त्रज्ञः॥१५॥
सर्वग्रहयोगो वा सप्तगुणैस्तैः पृथक् पृथग्युक्तः।
हीनो वा तद्योगात् के सर्वे स्वधनगुरवः॥१६॥
दशगुणितः शीतांशुस्त्रिगुणेन युतोऽन्यपर्ययाप्तेन।
विदाहतेन मिश्रः शनिर्विहीनोऽथवान्य भगणाः के॥१७॥
भौमस्त्रिभुजाभ्यस्तस्त्रिगुणगुरुनोऽन्यभगणलब्धेन।
हीनो रविः समतो मन्दो वाऽन्यग्रहभगणाः के॥१८॥''

श्लोक १३ व १४ की युक्ति के लिए आचार्य ने स्वकृत वटेश्वर सि. के मध्यमाधिकार के सर्वतोभद्र नामक अध्याय ४ में इस प्रकार कहा है। यथा–

''द्वयोर्बहुनामथवा यथेच्छया हतोदधृतानां युतिरन्तरं तथा।
सपर्ययाणां हतमिष्ट वर्ययैर्ग्रहस्तथा भूत भसंघ भाजितम्॥४३॥''

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इसका अर्थ है– इष्टगुण गुणित दो भगणादि ग्रहों का योग या अन्तर उद्दीष्ट हो तथा इष्टहर से भक्त दो भगणादि ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो अथवा इष्टगुण गुणित बहुत भगणादि ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तथा इष्टहर से विभक्त बहुत ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तो उन सब को इष्टग्रह (साध्य ग्रह) के युग भगण से गुण देना चाहिये और इष्ट गुण गुणित ग्रहद्वय के भगणा योग वा अन्तर से भाग देना चाहिये तथा इष्टहर भक्त ग्रहद्वय के भगणयोग व अन्तर से भाग देना चाहिये इष्टगुण गुणित बहुत भगणादि ग्रह के भगण योग वा अन्तर से भाग देना चाहिये तथा इष्टहर भक्त बहुत ग्रहभगणों के योग या अन्तर से भाग देना चाहिये तब इष्टग्रह होता है।

इष्टगुण गुणित ग्रहद्वय को योग करके स्थापित करे। उस गुणक से इष्टग्रह के युग भगण को गुणा करे और इष्टगुण गुणित दोनों ग्रहों के भगण योग से भाग देने से इष्टग्रह होते हैं। इसी तरह बहुत ग्रहों को भी जानना चाहिये।

इसकी उपपत्ति रूप में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि यदि इष्टगुण गुणित दो ग्रहों के भगण योग या अन्तर में इष्ट ग्रह युगभगण पाते हैं तो उस इष्टगुणक से गुणित ग्रहद्वय योग या अन्तर में क्या? इस अनुपात के द्वारा इष्टग्रह आते हैं। इसी प्रकार बहुत ग्रहों के योगान्तर में भी अनुपात से इष्ट ग्रहसाधन होता है तथा यदि इष्ट हार से विभक्त भगणद्वय के योग या अन्तर में इष्टग्रह युगभगण पाते हैं तो इष्टहार विभक्त ग्रहद्वय के योगान्तर में क्या? इस अनुपात से इष्ट ग्रह आते हैं। इसी प्रकार बहुत से ग्रहों के लिए होगा।

इस प्रकार यह युक्ति आचार्य ने बहुत विस्तार से इस अध्याय में कही है। विस्तारमय से यहाँ सभी को नहीं दे रहे हैं कृपया वटेश्वर सिद्धान्त का अवलोकन करें।

इसी प्रकार ब्र.गु. ने भी ब्र.स्फु.सि. के मध्यगत्युत्तराध्याय में वटेश्वराचार्य तथा भास्कराचार्य की भांति ही कहा है। यथा–

"त्रिगुणः शनिरिन्दुनोऽन्य भगणलब्धैर्गृहादिभिः सहितः।
भौमो हीनोऽर्को गुरुरिन्दुच्चं वाऽन्यभगणाः के॥५॥
द्वित्रिगुणयो रवीन्द्वोर्युतिः कुजोनाऽन्यभगणलब्धेन।
राश्यादिनाऽधिका गुरूना शनिरन्यभगणाः के॥६॥"

ब्रह्मगुप्तोक्त प्रकार ही को श्रीपति ने भी कहा है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

"त्रिघ्नः पतङ्गतनयो विधुना विहीनश्चक्रादिनाऽन्य भगणोत्थफलेन युक्तः।
भौमः फलेन रहितः सविता गुरुर्वा चन्द्रोच्चमन्यभगणा वद के भवति॥
द्वाभ्यां त्रिभिर्गुणितयो रविशीतरश्म्योर्योगः कुजेन रहितोऽपरचक्रलब्ध्या।
राश्याद्यया समधिको गुरुरुनितः स्यात् पातङ्गिरन्यभगणा गणितज्ञ केते॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त प्रकार उदाहरण कहा है। यथा–

"चंगुणं चन्द्रं भादिकमर्केण युतं विशोध्य जहतकुजात्।
शेषं सेष्टं बीष्टं वेज्योऽभीष्टस्य कथय चक्राणि॥१८॥"

इस प्रश्न का उत्तर प्रश्नोत्तराध्याय में इस प्रकार दिया है। यथा–

"नानासूत्रभवान्यथ विषमप्रश्नोत्तराणि कथयामि।
चगुणप्रश्नजभगणा ग्लखहरिधमसिमृतुहिरस्वाख्याः॥८॥"

आचार्य ने ८ भौम– (६ चं.भ.+र.भ) =शेष
अथवा शे.+इभ = गुभ
आचार्य पठित भगणसंख्या से शेष = –३३२४६५३५६०००
तथा गुभ = ३६४२१९६८२ कहा है।
अतः –३३२४६५३५६०००+इभ =३६४२१९६८२
या इष्ट भगण = ३३२८२९५७५६८२ धनसंख्या
यदि शे – इभ = गुभ तो पूर्वप्रकार से साधन करने से ऋण होगा।

अथान्यं प्रश्नमाह—

ये याताधिकमासहीनदिवसा ये चापि तच्छेषके
तेषामैक्यमवेक्ष्य यो दिनगणान् ब्रूतेऽत्र कल्पे गतान्।
संश्लिष्टस्फुटकुट्टकोद्भटबटुक्षुद्रैणविद्रावणे
तस्याव्यक्तविदो विदो विजयते शार्दूलविक्रीडितम्॥१०॥
कृताष्टाष्टिगोब्ध्यब्धिशैलामरर्तु-
द्विप ८६३३७४४९१६८४ घ्ने सशेषाधिमासावमैक्ये।
भवेद्भचेकचन्द्राह १६०२९९८९९९९९९ भक्तेऽवशेषं
गतेन्दुद्युराशिस्ततः सावनाद्यः॥११॥

उदाहरणम्—

ये याताधिकमासहीनदिवसा ये चापि तच्छेषके
तेषामैक्यमवेक्ष्य जिष्णुजकृताच्छास्त्राद्यथैवागतम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूशैलेन्दुखखाभ्रषट्करयुगाष्टाब्ध्यङ्क ६४८४२६०००१७१ तुल्यं
यदा काले कल्पगतं तदा वदति यः स ब्रह्मसिद्धान्तवित्॥१२॥

अन्य प्रश्न कह रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण आनयन में गत अधिमास, क्षय दिवस तथा इनके शेष इन सब (चारों) के योग के द्वारा जो दिनगण से कल्पगत दिनगण को बता सकता है उसको आचार्य कहते हैं कि मैं उस कुट्टकादि गणित गणना भट्ट (दक्ष) को उन अल्पज्ञानियों पर उसी प्रकार विजय पाने वाला मानता हूँ जिस प्रकार चीता (या सिंह) तुच्छ (नीच) हरिण पर क्रीड़ा करते हुए ही विजय प्राप्त कर लेता है। अर्थात् आचार्य कुट्टकादि गणित विद्या में दक्ष ऐसे व्यक्ति को तुच्छ हिरणों के समान अल्पज्ञानियों पर क्रीड़ा-क्रीड़ा में ही विजय प्राप्त करने वाले चीते (सिंह) के समान दक्ष मानते हैं।

प्रश्न का उत्तर—

सशेष अधिमास अवशेष के योग को ८६३३७४४९१६८४ से गुणा करके फल में १६०२९९८९९९९९९ (क.चां.दि) से विभक्त करने से गत चान्द्र दिन होते हैं। इनसे सावन दिन ज्ञात कर सकते हैं।

उदाहरण—

अहर्गण आनयन में लब्ध अधिमास तथा क्षय दिवस एवं इनके शेष के योग ६४८४२६०००१७१ तुल्य को ८६३३७४४९१६८४ से गुणा करने पर ५५९८३४४६८२९२३२६४२२०७७९६४ होता है। इसको चांद्र दिवस संख्या १६०२९९८९९९९९९९ से विभक्त करने से लब्धि ३४९२४१९३२३३६ प्राप्त होती है तथा शेष १०३०० चांद्र दिन होते हैं। इनके पूर्ववत अवम दिन १६१ तथा अवम शेष २६७४२६००००० और सावन अहर्गण १०३०० – १६१ = १०१३९ प्राप्त होता है।

अब इन चांद्र दिनों को अधिमास से गुणा करके युग चांद्र दिनों से विभक्त करने से गताधिमास १० तथा शेष ३८१०००००००० प्राप्त होता है। अधिमास शेष १० के १०×३०=३०० को १०३०० चांद्र दिन गण में से घटाने से सौर अहर्गण १०००० होते हैं। अतः इससे कल्प गत २७ वर्ष ९ मास तथा १० दिन हुए।

उपपत्ति— गताधिमास+अधिशेष = क.धिमा. ×इ.सौ.दिन – गधिमा. × (कसौदि – १) तथा गताधिमास+अधिशेष = क.धिमा. × इ.चां.दि –

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गधिमास (क चांदि – १) होता है अर्थात गत सौर दिनगण में जितने अधिमास और शेष होते हैं, गत चांद्र दिनों में उतने ही चांद्रमास तथा अवमशेष होते हैं। चान्द्रदिनों से अवमदिन तथा अवमशेष साधित होते हैं। अतः –

अधिमास + अधिशेष + चान्द्र अवम दिन + अवम शेष योगफल में युगाधिमास तथा अवम के योग से गुणा करके युग चांद्र दिनों से भाग देने पर लब्धि गत चांद्र दिन मान माना कि = य प्राप्त होते हैं।

इन प्राप्त लब्धि को गुणक से गुणा करके हर से विभक्त करने से जो प्राप्त हो माना वह 'क' है।

$$\text{अर्थात } \frac{\text{य} \times \text{गुणक}}{\text{हर} = \text{युगचांद दिन}} = \text{लब्धि क}$$

$$\frac{\text{क} \times \text{गुणक}}{\text{हर}} = \text{फल तथा य} - \text{फल} = \text{शेष} = \text{अधिमास+अवमशेष}$$

य २६६७५८५०००० तथा क १६०२९९९०००००० इनके योग को उद्दीष्ट योग से समीकरण करके अधिमास तथा अवम के योग से विभक्त करने से (चान्द्र दिन – १) तुल्य हर तथा उद्दीष्ट योग ऋण क्षेप प्राप्त होता है। अतः

$$\frac{\text{अधिमास} + \text{अवमशेष} - \text{उद्दीष्ट योग}}{\text{चान्द्रदिन} - १}$$

इदानीं महाप्रश्नमाह—

चक्राग्राणि गृहाग्रकाणि च लवाग्राणि ग्रहाणां पृथग्-
यानि स्युः कलिकाग्रकाणि विकलाग्राणीह धीवृद्धिदे।
चन्द्रार्कारगुरुज्ञभार्गवचलच्छायासुतानां तथा
पूर्वं सिद्धमहर्गणागमविधौ न्यूनाहशेषं च यत्॥१३॥
षट्त्रिंशत् सहितानि तानि कुदिनैस्तष्टानि दृष्ट्वाग्रका-
ण्याचष्टे स्फुटकुट्टके पटुमतिः खेटान् दिनौघं च यः।
तं मन्ये गणिताटवीविघटनप्रौढिप्रमत्ताखिल-
ज्योतिर्वित्करिकुम्भपीठलुठनप्रोत्कण्ठकण्ठीरवम्॥१४॥

अथास्य भङ्गः—

उद्दिष्टं ककह १५७७९७५०० तष्टमम्बुधिहतं शुध्येन्न चेत् तत् खिलं
लब्धं रामनखाद्रिलोचनरसत्र्यङ्कद्वि २९३६२७२०३ निघ्नं ततः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चाद्रित्रिनवाद्रिसागरयुगच्छिद्राग्निभिः ३०४४७९३७५ संभजे-
च्छेषं स्याद्द्युगणो हरेण स युतो यावद्भवेदीप्सितः॥१५॥
अस्योदाहरणम्—
पञ्चत्रिंशदहो सखे दिविषदां चक्रादिशेषाणि या-
न्येषां सावमशेषमैक्यमपि यद्धीवृद्धिदे जायते।
तत् तष्टं कुदिनैः खखेषुभरविच्छिद्रेन्द्र १४९१२२७५०० तुल्यं गुरो-
रिन्दोर्वाह्नि कुजस्य वा वद यदा कीदृग्द्युपिण्डस्तदा॥१६॥
अब महा प्रश्न कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चं, सू,मं,गु,बु,शु व श के यदि (ग्रहों) भगणशेष तथा राशि शेष का पृथक्-पृथक् ज्ञान शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ (लल्लाचार्य विरचित) के द्वारा ज्ञात करके पूर्व आगम अहर्गण विधि अनुसार यदि शेष ३६ के लगभग होने पर ३६ युक्त करके उनके कुदिनों से विभाजित करके जो पटु गणक ग्रहों तथा अहर्गण को ज्ञात कर सकता है उसको आचार्य गणकों की सभा में सिंह के समान तथा हाथी की पीठ पर कंठ में कंठी धारण करके बैठकर कलोल करने वाले के समान मानते हैं।

आचार्य श्लोक १५ में कहते हैं कि उद्दीष्ट योग (ग्रहों के चक्रादि शेष लल्लोक्त) को यगु कुदिन से तष्टित करने पर यदि नहीं घटे तो उद्दीष्ट योग को ४ से विभक्त करके २९३६२७२०३ से गुणा करके ३९४४७९३७५ से विभाजित करने से प्राप्त शेष को हर में युक्त करने से अहर्गण होता है।

उदाहरण— आचार्य कहते हैं कि हे मित्र ३५ सभी ग्रहों के भगणादि शेष का योग है। इसी को लल्लोक्त धीवृद्धिद ग्रंथ में अवमशेषैक्य कहा गया है। इसको कुदिनों से तष्टित करने पर १४९१२२७५०० के तुल्य होता है तो बताओ गुरु, चन्द्र तथा मंगल के दिन अहर्गण का मान क्या होगा।

हल— लल्लाचार्य के शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में चक्रादि शेष और सबके अवमशेष ऐक्य १४९१२२७५०० होता है। इसको चार (४) से विभक्त करके लब्धि को २९३६२७२०३ से गुणा करके ३९४४७९३७५ से विभक्त करने से शेष अहर्गण १०००० होता है यह मंगलवार को होता है। इसमें हर का दुगुणा जोड़ने पर सोमवार का अहर्गण ३९४४७९३७५×२+१००००=७८८९६८७५० होता है तथा इसी प्रकार हर का तिगुणा जोड़ने पर गुरुवार को अहर्गण ११८३४४८१२५ होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपपत्ति— आचार्य ने स्वकृत वासना में बताया है कि आचार्य की बीजगणित में "एको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नौ" में "गुणकौ" शब्द द्विवचन उपलक्षण है। यहाँ अधिक गुणक के स्थान पर एक गुणक है। अतः यहाँ गुणकों का योग ही गुणक है। तथा सभी शेष का योग फलैक्या ऋणक्षेप है तथा अहर्गण को एक (१) मान कर ग्रहों के भगणादि शेष ज्ञात करके उनके योगफल में युगअवम जोड़ने से प्राप्तफल को भाज्य कल्पित करे। कुदिन को हर माने। उद्दीष्ट ३६ सभी शेषों का योग है उसको ऋण क्षेप माने।

इन भाज्य, हार तथा क्षेप में चार से अपवर्तित करने से लाघवार्थ शुध एक प्राप्त होता है। कुट्टक से स्थिर करने पर लब्ध गुणक – २९३६२७२०३ होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त प्रकार की विधि ही कही है। यथा प्रश्नोत्तराध्याय–

"ये तान् वक्ष्ये दर्शे कुजाहिन धोधीधधीधिधा धुचयः।
कुजदृढ़वासरवृन्दान्मगुणात्सगणाद् भृगोर्दिने द्युगणः॥१२॥
सद्दढोऽयं शशिजदिने कौजे जतिधरिगचीरनीसेधा।
ध्रहरे भेधा लिप्ताः सहज धुमदुससिकिनीनना द्युगणः॥१३॥"

यहाँ धोधीधधोधिधाः =९९९९९४ तथा कुज के कुदिन =१५७७९१७५४२ सहजधुमदुससिकिनीननाः = ७८८९५८७७१०००

द्युगणात् पृच्छाद्युसदां चक्राद्यग्राणि संसाध्य।
तद्युतिरधिमासावमयुता क्वहाप्तावशेषको भाज्यः॥६१॥
प्रश्नाग्रैक्ये कुदिनैर्भक्ते शेषं भवेदृणक्षेपः।
क्ष्माहाश्छेदोऽतो यो गुणकोऽसौ वासरौधः स्यात्॥६२॥"

इदानीं निरग्रचक्रादपि ग्रहादहर्गणमाह—

लिप्तार्धं दशयुग्भवन्ति विकलास्तासां वियोगस्त्रियुग्-
भागा भागदलं गृहाणि शशिनः खत्रीन्दवस्तद्युतिः।
दृष्टा चन्द्रदिने कदा वद पुनस्तादृक् च काव्याहनि
व्यक्ताव्यक्तविविक्तयुक्तिगणितं विद्वन् विजानासि चेत्॥१७॥
राश्यादेर्विकला दृढकुदिनगुणाश्चक्रविकलिकाभक्ताः।
शेषत्यागे लब्धं रूपयुतं भगणशेषं स्यात्॥१८॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शेषोनहरो विकलाशेषं तस्मिन् क्रहाधिके ज्ञेयः।
स खिलः खेटस्त्वखिले विकलाशेषाद् द्युपिण्डो वा॥१९॥
दृढभगणा येन गुणाश्चक्राग्रोना दृढक्रहैः शुद्धाः।
स द्युगणो दृढकुदिनयुतस्तावद्यावदीप्सितो वारः॥२०॥

उदाहरणम्—

चक्राग्रं शशिनः खखाभ्रगगनप्राणर्तुभूमिः १६५०००० हृतं
शुध्येच्चेन्न खिलं फलं कृतगुणाष्टाङ्गाहिनागा ८८६८३४ हृतम्।
विश्वाग्न्यङ्गशराङ्ककै ९५६३१३ श्च विभजेत् स्याच्छेषमह्नां गण-
स्तावत् तत्र हरं क्षिपेदभिमते यावद्भवेद्वासरे॥२१॥

निरग्र चक्र भगण से अहर्गण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— कलार्ध में दश (१०) जोड़ने से विकलायें प्राप्त होती हैं। उनके अन्तर में तीन जोड़ने से अंश तथा अंशों की आधी राशि है। इन सब का योग १३० है। यह किसी दिवस पर चन्द्रमा होता है अर्थात् चन्द्रमा ११।२२।५८।३९ राश्यादि किसी चंद्रवार को है तो व्यक्त अव्यक्त गणित में दक्षता रखते हो तो हे गणक बताओ पुनः ऐसी स्थिति कब होगी?

स्पष्टीकरण— यहाँ आचार्य ने चंद्रमा ११।२२।५८।३९ राश्यादि को इस प्रकार कहा है।

$$\frac{\text{कला} = ५८}{२} + १० = २९ + १० = ३९ \text{ विकला}$$

कला विकला के अंतर ५८ − ३९ = १९ में ३ युक्त करने से १९+३=२२ अंश तथा अंशों की आधी $\frac{२२}{२}$ = ११ राश्यादि है। इन सब का योग १३० है अर्थात् ११+२२+५८+३९ =१३० है।

राश्यादि विकला को दृढ़ कुदिनों से गुणा करके चक्र विकला से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि में एक युक्त करने से तथा शेष को त्याग देने से भगण शेष प्राप्त होता है तथा शेष को हर में से घटाने से विकला शेष रहती है। यदि विकला शेष जो रहती है उससे कुदिन जितने अधिक है वह ज्ञात करे कम होने पर प्रश्न त्रुटिपूर्ण होता है।

विकला शेष से अहर्गण या दृढ़भगणों (अपवर्तित भगण) को जिससे गुणा करे उसमें भगण शेष घटाकर (अपवर्तित) दृढ़कुदिन में से घटाने से द्युगण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थात् अहर्गण प्राप्त होता है। इस अहर्गण में अपवर्तित कुदिन जब तक जोड़ते जाना चाहिये जब तक की इष्ट वार प्राप्त न हो जावे।

उदाहरण— यदि चन्द्रमा के भगण शेष को १६५०००० से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि यदि अपवर्तित कुदिन संख्या में से न घटे तो समस्त फल को अर्थात् भगणशेष को ८८६८३४ से गुणा करके ९५६३१३ से विभक्त करने से अहर्गण प्राप्त होता है। इस अहर्गण में दृढ़ भाज्य अर्थात हर को जब तक अभीष्ट वार प्राप्त न हो जावे जोड़ते जावे।

दिया हुआ चन्द्रमा ११।२२।५८।३९ राश्यादि है। इसकी विकलायें १२७०७१९ है। कल्पोक्त चन्द्र भगण ५७७५३३०००००० तथा रविसावनदिन १५७७९१६४५०००० हैं। इनमें १६५०००० का भाग देने पर ५७७५३३०००००० ÷ १६५०००० = ३५००२ दृढ़भगण तथा १५७७९१६४५०००० ÷ १६५०००० = ९५६३१३ दृढ़ कुदिन प्राप्त होते हैं। दृढ़कुदिन की विकला १२१५२०५०९९०४७ को चक्रविकला १२९६००० से विभक्त करने पर लब्धि ९३७६५९ तथा शेष ३३१०४७ प्राप्त होता है। शेष को चक्र विकला में से घटाने से १२९६००० – ३३१०४७ = ९६४९५३। इसमें से दृढ़कुदिन ९५६३१३ घटाने से चक्र विकला शेष ८६४० बची यह शुद्धिदिन है।

उदाहरण में ९५६३१३ को चंद्र ११।२२।५८।३९ की कला १२७०७२० से गुणा करके चक्रविकला १२९६००० से विभक्त करने से फल ९३७६५८ प्राप्त होता है। इसमें एक युक्त करने से फल ९३७६५९ प्राप्त होता है तथा भाग शेष १२८७३६० बचता है। इसको चक्र विकला १२९६०० में से घटाने से विकलाशेष ८६४० बचता है। अहर्गण २५७१५१ प्राप्त होता है। यह शनिवार का है।

दृढ़कुदिन ९५६३१३ के दुगुने को २५७१५१ में जोड़ने से सोमवार का अहर्गण २१६९७७७ होता है। छै गुना जोड़ने पर शुक्रवार का ५९९५०२९, सात गुणा जोड़ने पर सोमवार का २१६९७७७ होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त प्रकार की विधि कही है। यथा कुट्टकाध्याय–

"दृढ़दिन भादिखगाभ्यां भगणाग्रं स्याद्यथा तथा कार्यम्!
कुदृढ़खगाभ्यां तस्मादविष्टात् साधयेद्विलिप्ताग्रम्॥४३॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तदुदित विकलाग्रकयोर्विवरं प्रधतिननुनै भजेल्लब्ध्या।
अविनष्टभगणशेषो युक्तः स्यादीप्सितो द्युचयः॥४४॥
राश्यादि व्योमचरं दृढ़कुदिनहतं करै भजेल्लब्धम्।
शेषत्यागे क-युतं भगणाग्रमतो दिनौघभगणाः स्युः॥३९॥"

अथ खिलोदाहरणम्—

राशयः खं० लवाः पञ्च ५ कलाः षड्वर्ग ३६ संमिताः।
विकला गोभुवो १९ नेदृङ्मध्येन्दुरुदये क्वचित्॥२२॥

अशुद्ध प्रश्न का उदाहरण—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि चंद्रमा ०।५।३६।१९ राश्यादि है तो इसकी राश्यादि का विकला बनाने इत्यादि द्वारा शेष २७ होता है। शेष को हर में से कम करने से १२९५९७३ होता है। यह संख्या दृढ़कुदिन से अधिक होने से ऐसा चंद्रमा उदयकाल में नहीं हो सकता।

एवमनेकधा खिलत्वं कुट्टकविषयमभिधायेदानीं वर्गप्रकृतिविषयमाह—

स्याद्यस्मिन्नधिमासशेषककृतिर्दिग्घ्नी सरूपा कृति-
र्व्येका शेषकृतिर्हृता च दशभिः स्यान्मूलदा वा यदा।
काले कल्पगतं तदा वदति यस्तत्पादपद्मं बुधाः
सेवन्ते बहुधा प्रमेयवियति भ्रान्ता भ्रमन्तोऽलिवत्॥२३॥
उद्दिष्टं कुट्टके तज्ज्ञैर्ज्ञेयं निरपवर्तनम्।
व्यभिचारः क्वचित् क्वापि खिलत्वापत्तिरन्यथा॥२४॥

कुट्टक विषय संबंधि वर्ग प्रकृति विषयक प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— अधिमास शेष के वर्ग को दश से गुणा करके एक युक्त करने से वह संख्या वर्ग संख्या बन जाती है और एक घटा कर शेष के वर्ग को (१०) दश से विभक्त करने पर वह संख्या मूल के लायक अर्थात् वर्गात्मक हो जाती है। इनके द्वारा जो कल्पगत काल को बतादे उसकी विद्वान लोग सेवा करते हैं। खुले आकाश में भौरा जिस प्रकार भ्रमण करता है उस प्रकार की विशेष रूप से बताई गई कुट्टक को जैसा कहा गया है उसमें दूर करने लायक व्यभिचार तो नहीं है लेकिन कहीं-कहीं आपत्ति तो है।

आचार्य ने यहाँ जो कुट्टकविधि बताई है उसको विस्तार से आचार्यकृत बीजगणित में देखना चाहिये। कुट्टक से कल्पगत वर्षमान २२९६ वर्ष ६ मास ६ दिन होते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं देशविशेषमुद्दिश्य पलांशप्रश्नानाह—

प्राच्यामुज्जयिनीपुरात् कुपरिधेस्तुर्येऽशके यत् पुरं
तस्मात् पश्चिमतोऽपि तावति ततोऽप्यन्यत् पुरारेर्दिशि।
नैर्ऋत्यां यदतोऽपि तेषु नगरेष्वाचक्ष्व मेऽक्षांशकान
गोलक्षेत्रविचक्षण क्षणमिदं संचिन्त्य चित्ते मुहुः॥२५॥

अस्य भङ्ग—

दिग्ज्यापलभाक्षुण्णे त्रिज्यार्कहृते च बाहुकोटिज्ये।
अपसृतियोजनलवजे तदन्तरं दक्षिणे भागे॥२६॥
ऐक्यं सौम्ये भूमेर्व्यस्तं पादाधिकेऽपसरे।
रविगुणमक्षश्रवसा भक्तं तच्चापमक्षांशाः॥२७॥

देश विशेष के उद्दिश्य अक्षांश ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उज्जयनी से पूर्व में भूपरिधि के चतुर्थांश दूरी पर जो प्रदेश हैं तथा पश्चिम की ओर चतुर्थांश भाग दूरी में जो प्रदेश हैं तथा उससे नैऋत्य दिशा में तथा भगवान शंकर (त्रिपुरारी) की ईशान दिशा में जो नगर हैं उनके अक्षांश क्या हैं। हे गोल क्षेत्र में विद्वान! अपने मन में (चित्त में) शीघ्र क्षणभर में विचार कर शीघ्र कहो॥२५॥

अभीष्ट देश की दिग्ज्या को यहाँ की पलभा से गुणा करके पृथक्-पृथक् त्रिज्या तथा १२ (बारह) से गुणा करने से क्रमशः अपसार योजनों के भुज तथा कोटि के मान प्राप्त होते हैं। इनको दक्षिण दिशा के प्रदेशों में अन्तर तथा उत्तर दिशा के प्रदेशों में योग करके भूपरिधि चतुर्थांश से अधिक अपसार योजन में व्यस्त (घटाना) संस्कार से इष्ट स्थान का अक्षांश ज्ञात हो जाता है। दिग्ज्या को १२ से गुणा करके पलकर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप उस स्थान का अक्षांश होता है।

उदाहरण से स्पष्टीकरण— उज्जयनि से अपसार योजन ९० अंश की ज्या त्रिज्या = ३४३८ होती है। तथा इसकी कोटिज्या = ० शून्य होती है। दिग्ज्या तथा ज्या का गुणा = ० होगा तथा कोटिज्या तथा पलभा का गुणा भी = ० शून्य होगा। अतः इनको क्रमशः त्रिज्या = ३४३८ तथा १२ (बारह) से विभक्त करने से ये शून्य ही होंगे।

$$\frac{\text{दिग्ज्या} \times \text{दोर्ज्या}}{३४३८} = ० \text{ और } \frac{\text{कोटिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} = ०$$

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इनका योग तथा अन्तर भी शून्य ही होगा। अतः $\frac{१२ \times ०}{\text{पलकर्ण}} = ०$ इसलिए उज्जयनी से ९० अंश दूर यमकोटी के अक्षांश शून्य हैं।

द्वितीय प्रश्न में अक्षांश शून्य हैं अतः यमकोटि से पश्चिम में लंका के अक्षांश भी शून्य हैं।

तृतीय प्रश्न (पुस्तक प्रश्न ४) में दिग्ज्या २४३१ को १२ से गुणा करके पलकर्ण का भाग देने से प्राप्तफल का चाप ३० अंश है। चतुर्थ प्रश्न (श्लोक का तृतीय प्रश्न) में दिग्ज्या २४३१ को अपसार योजन दोर्ज्या जो त्रिज्या तुल्य है से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से अर्थात् $\frac{२४३१ \times ३४३८}{३४३८} = २४३१$

लंका की पलभा = ०; इनको गुणा करके १२ से विभक्त करने से $\frac{२४३१ \times ०}{१२} = ०$। कोटिज्या शून्य हुई। इनका योग ०+२४३१=२४३१ हुआ। इनको १२ से गुणा करके लंका अक्षकर्ण १२ से विभक्त करने से $\frac{२४३१ \times १२}{१२} = २४३१$ दोर्ज्या हुई। इसका चाप ४५° ।

जहाँ इतने अक्षांश होते हैं वहाँ पलभा १२ होती है और पलकर्ण १६।५८।१४ होता है।

अथान्यदुदाहरणम्—

क्षितिपरिधिषडंशे प्राचि धारानगर्या-
स्त्रिनयनदिशि यद्वा पत्तने चाग्निभागे।
कथय गणक तत्र क्षिप्रमक्षांशकान् मे
क्षितिपरिधितृतीयेऽथांशके तत्र तत्र॥२८॥

अन्य उदाहरण—

सूर्य-प्रभा टीका— भूपरिधि के छठे भाग दूरी पर पूर्व में धारा नगरी है। इससे त्रिनेत्र शंकर की दिशा अर्थात् ईशान कोण में और अग्नि कोण में पड़ने वाले नगरों के तथा भूपरिधि के तृतीयांश भाग पर नगरों के अक्षांश हे गणक कहो।

स्पष्टीकरण व उत्तर—

धारानगरी की पलभा = ५, पलकर्ण = १३, अपसार योजन $\frac{३६०}{६} = ६०$

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जिसकी दोर्ज्या= २९७७ है तथा कोटिज्या= १७१९ है। दिग्ज्या का पूर्व में अभाव है, अतः कोटिज्या × पलभा ÷अक्षकर्ण—

$= \frac{\text{कोटिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} = \frac{१७१९ \times ५}{१२}$ प्राप्तफल का चाप अक्षांश है। इस प्रकार पूर्व दिशा में अक्षांश ११।५।०

ईषान दिशा में दिग्ज्या २४३१ है। अतः $\frac{\text{दोज्या} \times \text{दिग्ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ = अक्षांश।

$\frac{\text{दोनों का योग} \times १२}{\text{पलकर्ण} = १३}$ प्राप्तफल का चाप अक्षांश = ४९।१८।२४ यह ईशान कोण गत हैं।

और अग्निकोण में अक्षांश २१।५४।३४

अब तृतीयभाग के अंश $\frac{३६०}{३}$ = १२०°। इसकी ज्या तथा कोटिज्या के मान क्रमशः २९७७ तथा १७१९ हैं। उपरोक्त प्रकार से करने पर पूर्व नगर के अक्षांश ११।५।०, ईशान के अक्षांश २१।५४।३४ तथा आग्नेय के ४९।१८।२४ प्राप्त हुए।

उपपत्ति— गोल में खस्वस्तिक से छादित चिन्ह पर दृग्मंडल निवेश करे। वहाँ ख स्वस्तिक पर स्वस्थान माने। अपसार योजन अंश अग्र पर दृग्मंडल पर पूर्व में चिन्ह लगावे। ध्रुव से अभीष्ट नगर के चिन्ह तक आने वाला वृत्ताकार सूत्र जहाँ विषुवन्मण्डल पर लगे उससे नगर चिन्ह तक का अन्तर उस नगर के अक्षांश होते हैं। अब उनको ज्ञात करने का उपक्रम बताते हैं–

अपसार योजन अंशों की ज्या, कोटिज्या ज्ञात करके दिग्ज्या दिगंश से ज्ञात करे। फिर अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य दोर्ज्या में दिग्ज्या तुल्य भुज प्राप्त होता है तो अपसार तुल्यज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल नगर तथा सममंडल का अंतर ज्यारूप होगा जो भुज है = $\frac{\text{दिग्ज्या} \times \text{अपसार योजन ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$।

पुर तथा विषुवदवृत्त का जो अंतर है उतना अंतर सर्वत्र विषुवदवृत्त के उत्तर की ओर अन्तर पर अन्य अहोरात्र वृत्त हैं। उनका क्षितिज से जहाँ संपात होता है उससे पर्वापर अन्तर अग्रा है। जहाँ उन्मण्डल संपात करता है वहाँ से पूर्वापर अंतर अक्षांश क्रांतिरूप है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अब उनको ज्ञात करने के लिए अपसार योजन की कोटिज्या, पुर (नगर) चिन्ह से लम्ब शंकु है। शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से शंकुतल प्राप्त होता है। उत्तर गोल में उत्तर भुज तथा शंकुतल का योग अग्रा होती है। विपरीत संस्कार करने से दूसरे गोल में होती है। अब अनुपात किया कि यदि पलकर्ण में १२ कोटि प्राप्त होती है तो अग्रा में कितनी? प्राप्तफल क्रांतिज्या रूप अक्षज्या = $\frac{१२ \times \text{अग्रा}}{\text{पलकर्ण}}$। इसका चाप अक्षांश होता है। यह उपपन्न हुआ।

भूमि पर चतुर्थांश से अधिक अपसार होने पर घटावें क्योंकि विषुवद् वृत्त के नीचे सममण्डल उत्तर की ओर है।

अथोक्तानपि प्रश्नानेकीकर्तुमाह—

मित्र मित्रस्त्रिनेत्रस्य दिश्युद्गमं याति यत्र त्रिनेत्रर्क्षमध्यस्थितः।
तत्र मे तान्त्रिकाक्षुब्धमक्षप्रभां क्षिप्रमाचक्ष्व दक्षोऽसि गोले यदि॥२९॥
एकद्वित्रिचतुः पञ्चषड्भिर्यत्रोदितो रविः।
मासैरस्तमयं याति तत्राक्षांशान् पृथग्वद॥३०॥

यहाँ कहे गये प्रश्नों को किस प्रकार हल करें—

सूर्य-प्रभा टीका— हे मित्र! ईशान कोण की दिशा में शिव की चक्षु का मध्य आर्द्रा नक्षत्र स्थित है। वहाँ सायन सूर्य २।२० राश्यादि की अक्षप्रभा शीघ्र बताओ, यदि तुम गोल में दक्ष हो।

हल—

आर्द्रा नक्षत्रस्थ सूर्य की क्रांतिज्या ज्ञात करे। यदि अग्रा तुल्य कर्ण में सायन सूर्य क्रांतिज्या कोटि होती है तो त्रिज्या कर्ण में कितनी होगी? यह अनुपात करने से लंबज्या = $\frac{\text{क्रां.ज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{अग्रा}}$। अब लंबांश से अक्षांश ज्ञात करे। लंबज्या कोटि में पलज्या भुज है तो कोटि = १२ में कितनी होगी? पलभा = $\frac{\text{पलज्या} \times १२}{\text{लंबज्या}}$।

एक, दो, तीन, चार, पांच, छैः मास जहाँ सूर्य उदित रहता है और उसके पश्चात् अस्त होता है उन स्थानों के अक्षांश पृथक-पृथक कहो?

हल— जहाँ मिथुनार्ध के ऊपर स्थित सूर्य की क्रांति लंबाश से अधिक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

होती है वहाँ सतत एक मास का एक दिन होता है तब सूर्य क्षितिज के ऊपर ही रहता है। मिथुन के आदि स्थान पर सूर्य स्थित हो तो जहाँ क्रांति लंबांश से अधिक होती है वहाँ दो मास तुल्य दिन होता है। ऐसा मिथुन अहोरात्र वृत्त तथा अन्य कर्क अहोरात्र वृत्त में होता है।

इसी प्रकार वृषभार्ध के ऊपर सूर्य स्थित हो तब जहाँ क्रांति लंबांश से अधिक होती है वहाँ तीन मास का दिन होता है। जब वृषभारंभ के ऊपर सूर्य स्थित होने पर जहाँ क्रांति लंबांश से अधिक होती है वहाँ चार मास का दिन होता है। जब मेषार्ध के ऊपर सूर्य होता है तथा जहाँ क्रांतिलंबांश से अधिक होती है वहाँ पांच मास का दिन होता है।

जब मेषादि के ऊपर सूर्य स्थित हो तब जहाँ सायन सूर्य की क्रांति लंबांश से अधिक हो वहाँ छः मास का दिन होता है।

यहाँ मिथुनार्द्ध क्रांतितुल्य लंबांश की ९०° से जो शेष है तत्तुल्य अक्षांश पर एक मास का दिन होता है। ऐसा ही उपरोक्त में सर्वत्र जानें।

यदि एक मास के दिन के लंबांश २३°, दो मास के २१°, तीन मास के १७°, चार मास के १२°, पांच मास के ६° तथा छः मास के ०° हो तो इनके क्रमशः अक्षांश ६७°।६९°।७३°।७८°।८४°।९०° होंगे।

श्लोक २९ के उदाहरण रूप में दिग्ज्या तुल्य अग्रा २४३१ क्रांतिज्या के लिए, सूर्य १२।९३।२० की भुजज्या ३२९२।६।४०, क्रांतिज्या १३३७।३७।३९, लंबज्या १८९१।५१।१८, अक्षज्या २८६९।१६, अक्षांश ५६।३६।२२।३०, लंबांश ३३।२३।३३।३० पलभा १८।१०।३०।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में आचार्योक्त बात कही है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार—

"यत्र शून्यतुरगाः पलांशका नोदयं व्रजति तत्र भोनुमान्।
केन नास्तमुपयाति नेहसा कीदृशश्च सविता निगद्यताम॥१०॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्वाहोरात्रसमा यत्राक्षज्याऽवलम्बकः क्रान्त्या।
मेषादिगस्य तावत् यावत् कर्क्यादिगस्य खेः॥५५॥
नास्तमयस्तत्र तुलामकरादिस्थस्य नोदयोऽर्कस्य।
मन्मध्यान्तरलिप्ता मध्यमभुक्त्या हृता दिवसाः॥५६॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सि.शि. के गोलाध्याय के त्रिप्रश्नवासनाध्याय के श्लोक ६-७ में आचार्य ने यही बात अलग प्रकार से कही है। वे श्लोक यहाँ कहे गये श्लोक ३० की ही व्याख्या रूप हैं।

द्युज्यकापमगुणार्कदोर्ज्यकासंयुतिं खखखबाणसंमिताम्।
वीक्ष्य भास्करमवेहि मध्यमं मध्यमाहरणमस्ति चेच्छ्रुतम्॥३१॥

द्युज्यापक्रमभानुदोर्गुणयुतिस्तिथ्युद्धृताब्ध्याहता
स्यादाद्यो युतिवर्गतो यमगुणात् सप्तामरा ३३७ मोनिताः।
नागाद्र्यङ्गदिगङ्कका: ९१०६७८ पदमतस्तेनाद्य ऊनो भवे-
द्व्यासार्धेऽष्टगुणाब्धिपावकमिते क्रान्तिज्यकातो रविः॥३२॥

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवाग्रकाणां युति-
र्दृष्टा खाम्बरपञ्चखेचरमिता पञ्चाङ्गुलाक्षप्रभे।
देशे तत्र पृथक् पृथग्गणक ता गोलेऽसि दक्षोऽक्षज-
क्षेत्रक्षोदविधौ विचक्षण समाचक्ष्वाविलक्षोऽसि चेत्॥३३॥

क्रान्तिज्यां विषुवत्प्रभारविहतेस्तुल्यां प्रकल्प्यापराः
कृत्वाग्रासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवा अभीष्टास्ततः।
द्व्याद्यास्तद्युतिभाजिताः पृथगथ प्रोद्दिष्टयुत्या हता
उद्दिष्टा खलु यद्युतिः पृथगिमा व्यक्ता भवन्ति क्रमात्॥३४॥

अग्रापमज्याक्षितिशिञ्जिनीनां योगं सहस्रद्वितयं विदित्वा।
पृथक्पृथक् ता गणक प्रचक्ष्व रूढा सगोले गणिते मतिश्चेत्॥३५॥

सूर्य-प्रभा टीका— ये श्लोक त्रिप्रश्नाधिकार के क्रमशः श्लोक १००, १०१, १०२, १०३ तथा १०४ ही हैं। इनकी व्याख्या कृपया वहाँ पर देखें।

आस्तां तावत् सगोलः सुगणक गणितस्कन्धबन्धप्रसिद्धः
सिद्धान्तो लग्नसिद्ध्यै किमिति बत कृतस्तत्र तात्कालिकोऽर्कः।
नाडीषष्ट्या द्युरात्रं दशपलयुतया भानवीयं किलाक्ष्यां
लग्नं तात्कालिकार्कात् प्रवद किमधिकं तद्द्युरात्रे पलोने॥३६॥

नाक्षत्रा उत सावनास्तनुकृतौ नाड्योऽथ चेत् सावनाः
नाक्षत्रा उदयाः कथं विसदृशास्ताभ्यो विशोध्या वद।
नाक्षत्रा यदि तद्द्युरात्रसदृशे काले गतेऽर्काधिकं
किं लग्नं न समं ततो दिनकरस्तात्कालिकः किं कृतः॥३७॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्य-प्रभा टीका— तात्कालिक सूर्य से लग्न साधन किया जाता है। उसके नाक्षत्र घटीकाल में उदय होने से वह नाक्षत्र कालिक होता है। सूर्य का मध्यम सावन दिन नाक्षत्र घटी में दशपल युक्त करने से होता है। सूर्योदय पर सूर्य तुल्य लग्न होता है अधिक नहीं होता। उस तात्कालिक सूर्य से, दशपल युक्त करने से प्राप्त साठ घटी मान से लग्न साधन करने से लग्न तात्कालिक सूर्य से यदि अधिक हो तो ८-९ पल यदि युक्त करके लग्न साधन करे तो भी लग्न तात्कालिक सूर्य से अधिक होता है तो वह अभीष्ट नहीं है। यह कैसे होता है? यह प्रश्न है। ऐसा नहीं होगा।

हे सुगणक! गोल सहित जो गणक गणित स्कन्ध में प्रसिद्ध सिद्धान्त को भी जानता है वह लग्न सिद्ध करने में किसलिए तात्कालिक सूर्य सिद्ध करते हैं, यह जानता है।

यही प्रसंग त्रिप्रश्नाधिकार में लग्नानयन में गणिताध्याय में बताया जा चुका है। इन श्लोक ३६ व ३७ की व्याख्या के लिए गोलाध्याय के त्रिप्रश्नाध्याय के श्लोक २७ की व्याख्या देखें।

पञ्चाङ्गुला गणक यत्र पलप्रभा स्यात् तत्रेष्टभा नवमिता दशनाडिकासु।
दृष्टा यदा वद तदा तरणिं तवास्ति यद्यत्र कौशलमलं गणिते सगोले॥३८॥
दिनकरे करिवैरिदलस्थिते नरसमा नरभापरदिङ्मुखी।
भवति यत्र पटो पुटभेदने कथय तान्त्रिक तत्र पलप्रभाम्॥३९॥
मार्तण्डः सममण्डलं किल यदा दृष्टः प्रविष्टः सखे
काले पञ्चघटीमिते दिनगते यद्वा नते तावति।
केनाप्युज्जयिनीगतेन तरणेः क्रान्तिं तदा वेत्सि चे-
न्मन्ये त्वां निशितं सगर्वगणकोन्मत्तेभकुम्भाङ्कुशम्॥४०॥

मार्तण्डे सममण्डलं प्रविशतिच्छाया किलाष्टयङ्गुला
दृष्टाष्टासु घटीषु कुत्रचिदपि स्थाने कदाचिद्दिने।
अर्कक्रान्तिगुणं तदा वदसि चेदक्षप्रभां तत्र च
त्रिप्रश्नप्रचुरप्रपञ्चचतुरं मन्ये त्वदन्यं नहि॥४१॥

यत्र क्षितिज्या शरसिद्ध २४५ तुल्या
स्यात् तद्भुतिस्तत्त्वकुरामसंख्या ३१२५।
तत्राक्षभार्कौ गणक प्रचक्ष्व
चेदक्षजक्षेत्रविचक्षणोऽसि॥४२॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यो
विंशत्यश्वरसैः ६७२० मितामथ परां षष्ट्यङ्कचन्द्रैः १९६० मिताम्।
कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमिनं वेत्त्यक्षभां चापि तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम्॥४३॥

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यः
पूर्णाब्ध्यब्धिमहीमिता १४४० मथ परां खाभ्राष्टभू १८०० संमिताम्।
अग्राज्यापमशङ्कुतद्धृतियुतिं वेत्त्यक्षभार्कौ च तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम्॥४४॥

यत्र त्रिवर्गेण ९ मिता पलाभा तत्र त्रिनाडीप्रमितं चरं स्यात्।
यदा तदार्कं यदि वेत्सि विद्वन् सांवत्सराणां प्रवरोऽसि नूनम्॥४५॥

याम्योदक्समकोणभाः किल कृताः पूर्वैः पृथक्साधनै-
र्यास्तद्दिग्विवरान्तरान्तरगता याः पृच्छकेच्छावशात्।
ता एकानयनेन चानयति यो मन्ये तमन्यं भुवि
ज्योतिर्विद्वदनारविन्दमुकुलप्रोल्लासने भास्करम्॥४६॥

दृष्ट्वेष्टभां योऽत्र दिगर्कवेदी छायाद्वयं वा प्रविलोक्य दिग्ज्ञः।
वेक्ष्यक्षभामुद्धतदैववेदिदुर्दर्पसर्पप्रशमे स तार्क्ष्यः॥४७॥

भाद्वयस्य भुजयोः समाशयोर्व्यस्तकर्णहतयोर्यदन्तरम्।
ऐक्यमन्यककुभोः पलप्रभा जायते श्रुतिवियोगभाजितम्॥४८॥

सूर्य-प्रभा टीका— उपरोक्त श्लोकों की व्याख्या के लिए त्रिप्रश्नाधिकार गणिताध्याय के निम्नलिखित श्लोकों की व्याख्या यथा स्थान पर देखें।

श्लोक	त्रिप्रश्नाधिकार श्लोक संख्या
३८	८९
३९	७९
४०	८१
४१	८६
४२	९२
४३	९४

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४४ ९६
४५ ९८
४६ ४४
४७ ७४
४८ ७६

अक्षाभां तरणिं दिशो युगगतं मासं तिथिं वासरं
यः कूपोद्धृतवन्न वेत्ति सहसा पृष्टो दिगर्कादिकम्।
ब्रूहीत्याशु परैः कथं स कथयत्यस्योत्तरं वक्ति यो
वन्दे तच्चरणावमुष्य गणकाः के वा न सेवापराः॥४९॥

सूर्य-प्रभा टीका— जो गणक अक्षज्या, सूर्य की दिशा, कल्पादिगत मास चैत्रादि मास, तिथि शुक्लादि तिथि, वार रविवार से आरंभ करके वर्तमान वार को स्वयं नहीं जानता वह कूप में से तत्काल निकले हुए उस व्यक्ति के समान है जो भ्रमित रहता है तथा पूछी गई दिशादि को नहीं बता सकता। जो इन सब चीजों को जानता है उसके चरणों की गणितज्ञों का समाज वन्दना करता है तथा सेवा में तत्पर रहता है।

उत्तर— यन्त्र वेध विधि से ध्रुवोन्नति तथा नति से अक्षलम्ब आदि के द्वारा अक्षांश ज्ञात होते हैं। तुरियादि यन्त्र के द्वारा मध्याह्न में रवि के नतांश वेध करके अक्षांश के संस्कार के द्वारा क्रान्त्यंश होते हैं। क्रान्त्यंश की ज्या से विलोम विधि से दोर्ज्या ज्ञात करके उसके धनु के अंश वर्ष के प्रथम चरण का सायन सूर्य होता है। दूसरा छः राशि में से कम करके तथा छः राशि में युक्त करके तृतीय एवं बारह राशि में से घटाकर चतुर्थ वर्ष चरण सायन सूर्य होता है। वर्ष के चरण ज्ञात होने से सूर्य क्रांति नक्षत्रादि स्पष्ट ज्ञात हो जाते हैं। ध्रुव के द्वारा दिशा का ज्ञान होता है। इसी प्रकार प्रत्येक मध्याह्न में सूर्य स्पष्ट ज्ञात होता है। प्रथम दिन तथा अगले दिन के सूर्य स्पष्ट का अन्तर प्रतिदिन की स्पष्ट गति ज्ञात होती है। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त स्पष्ट गति ज्ञात कर सकते हैं। जिस दिन गति अत्यन्त अल्प हो उस दिन जो सूर्य स्पष्ट हो वह उच्च स्थान है। परमाधिक तथा परमाल्प का योगार्ध मध्यम गति होती है। स्पष्ट सूर्य से विलोम विधि के द्वारा प्रत्येक दिन का मध्यम सूर्य ज्ञात हो जाता है। उससे "राश्यादेर्विकला" आदि श्लोक के द्वारा अहर्गण ज्ञात हो जाता है। अहर्गण से वार ज्ञात हो जाता है। अहर्गण से विलोम विधि के द्वारा कल्पगत ज्ञात होता है। मध्यम सायन सूर्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

में से स्थूल अयनांश घटाने से निरयण मध्यम स्थूल सूर्य होता है। इससे अहर्गण साधन करके अयनांश साधन करने से पूर्वापेक्षया सूक्ष्म सायन मध्यम सूर्य होता है। इसमें से सूक्ष्म अयनांश हीन करने से निरयन मध्यम सूर्य किंचित सूक्ष्म होता है। असकृत कर्म से सूक्ष्म अयनांश तथा अहर्गण ज्ञात करते हैं। स्पष्ट अहर्गण से वार ज्ञात होता है। अहर्गण की विलोम विधि से गताब्द, मास, तिथि आदि ज्ञात हो जाता है। अतः इस प्रश्न का उत्तर यंत्रोत्तर संबंध से ज्ञात होता है।

इसी प्रकार गोलादि यंत्र के द्वारा स्पष्ट चन्द्र ज्ञात करे। स्पष्ट सूर्य तथा चंद्र के द्वारा मास, तिथि, नक्षत्र, योग, करण को ज्ञात करे।

इस प्रकार भगण भोग पर्यन्त स्पष्ट चन्द्र के वेध करने से मन्दोच्च ज्ञात करे और मन्दोच्च की गति ज्ञात करे। रात्रि में दृष्ट चन्द्र छाया से चन्द्रदिनगत पर भूपृष्ठस्थ क्षितिज से ऊपर होता है। जिस समय चन्द्र छाया को देखा जावे उस समय का स्पष्ट चन्द्र होता है।

अब चन्द्र में चन्द्र अयन दृककर्म दान करके उदय लग्न साधित करे। उदय लग्न तथा इष्ट लग्न का अन्तर घट्यादि, भूगर्भ से क्षितिज ऊपर होता है। अब अनुपात किया कि यदि दिनगत अन्तर में भूव्यासार्द्ध योजन होते हैं तो साठ (६०) घटि में कितने? इससे स्पष्ट कक्षा प्राप्त होती है। परमाधिक तथा परमाल्प कक्षा का योगार्ध मध्यम कक्षा कल्पित करे।

इसी प्रकार सभी ग्रहों को स्पष्ट करके उनकी कक्षा ज्ञात करे तथा उनकी मध्य गति भी ज्ञात करे। इसी प्रकार सबके शर ज्ञात करे। जिस ग्रह का दक्षिण शराभाव होता है वह भगण शुद्ध पात होता है। कालान्तर में पात ज्ञात करके सभी का परम शर ज्ञात करे।

स्पष्ट कक्षा का व्यासार्ध स्पष्ट योजन कर्ण होता है। यदि मध्यम योजन कर्ण में त्रिज्या तुल्य लिप्ताकर्ण होता है तो स्पष्ट योजन कर्ण में कितना होगा? इसके द्वारा चल कर्ण (शीघ्र कर्ण) प्राप्त होता है। क्योंकि शीघ्रकर्ण ग्रह कक्षा के व्यासार्ध तुल्य आचार्य के मत से स्पष्ट होता है। इस प्रकार प्रतिदिन का शीघ्रकर्ण ज्ञात करके परमाधिक चलकर्ण का त्रिज्या से अन्तर करने से शीघ्रान्त्य फलज्या प्राप्त होती है जिसका धनु शीघ्रफलांश होता है।

इस प्रकार प्रत्येक दिन का शीघ्रफल ज्ञात होने से उसका शीघ्रोच्च तथा शीघ्रोच्च गति ज्ञात होती है। उसका विलोम शीघ्रकर्णफल संस्कार करने से मन्द

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्पष्ट ज्ञात होता है। उससे पूर्ववत मन्दोच्च ज्ञात करे। अहर्गण से विभाजित करने से कुट्टक के द्वारा मन्दोच्च पात भगण ज्ञात होता है। इस प्रकार पूर्व पठित सिद्धान्त युक्ति से सब कुछ ज्ञात कर सकते हैं। यही इस प्रश्न का उत्तर है।

वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं तत्वान्तरं तस्य समुच्छ्रयं च।
यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ धीयन्त्रवेदी वद किं न वेत्ति॥५०॥
ऊर्ध्वस्थस्य गृहादिभिर्व्यवहितस्याप्यग्रमात्रं सखे
वंशस्य प्रगुणस्य यस्य सुसमे देशे समालोक्यते।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
मन्ये यन्त्रविदां वरिष्ठपदवीं यातोऽसि धीयन्त्रवित्॥५१॥
दूरस्थस्य न दूरगस्य यदि वादृष्टस्य दृष्टस्य वा
वंशस्य प्रतिबिम्बितस्य सलिले दृष्ट्वाग्रमात्रं सखे।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
त्वां सर्वज्ञमतीन्द्रियज्ञमनुजव्याजेन मन्ये भुवि॥५२॥

सूर्य-प्रभा टीका— उपरोक्त श्लोक इस ग्रंथ के यन्त्राध्याय के श्लोक हैं। इनकी व्याख्या के लिए यन्त्राध्याय के निम्नलिखित श्लोक देखें।

उपरोक्त श्लोक संख्या	यंत्राध्याय श्लोक संख्या
५०	४१
५१	४७
५२	४९

तिग्मांशुचन्द्रौ किल सायनांशौ चतुर्द्विराशी च विपातचन्द्रः।
गृहाष्टकं तत्र वदाशु पातं धीवृद्धिदं त्व यदि बोबुधीषि॥५३॥
युक्तायनांशोंऽशशतं शशी चेदशीतिरर्को द्विशती विपातः।
चन्द्रस्तदानीं वद पातमाशु धीवृद्धिदं त्व यदि बोबुधीषि॥५४॥
असंभवः संभवलक्षणेऽपि स्यात् संभवोऽसंभवलक्षणे किम्।
पातस्य सिद्धान्तमिह प्रचक्ष्व चेत् क्रान्तिसाम्ये प्रसृता मतिस्ते॥५५॥
भागोनयुक्तं त्रिभम $\frac{२}{२९}$। $\frac{३}{१}$र्कचन्द्रौ चेत् सायनांशौ च विपातचन्द्रः।
भागद्वयोनो भगण $\frac{११}{२८}$ स्तदानीं पातं वद त्वं यदि बोबुधीषि॥५६॥
यातेऽपि पाते क्वचिदेष्यलक्ष्म गम्ये न गम्यं वद चित्रमत्र।
यत् संभवासंभववैपरीत्यं सांवत्सराचार्य विचार्य नूनम्॥५७॥

सूर्य-प्रभा टीका— सायन सूर्य ४ राशि, सायन चंद्र २ राशि, तथा

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पात ६ राशि पर हो उस स्थान को शीघ्र निश्चित कहो यदि तुमने धी वृद्धिद् ग्रंथ का अध्ययन किया है।

यहाँ अयनांश के अभाव होने से पात भुजज्या का अभाव है तथा सूर्य चन्द्र की गोल संधी की अविकृत भिन्न ३।६।९ होती है। अयन संधी पर चन्द्र हो तो सूर्यपात ज्ञात करने के लिए सूर्य की ६० कला गति तथा चंद्रमा की ७८० कला गति कल्पित की। अयन संधि तुल्य चन्द्र ३, स्वेष्टकाल से इतने कालान्तर में अभीष्ट चं. हो जाता है तो आसन्न अयन संधी अंतर में एक राशि जिसकी १८०० कला होती है। इसको चंद्र गति ७८० से विभक्त करने से फल ऐष्य दिनाद्य २।१८।२८। इतने में सूर्य ४।२।१६ तथा चंद्र ६।०।७।२१ चलता है। यहाँ चंद्र की मध्यम क्रांति उत्तरा २४ अंश है। दक्षिण कलात्मक शर २६९।५९, स्पष्ट क्रांति उत्तरा १९।३०।१। सूर्यक्रांति २०।७।१०। यहाँ स्वायन संधी पर चंद्र की क्रांति में से तात्कालिक रवि की क्रांति घटाने से जितनी होती है उतनी क्रांति साम्य उनकी नहीं होती है जैसा कि पाताधिकार में पात अभाव ज्ञात करने के लिए उदाहरण दिया है।

पूर्व में पाताधिकार के श्लोक ३ से ६ तथा ११ से १४ की व्याख्या तथा उदाहरण में बताया है॥५३॥

अयनांश संस्कृत चंद्र ११० अंश अर्थात् ३।२०, सूर्य २।२०, विपात चं. अर्थात पातवर्जित चंद्र ६।२० है तो तात्कालिक पात कितना होगा कहो?

इसकी व्याख्या के लिए पाताधिकार के श्लोक ३ से ६ तथा ११ से १४ की व्याख्या का उदाहरण देखें॥५४ से ५७॥

आचार्य ने पाताधिकार के इन श्लोकों में जो उदाहरण स्वकृत व्याख्या (वा.भा०) में दिये हैं उन्हीं के लिए यहाँ प्रश्न बनाकर श्लोक कह दिये हैं।

इदानीं सिद्धान्तग्रथनकालमाह—

रसगुणपूर्णमही १०३६ समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुण ३६ वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणीः रचितः॥५८॥

अब इस ग्रंथ का रचनाकाल कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— शक १०३६ में मेरी (आचार्य का) उत्पत्ति हुई अर्थात जन्म हुआ और ३६ वर्ष की उम्र में मैंने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ को रचा अर्थात यह सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ लिखा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इदानीं विद्वज्जनानुनयादनौद्धत्यप्रतिपादनद्वारेणात्मनः प्रागल्भ्यं प्रार्थयन्नाह—

गणितस्कन्धसंदर्भोऽदभ्रदर्भाग्रधीमतः।
उचितोऽनुचितो यन्मे धाष्ट्यं तत् क्षम्यतां विदः॥५९॥

विद्वद जनों से क्षमा याचना—

सूर्य-प्रभा टीका— संदर्भित गणित स्कन्ध की रचना कुश के मूल से अग्र भाग तक लगातार तीक्ष्णता के सदृश तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा उसके भीतर तक प्रविष्ट होकर की जाती है। आचार्य कहते हैं कि ऐसे इस गणित स्कंध की रचना करने में मुझसे (बुद्धि से) जो भी उचित-अनुचित धृष्टता हुई हो उसके लिए ज्ञानी लोग मुझे क्षमा करे।

इदानीमाद्यदूषणापराधं परिहरन्नाह—

ये वृद्धा लघवोऽपि येऽत्र गणका बद्ध्वाञ्जलिं वाच्मि तान्
क्षन्तव्यं मम तैर्मया यदधुना पूर्वाक्तयो दूषिताः।
कर्तव्ये स्फुटवासनाप्रकथने पूर्वोक्तिविश्वासिनां
तत्तद्दूषणमन्तरेण नितरां नास्ति प्रतीतिर्यतः॥६०॥

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य अपने इस ग्रंथ के रचना काल के नवयुवक तथा प्रौढ़ गणितज्ञों तथा पूर्वकाल में हुए गणितों से हाथ जोड़ कर आचार्य द्वारा पूर्वाचार्यों की (उपपत्तियों) स्फुट वासना में जो दूषण उद्घोषित किये हैं उनके लिए क्षमा मांगते हैं।

आचार्य पूर्वाचायों की स्फुट वासना में दूषण उद्घोषित करने का कारण बताते हुए कहते हैं कि उन पूर्वाचार्यों के कथनों में किसी-किसी स्थान पर दूषण का उल्लेख किये बिना उनके द्वारा की गई उपपत्ति विश्वसनीय नहीं हो सकती थी। अतः ऐसा करने के लिए उन्हें यथा-यथा स्थान पर ऐसा करना पड़ा है।

आसीत् सह्याकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने
नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः।
श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः
साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः॥६१॥
तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलप्राप्तप्रसादः सुधी-
मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदं प्रस्फुटम्।
एतद्व्यक्तसदुक्तियुक्तिबहुलं हेलावगम्यं विदां
सिद्धान्तग्रथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः॥६२॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

केचित् पिपठिषन्त्येनं प्रश्नाध्यायं हि केवलम्।
तदर्थं लिखिता अत्र प्रश्नाः प्राग्गदिता अपि॥६३॥
प्रश्नानमून् प्रपठतो गणकस्य गोलकन्दोल्लसत्सरलयुक्तिशतप्रवालैः।
प्रश्नोत्तरार्थपरिचिन्तनवारिसिक्तमूलामला मतिलता समुपैति वृद्धिम्॥६४॥

आचार्य की वंश परंपरा का परिचय—

सूर्य-प्रभा टीका— सह्य नामक कुलाचल पर्वत में स्थित महाराष्ट्र नगर स्थित है उसमें विदर्भ (वराद) नामक देश में गोदावरी नदी के कुछ दूरी पर त्रैविधविद अर्थात त्रिवेदज्ञ जहाँ रहते हैं एक जडविड नामक ग्राम है जिसका आचार्य के समय के पश्चात् वर्तमान में नाम विडम है उसमें शाण्डिल्य गोत्र के एक द्विज (ब्राह्मण) यजुर्वेदशाखाध्यायी महेश्वराचार्य महामहोपाध्याय श्रौतस्मार्त्त के सार को जानने वाले रहते थे उनके श्रीमद् भास्कराचार्य सुपुत्र थे। आचार्य ने उन पिता के चरणारविंद युगल के प्रसाद से वेद-वेदांग आदि को सीखा है तथा इस ग्रंथ की रचना की है जो सुज्ञान का बोध सरलता से कराने वाला है तथा उत्कृष्ट तीक्ष्ण बुद्धि गणकों को भी ज्ञान तथा प्रसन्नता देने वाला है। इस ग्रंथ को सद्युक्तियों के द्वारा अच्छी प्रकार से कहा गया (लिखा गया) है। यह सरलता से बोधगम्य हो सकने वाला है। कुबुद्धियों की बुद्धि का मंथन करके सद्बुद्धि देने वाले चक्र के समान, भास्कराचार्य विरचित यह ग्रंथ है।

कुछ गणक इस प्रश्नाध्याय को ही पढ़ेंगे अतः गणिताध्याय में पहले ही जिन प्रश्नों का उत्तर कह दिया था उनको प्रश्न रूप में यहाँ गोलाध्याय में पुनः कहा गया है। ये प्रश्न पाठक की बुद्धि की वृद्धि करने वाले हैं। यहाँ वृद्धि शब्द का मंगलार्थ उपयोग किया है। यहाँ गणित दो प्रकार की कही गई है। एक ग्रहगणित था दूसरी गोलगणित। वासना की उपयोगिता के लिए व्यक्ताव्यक्त गणित गोल के अन्तर्गत कही गई है।

इन प्रश्नों के जल रूपी उत्तरों के द्वारा उत्कण्ठित गणकों की बुद्धि रूपी लता की बहुत वृद्धि होगी।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के यन्त्राध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

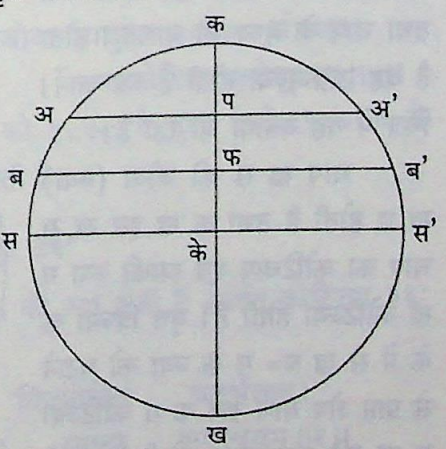
CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ ज्योत्पत्तिः

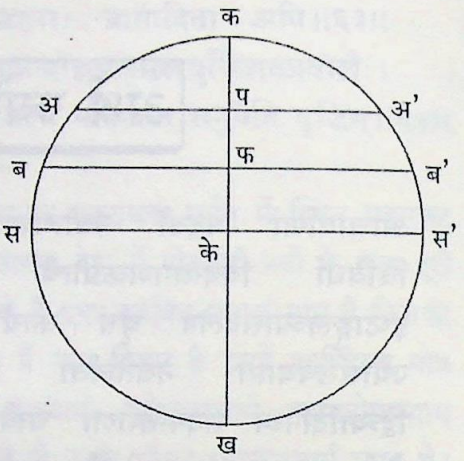
आचार्याणां पदवीं ज्योत्पत्त्या ज्ञातया यतो याति।
विविधां विदग्धगणकप्रीत्यै तां भास्करो वक्ति॥१॥
इष्टाङ्गुलव्यासदलेन वृत्तं कार्यं दिगङ्कं भलवाङ्कितं च।
ज्यासंख्ययाप्ता नवतेर्लवा ये तदीद्यजीवाधनुरेतदेव॥२॥
द्वित्र्यादिनिघ्नं तदनन्तराणां चापे तु दत्त्वोभयतो दिगङ्कात्।
ज्ञेयं तदग्रद्वयबद्धरज्जोरर्धं ज्यकार्धं निखिलानि चैवम्॥३॥
अथान्यथा वा गणितेन वच्मि ज्यार्धानि तान्येव परिस्फुटानि।
त्रिज्याकृतिर्दोगुणवर्गहीनां मूलं तदीयं खलु कोटिजीवा॥४॥
दोःकोटिजीवारहिते त्रिभज्ये तच्छेषके कोटिभुजोत्क्रमज्ये।
ज्याचापमध्ये खलु योऽत्र बाणः सैवोत्क्रमज्या सुधियात्र वेद्या॥५॥

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि वराहमिहिर आदि आचार्यों के समान आचार्य की पदवी वही गणक प्राप्त कर सकता है जो ज्योत्पत्ति को ज्ञात करना जानता है। भास्कराचार्य कहते हैं कि वे तीक्ष्ण बुद्धि गणकों की प्रसन्नता के लिए यहाँ विविध विधियाँ बतायेंगे जिनके द्वारा विभिन्न ज्याओं का मान ज्ञात किया जा सकता है॥१॥

इष्ट अंगुल व्यास का एक वृत्त बनावे तथा उसमें दिशायें तथा ३६० अंश अंकित करे। नब्बे (९०°) में ज्यासंख्या (यहाँ २४) का भाग देकर भागफल के तुल्य प्रथम जीवा का धनु दान देवे। उसको दो, तीन आदि से गुणा करके वृत्त पर चाप दोनों ओर काटे। उन दोनों ओर काटे गये चापों के अग्र भागों को मिलाने वाली रेखा के आधे के तुल्य सभी ज्यार्ध ज्ञात करे॥२-३॥



CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA



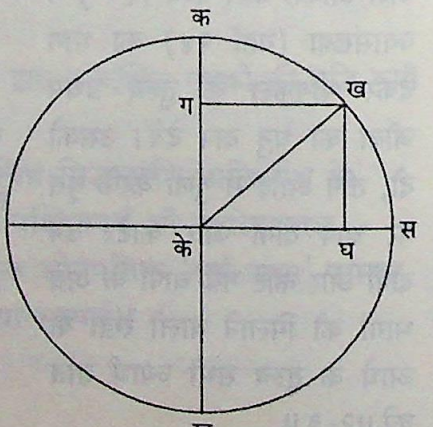
क स ख स' एक वृत्त बनाकर क ख तथा सस' रेखाओं द्वारा उसके चार पाद करे। क के स तथा क के स' दो पाद हैं। ब'अ' तथा ब अ चापाग्र बिन्दु हैं। सस', बब', अअ' इत्यादि चापाग्र बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखायें हैं इनके आधे भाग प अ' तथा फब', के स' हैं ये क्रमशः कअ', कब' तथा कस' चाप की ज्यायें हैं।

विस्तार से देखने समझने के लिए मेरे द्वारा लिखित 'ज्यातत्त्व विवेक' नामक ग्रंथ का अवलोकन करें।

अन्य प्रकार से गणित के द्वारा ज्यार्ध ज्ञात करने की जो विधियाँ आचार्य द्वारा कही गई हैं (यहाँ) उनके (ज्याओं) वर्ग को त्रिज्या के वर्ग में से घटा कर मूल लेने से उन ज्याओं के तुल्य अंशों की कोटिज्या प्राप्त होती है। अर्थात सूत्र रूप में

$\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{ज्या}^2\ \text{अंश}}$ = कोटिज्या अंश।

ज्या तथा कोटिज्या को त्रिज्या में से घटाने से प्राप्त शेष कोटि तथा भुज की उत्क्रमज्या होती है। तथा ज्या तथा चाप के मध्य जो बाणरूप होता है वह उत्क्रमज्या होती है यह जानें। चित्र में यह बताया जा रहा है।



चाप ख स की जीवा (ज्या) ख घ होती है तथा क ख इस ख स चाप का कोटिचाप एवं इसकी ज्या ग ख कोटिज्या होती है। वृत्त त्रिज्या क के में से ख घ= ग के ज्या को घटाने से प्राप्त शेष बाण रूप क ग कोटिज्या ग ख की उत्क्रमज्या होती है। इसी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकार बाण रूप घ स, ज्या ख घ की उत्क्रमज्या होती है। यह वृत्त की त्रिज्या (के स) – कोटिज्या (ग ख = के घ) के तुल्य होती है। अर्थात

क के – के ग = क ग अर्थात बाण क ग = त्रिज्या – भुजज्या = कोटि उत्क्रमज्या। तथा के स – के घ = घ स अर्थात बाण घ स = त्रिज्या – कोटिज्या = उत्क्रमज्या।

त्रिज्यार्धं राशिज्या तत्कोटिज्या च षष्टिभागानाम्।
त्रिज्यावर्गार्धपदं शरवेदांशज्यका भवति॥६॥

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या का आधा एक राशि की ज्या होती है तथा उसकी कोटिज्या साठ अंश की ज्या होती है। अर्थात $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$ = एक राशि (३० अंश) की ज्या। तथा कोटिज्या ३०° = ज्या ६०° होती है। त्रिज्या वर्ग के आधे का मूल ४५ अंश की ज्या होती है। अर्थात $\sqrt{\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२}}$ = ज्या ४५°॥६॥

त्रिज्याकृतीषुघातात् त्रिज्याकृतिवर्गपञ्चघातस्य।
मूलोनादष्टहृतान्मूलं षट्त्रिंशदंशज्या॥७॥

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या के वर्ग को पांच से गुणा करने से प्राप्त फल में से त्रिज्या के वर्ग के वर्ग अर्थात $(\text{त्रि}^२)^२ = \text{त्रि}^४$ को पांच से गुणा करके मूल लेने से जो प्राप्त हो उसको घटाकर उसमें आठ का भाग देकर प्राप्तफल का पुनः मूल लेने से ३६ अंश की ज्या होती है। अर्थात सूत्र रूप में–

$$\text{ज्या } ३६^\circ = \sqrt{\frac{५\,\text{त्रि}^२ - \sqrt{५(\text{त्रि}^२)^२}}{८}}$$

गजहयगजेषु ५८७८ निघ्नी त्रिभजीवा वायुतेन १०००० संभक्ता।
षट्त्रिंशदंशजिवा तत्कोटिज्याकृतेषूणाम्॥८॥

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या को ५८७८ से गुणा करके १०००० से विभक्त करने से ३६ अंश की ज्या होती है।

सूत्र $\frac{\text{त्रिज्या} \times ५८७८}{१००००}$ = ज्या ३६°

तथा इसकी कोटिज्या ५४ अंश की ज्या होती हैं अर्थात् कोटिज्या ३६° = ज्या ५४° होती है।

त्रिज्याकृतीषुघातान्मूलं त्रिज्योनितं चतुर्भक्तम्।
अष्टादशभागानां जीवा स्पष्टा भवत्येवम्॥९॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या के वर्ग को पांच से गुणा करके मूल लेने से प्राप्तफल में से त्रिज्या को घटाकर चार से विभक्त करने से अठारह (१८) अंश की ज्या होती है।

$$\text{सूत्र ज्या } १८^\circ = \frac{\sqrt{५\ \text{त्रि}^२} - \text{त्रि.}}{४}$$

क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलाद्दलं तदार्धांशकशिञ्जिनी स्यात्।
त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी वा॥१०॥

सूर्य-प्रभा टीका— किसी कोण की ज्या तथा उत्क्रमज्या के वर्गों के योग के मूल को आधा करने से उस कोण के आधे की ज्या प्राप्त होती है।

$$\text{सूत्र} - \frac{\sqrt{\text{ज्या}^२\theta + (\text{उ.क्र.ज्या}\theta)^२}}{२} = \text{ज्या}\ \frac{\theta}{२}$$ यहाँ θ = दिया हुआ कोण है।

त्रिज्या तथा उत्क्रमज्या के गुणा को आधा करके मूल लेने से उस कोण के आधे कोण की ज्या प्राप्त होती है।

$$\text{सूत्र} - \sqrt{\frac{\text{त्रि} \times \text{उत्क्रमज्या}\ \theta}{२}} = \text{ज्या}\ \frac{\theta}{२}$$

यहाँ θ = दिये हुए (अभीष्ट) कोण के अंश हैं।

तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां कोटेश्च कोट्यंशदलस्य चैवम्।
अन्यज्यकासाधनमुक्तमेवं पूर्वैः प्रवेक्ष्येऽथ विशिष्टमस्मात्॥११॥

सूर्य-प्रभा टीका— पुनः उस आधे कोण संख्यक ज्या के कोटि संख्यक ज्या तथा उसके आधे संख्यक की ज्या का मान इसी प्रकार ज्ञात कर सकते हैं। इस प्रकार अन्य ज्याओं के मान ज्ञात किये जा सकते हैं।

२४ ज्याओं से त्रिज्या का आधा ८ वीं ज्या होती है। इसकी कोटि (२४–८) १६ वीं ज्या होती है। ४५ अंश की ज्या, १२ वीं ज्या होती है। अब आठवीं की आधी ४ चोथी इसकी कोटि बीसवीं ज्या होती है। इसी प्रकार चौथी की आधी दूसरी इसकी कोटि २४ – २ = २२ वीं ज्या। दूसरी की आधी प्रथम और इसकी कोटि २३ वीं ज्या।

इस प्रकार बीसवीं से दशवी और चौहदवीं। दशवीं से ५ वीं और १९ वीं। २२ वीं से ग्यारहवीं और तेरहवीं। चौदहवीं से सातवीं और सत्रहवीं। बारहवीं से छठी और अठारहवीं। छठी से तीसरी और २१ वीं। अठारहवीं से नवीं और पंद्रहवीं। त्रिज्या चौबीसवीं है। इस प्रकार अन्य सभी ज्यायें ज्ञात की जा सकती हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिज्याभुजज्याहतिहीनयुक्ते त्रिज्याकृती तद्दलयोः पदे स्तः।
भुजोनयुक्तत्रिभखण्डयोर्ज्ये कोटिं भुजज्यां परिकल्प्य चैवम्॥१२॥

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या तथा भुजज्या को गुणा करके त्रिज्या के वर्ग में से घटा अथवा जोड़कर उसका आधा करके मूल लेने से नब्बे अंश में भुज को घटा अथवा जोड़कर आधा करने से प्राप्तफल की ज्या का मान प्राप्त होता है। इसी प्रकार कोटिज्या के लिए प्राप्त होता है।

सूत्र (१) – $\text{ज्या}\left(\frac{९०^\circ \mp \text{अ}}{२}\right) = \sqrt{\frac{\text{त्रि}^२ \mp \text{त्रि} \times \text{ज्या अ}}{२}}$

सूत्र (२) – $\text{कोज्या}\left(\frac{९०^\circ \mp \text{अ}}{२}\right) = \sqrt{\frac{\text{त्रि}^२ \pm \text{त्रि.ज्या अ}}{२}}$

यद्दोर्ज्ययोरन्तरमिष्टयोर्यत् कोटिज्ययोस्तत्कृतियोगमूलम्।
दलीकृतं स्याद् भुजयोर्वियोगखण्डस्य जीवैवमनेकधा वा॥१३॥

सूर्य-प्रभा टीका— दो भुजों (कोणों) की ज्या तथा कोटिज्या के अन्तर के वर्गों के योग के मूल को आधा करने से उन दोनों भुजों के अन्तर के आधे की ज्या कामान प्राप्त होता है।

सूत्र– $\text{ज्या}\frac{\text{B}-\text{A}}{२} = \sqrt{\frac{(\text{कोज्या A} - \text{कोज्या B})^२ + (\text{ज्या B} - \text{ज्या A})^२}{२}}$

इस प्रकार अनेक प्रकार के भुजों की ज्या का मान ज्ञात किया जा सकता है।

दोःकोटिजीवाविवरस्य वर्गो दलीकृतस्तस्य पदेन तुल्या।
स्यात् कोटिबाह्वोर्विवरार्धजीवा वक्ष्येऽथ मूलग्रहणं विनापि॥१४॥

सूर्य-प्रभा टीका— दो भुज की ज्या तथा कोटिज्या के अन्तर के वर्ग को आधा करके मूल लेने से कोटि तथा बाहु के अन्तर के आधे की ज्या का मान प्राप्त होता है।

सूत्र– $\text{ज्या}\left(\frac{\text{कोटि अंश} - \text{भुजांश}}{२}\right) = \sqrt{\frac{(\text{कोज्या भु} - \text{ज्या भुज})^२}{२}}$

दोर्ज्याकृतिर्व्यासदलार्धभक्ता लब्धत्रिमौर्व्योर्विवरेण तुल्या।
दोःकोटिभागान्तरशिञ्जिनी स्याज्ज्यार्धानि वा कानिचिदेवमत्र॥१५॥

सूर्य-प्रभा टीका— दोर्ज्या के वर्ग को व्यास के आधे के आधे अर्थात् त्रिज्या के आधे से विभक्त करने से प्राप्तफल को त्रिज्या में से घटाने से कोटि तथा भुज के अन्तर की ज्या का मान प्राप्त होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सूत्र – ज्या (कोटि – भुज) = त्रि – $\frac{\text{ज्या}^2 \text{ भु}}{\frac{\text{त्रि}}{२}}$

यहाँ (९० – भु) ; भुज = भु की कोटि होती है।

स्वगोऽङ्गेषुषडंशेन ६५६९ वर्जिता भुजशिञ्जिनी।
कोटिज्या दशभिः क्षुण्णा त्रिसप्तेषु ५७३ विभाजिता॥१६॥
तदैक्यमग्रजीवा स्यादन्तरं पूर्वशिञ्जिनी।
प्रथमज्या भवेदेवं षष्टिरन्यास्ततस्तत॥१७॥

सूर्य-प्रभा टीका— नब्बे अंश की ज्या त्रिज्या ३४३८ के तुल्य होती है। मूलभूत ज्या के मध्य जो इष्ट भुजज्या है उसकी कोटिज्या को पृथक से स्थापित करे। भुजज्या को ६५६९ में से घटाये तथा कोटिज्या को दश से गुणा करके ५७३ से विभक्त करे। इन दोनों फलों का योग करने से उससे अग्रिम अंशों की ज्या तथा घटाने से पूर्व अंशों की ज्या का मान ज्ञात होता है। जैसे ३०° की ज्या का मान त्रिज्या अर्ध १७१९ होता है। इससे पूर्वोक्त दोनों भागों का योग करने से ३१ अंश की, इससे ३२ अंश की इत्यादि ज्या ज्ञात कर सकते हैं और अन्तर करने से पूर्व की २९ अंश, २८ अंश की इत्यादि ज्या का मान ज्ञात होता है।

सूत्र– (६५६९ – ज्या भु) + $\frac{१० \times \text{कोटिज्या भुज}}{५७३}$ = (भुज + १) अंश की ज्या का मान है।

लेकिन वास्तव में अग्रिम तथा पूर्व ज्या का मान ज्या भु $\pm \frac{१० \times \text{कोज्या भु}}{५७३}$ के द्वारा प्राप्त होता है।

विद्वान लोग इस पर विचार करें। मेरे द्वारा लिखित 'ज्या तत्त्व विवेक' का अवलोकन करें।

इस प्रकार प्रथम ज्या से अन्य साठ अंश की साठ ज्यायें ज्ञात हो जाती हैं।

व्यासार्धेऽष्टगुणाब्ध्यग्नितुल्ये स्युर्नवतिर्ज्यकाः।
कोटिजीवा शताभ्यस्ता गोदस्रतिथि १५२९ भाजिता॥१८॥
दोर्ज्या स्वाघ्रङ्गवेदांश ४६७ हीना तद्योगसंमिता।
तदग्रज्या तयोश्चापि विवरं पूर्वशिञ्जिनी॥१९॥

सूर्य-प्रभा टीका— नब्बे अंश की ज्या ३४३८ व्यासार्ध तुल्य होती है। किसी कोण (भुज) की कोटिज्या को एक सौ (१००) से गुणा करके १५२९

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

से विभक्त करे। और भुजज्या को ४६७ से विभक्त करे। इन दोनों फलों को घटा कर भुजज्या में युक्त करने से अग्रिम ज्या का मान प्राप्त होता है तथा दोनों फलों को जोड़कर भुजज्या में से घटाने से पूर्व की ज्या का मान ज्ञात होता है।

जैसे ८ वीं (ज्या), ३० अंश की ज्या का मान १७१९ तथा उसकी कोटि १६ वीं (ज्या) ६० अंश की ज्या का मान २९७८ होता है। अतः प्रश्नानुसार–

२९७८ × १०० ÷ १५२९ = १९४.७६७८ = १९५ स्वल्पांतर से।

$\frac{१७१९}{४६७}$ = ३.६८ = ४ स्वल्पांतर से।

१९५ – ४ = १९१

ज्या ३०° = १७१९

अन्तर = १९१० = अग्रिम ९वीं ज्या का मान।

तथा १९५ + ४ = १९९

ज्या ३०° = १७१९

अन्तर = १५२० = पूर्व की ७ वीं ज्या का मान।

इसी प्रकार योग द्वारा ९ वीं से दशवीं, दशवीं से ग्यारहवीं इत्यादि तथा अन्तर द्वारा छठी, पांचवीं इत्यादि ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं।

त्रिज्या को दोर्ज्या मानकर कोटिज्या शून्य होगी। इनसे २३ वीं, २२ वीं, २१ वीं इत्यादि सभी ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं।

तत्त्वदस्रा नगांशोना २२४।५१ एवमत्राद्यशिञ्जिनी।
ज्यापरंपरयैवं वा चतुर्विंशतिमौर्विकाः ॥२०॥

सूर्य-प्रभा टीका— प्रथम ज्या का मान २२४।५१ होता है। यहाँ तत्त्व = २५, दस्र = २ तथा नगांश अर्थात एक अंश = ६० कला नग = ७ वाँ भाग कम। ६० ÷ ७ = ९ स्वल्पांतर से। अतः २२५ कला – ९ विकला = २२४।५१ कलादि प्रथम ज्या का सूक्ष्म मान आचार्य ने कहा है। यह आधुनिक मान के अत्यन्त तुल्य है। आचार्य आगे कहते हैं कि इस प्रथम ज्या के मान से परंपरागत चौबीस ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं।

चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथः कोटिज्यकाहते।
त्रिज्याभक्ते तयोरैक्यं स्याच्चापैक्यस्य दोर्ज्यका ॥२१॥
चापान्तरस्य जीवा स्यात् तयोरन्तरसंमिता।
अन्यज्यासाधने सम्यगियं ज्याभावनोदिता ॥२२॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समासभावना चैका तथान्यान्तरभावना।
आद्यज्याचापभागानां प्रतिभागज्यकाविधिः ॥२३॥

सूर्य-प्रभा टीका— किसी इष्ट दो चापों (दोनों भागों) की एक की दोर्ज्या को दूसरे की कोटिज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करके उनका योग करने से उन चापों के योग की ज्या का मान प्राप्त होता है तथा घटाने से उन चापों के अन्तर चाप की ज्या का मान ज्ञात होता है। इस प्रकार सिद्ध की हुई ज्या के मानों से अन्य ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं। योग के द्वारा एक ज्या का मान तथा घटाने के द्वारा दूसरी ज्या का मान ज्ञात कर सकते हैं। आद्य अर्थात प्रथम चाप के अंशों से दूसरे चाप के अंशों की इसी प्रकार प्रति भाग (अंश) की ज्या का मान ज्ञात किया जा सकता है।

या ज्यानुपाततः सेष्टव्यासार्धे परिणाम्यते।
आद्यदोः कोटिजीवाभ्यामेवं कार्या ततो मुहुः ॥२४॥
भावना स्युस्तदग्रज्या इष्टे व्यासदले स्फुटाः।
स्थूलं ज्यानयनं पाट्यामिह तन्नोदितं मया ॥२५॥

सूर्य-प्रभा टीका— अनुपात के द्वारा ज्या का मान ज्ञात हो उसको इष्ट व्यासार्ध में परिणित कर लेवे। प्रथम ज्याखंड की ज्या कोटिज्या से इसी प्रकार बार बार करके ज्ञात कर लेवे। इस प्रकार इष्ट त्रिज्या के अनुसार आगे-आगे की ज्या का मान ज्ञात कर सकते हैं।

स्थूल ज्या का आनयन आचार्य द्वारा कथित पाटि गणित (लीलावती) में बताया है।

इति ज्योत्पतिः

उक्ता संक्षेपतः पूर्वं ज्योत्पत्तिं सुगमा च सा।
सविशेषाधुना तत्र विशेषाद्विवृणोम्यतः ॥१॥

यहाँ ज्या उत्पत्ति की सुगम विधियाँ बताई हैं। जिस विशेष अंश की ज्या ज्ञात करनी हो वह यहाँ कहे गये विवरण से ज्ञात करें।

इस ज्योत्पत्ति अध्याय की विस्तृत व्याख्या एवं उदाहरणों के लिए मेरे द्वारा लिखित 'ज्या तत्त्व विवेक' नामक ग्रंथ का अवलोकन करें।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुबन्ध - I

शुद्ध अहर्गण साधन सूत्र

सिद्धान्त ग्रंथों में अहर्गण, कल्पारंभ से इष्ट दिन तक की सावन दिन संख्या होती है। तंत्र ग्रंथों में अहर्गण महायुगारंभ अथवा कभी-कभी कलियुगारंभ से इष्ट दिन तक की सावन दिन संख्या होती है। इसी प्रकार करण ग्रंथों में किसी विशेष वर्षारंभ अथवा प्रचलित वर्षारंभ से अभीष्ट दिन तक की सावन दिन संख्या होती है।

इनकी सहायता से किसी ग्रह की अभीष्ट वर्ष तथा मास के इष्ट दिन या तिथि पर स्थिति जानी जाती है। खगोल गणित की समस्त गणनाओं की सर्वप्रथम तथा आधारभूत गणना अहर्गण का साधन ही है। इसकी शुद्धि पर ही समस्त गणनाओं की शुद्धि आधारित होती है।

विभिन्न आचार्यों ने आदिकाल से अहर्गण साधन के सूत्र अपने अपने ग्रंथों में बताये हैं। वातेश्वर अथवा वटेश्वराचार्य ने मध्यमाधिकार के अध्याय-२ में वटेश्वर सिद्धान्त में अहर्गण साधन की अनेक विधियाँ दी हैं। उनमें से श्लोक १२, १३, १४, १५, तथा २७ में बताई गई विधियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने **वर्षमान को गत वर्ष संख्या से गुणा करने से गत वर्षों (अभीष्ट) की अहर्गण संख्या प्राप्त होना कहा है।** इसमें अभीष्ट मास (गत) तथा इष्ट दिन तक के दिवस (गत) जोड़ देने से अभीष्ट दिवस तक की अहर्गण संख्या प्राप्त हो जाती है। भास्कराचार्य ने वर्षमान ३६५/१५/३०/२२/३० मानकर ऐसा ही सूत्र बताया है। वटेश्वर आचार्य ने वर्ष मान ३६५।१५।३१।१५ ग्रहण करके गत वर्षों का अहर्गण ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र बताये हैं।

भास्कराचार्यानुसार सूत्र = $३६५ \times \text{ग.व} + \frac{\text{ग.व}}{४} + \frac{\text{ग.व}}{१२०} + \frac{\text{ग.व}}{९६००} = ३६५\ \text{ग.व} + \frac{७७३०}{९६००}\ \text{ग.व}$

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वटेश्वर के सूत्र—

(१) श्लोक १२ तथा १२$\frac{१}{२}$ द्वारा; गत वर्षों की दिन संख्या = ३६०×ग.व. + $\frac{१८९३१३}{३६०००}$ ग.व.

(आधुनिक वर्षमान से यह सूत्र = ३६० ग.व + $\frac{१८९२२९.५}{३६०००}$ ×ग.व. होगा)

(२) श्लोक १३ तथा १३$\frac{१}{२}$ द्वारा; गत वर्षों की दिन संख्या = ३६०×ग.व. + $\frac{९३१३}{३६०००}$ ग.व.

(आधुनिक वर्षमान से यह सूत्र = ३६५ ग.व + $\frac{९२२९.५}{३६०००}$ × ग.व. होगा)

(३) श्लोक १४ तथा १४$\frac{१}{२}$ द्वारा; गत वर्षों की दिन संख्या = ३६४×ग.व. + $\frac{४५३१३}{३६०००}$ ग.व.

(आधुनिक वर्षमान से यह सूत्र = ३६४ ग.व + $\frac{४५२२९.५}{३६०००}$ ×ग.व. होगा)

(४) श्लोक २७ के द्वारा; गत वर्षों की दिन संख्या = + $\frac{१३१४९३१३}{३६०००}$ ग.व.

(आधुनिक वर्षमान से यह सूत्र = $\frac{१३१४९२२९.५}{३६०००}$ ×ग.व. = ३६५.२५६३७५× ग.व. होगा)

इन सभी सूत्रों को वर्ष की दिन संख्या ३६५ तथा १५।३१।१५ घटी पलादि के भिन्न-भिन्न प्रकार से खण्ड करके भिन्न-भिन्न प्रकार से अंश तथा हर को गुणा-भाग करके, प्राप्त किये हैं। इन सभी सूत्रों की संख्याओं को इकट्ठा करके हम वर्षमान् (३६५।१५।३१।१५ आचार्य द्वारा स्वीकृत) को गत वर्ष संख्या से गुणा के रूप में लिख सकते हैं।

वातेश्वर (वटेश्वर) आचार्य की यह युक्ति हम हमारे द्वारा प्रतिपादित सूत्र के आधार के रूप में उपयोग में लेंगे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रह लाघव गंथकर्ता गणेश दैवज्ञ के अनुरूप ही श्रीमद् वेंकटेशकेतकर महोदय ने भी गताब्द के १९ वर्षों के एक-एक चक्र बनाकर अहर्गण साधन का सूत्र प्रतिपादित किया है। श्री केतकर महोदय द्वारा स्वीकृत १९ वर्ष का एक चक्र मैं भी स्वीकार करता हूँ क्योंकि इस चक्र में ली गई वर्ष संख्यायें कुछ विशिष्टता लिए हुए है जो श्री केतकर महोदय ने अपनी टीका में बताई हैं। अब आचार्य वटेश्वर द्वारा बताये पूर्वोक्त अहर्गण साधन के सिद्धान्त के आधार प हम १९ वर्ष के दिनों की संख्या (अहर्गण) ज्ञात करते हैं। हम इस गणना में आधुनिक वर्षमान् ३६५।१५।२२।५७ दिनादि अथवा ३६५ दिन ६ घं. ९ मि. १०.८ सै. लेकर गणना करेंगे क्योंकि यहि आधुनिक वेध शुद्ध वर्षमान है।

३६५ दि. × १९ =६९३५ दिन

६ घं. × १९ =४।४५ दि. घटी

$\frac{१ \text{ मि.} \times २.५}{६०} \times १९$ =७।७।३० घ. प. वि.

$\frac{१०.८ \text{ सै.} \times २.५}{६०\times६०} \times १९$ =८।३३ प. वि.

(३६५ दि. ६घं. ९ मि. १०.८ सै.)×१९=६९३९।५२।१६।३ दि.घ.प.वि.(A)

यदि हम १९ वर्ष के एक चक्र में अहर्गण संख्या ६९४० माल लें जैसे कि श्री केतकर जी ने माना है तो इस प्रकार हम ७८ घटी अधिक तथा १६ पल ३ विपल कम ले रहे हैं प्रत्येक चक्र में।

८ घटी $७\frac{१}{२}$ चक्रों में $८\times७\frac{१}{२}$ = ६० घटी = १ दिन अथवा १५ चक्रों में २ दिन मान हो जाता है।

इसी प्रकार १६ पल को १९ वर्ष के एक चक्र में कम लेने से २२५ चक्रों में २२५×१६ = ३६०० पल हो जाता है। यह १ दिन (६०घ.×६०प. = ३६०० पल) के तुल्य होता है।

अतः ८ घटि अधिक को बराबर करने के लिए अहर्गण सूत्र में $\frac{२ \text{ चक्र}}{१५}$ कम करना होगा तथा १६ पल प्रति चक्र कम लिया है उसको पूरा करने के लिए अहर्गण में से $\frac{\text{चक्र}}{२२५}$ जोडना होगा। शेष ३ विपल के लिए अहर्गण में चक्र ÷ ७५७८९ जोडना होगा।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इस प्रकार हमारा अहर्गण साधन का सूत्र निम्नलिखित प्रकार से बनता है।

(मध्यम) अहर्गण = (३६५।१५।२२।५७) × चक्र शेष वर्ष + चक्र संख्या की अहर्गण संख्या

(मध्यम) अहर्गण = ३६५ × चक्र शेष + $\frac{\text{चक्र शेष}}{४}$ − $\frac{२ \text{ चक्र}}{१५}$ + $\frac{\text{चक्र}}{२२५}$ + $\frac{\text{चक्र}}{७५७८९}$ + चक्र × ६९४० इसमें जिन ईसवी वर्षों में ४०० का भाग पूरा न जाने से लीप वर्ष नहीं गिना जाता उसका संस्कार भी करें।

यह सूत्र गताब्द की पूर्ण वर्ष संख्या के लिए प्राप्त होता है तथा क्योंकि प्रत्येक चार वर्ष में वर्षमान की १५ घटी, एक दिवस पूर्ण कर लेती हैं अतः अहर्गण के सूत्र में चक्र शेष ÷ ४ जोड़ दिया है। इस प्रकार चक्र शेष वर्ष की संख्या के अनुसार वर्षमान की १५ घटी की दिन संख्या आ जावेगी। वर्षमान के शेष (२२ पल ५७ विपल) × चक्र शेष को हमने छोड़ दिया है क्योंकि इसका मान सदा एक दिवस के कम ही रहेगा क्योंकि चक्र शेष १९ वर्ष से सदा कम होगा। सूत्र A को देखने से यह स्पष्ट है।

इस सूत्र में प्रचलित वर्ष के गत मास तथा गत तिथि संख्या से क्षय तिथि संख्या ज्ञात करके शेष सावन दिन संख्या ज्ञात करके उपरोक्त मध्यम अहर्गण में जोड़ देने से अभीष्ट दिवस की शुद्ध अहर्गण संख्या ज्ञात हो जावेगी। अतः केतकी ग्रह गणितानुसार—

चैत्रादि से गत चांद्र मास × ३०+गत तिथि = तिथि गण

तिथि गण ÷ ६४ = क्षय तिथि

तिथि गण − क्षय तिथि = शेष सावन दिन संख्या = B

अतः अहर्गण का सूत्र निम्नलिखित प्रकार से बना—

स्प्ष्ट अहर्गण = मध्यम अहर्गण + B

यदि हम गताब्द की गणना ईस्वी सन् से करते हैं तो B का मान प्रचलित वर्ष की एक जनवरी से अभीष्ट मास की अभीष्ट तारीख तक की दिन संख्या होगी। और यदि शकाब्द से करते हैं तो पूर्व मान के अतिरिक्त हम मेष संक्रान्ति से इष्ट दिवस तक की संख्या भी वटेश्वराचार्य द्वारा बताये अनुसार ले सकते हैं। लेकिन इस स्थिति में शक की गणना मेष संक्रांति से आरंभ कर मेष संक्रांति

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तक ही करनी होगी। वार ज्ञात के लिए अहर्गण ÷ ७ के शेष तुल्य गणनारंभ दिवस से शेष दिवस तक।

१९ वर्ष की चक्र संख्या वराह की पंच सिद्धान्तिका में ली गई है। वहाँ बताया गया है कि २२८ सौर मास में २२५ चांद्रमास (लगभग) पूरे-पूरे होते हैं।

मेरे सूत्र में शुद्धता अधिक है यह बात मैं आगे उदाहरणों द्वारा प्रतिपादित करूँगा। हमारा वर्षमान अधिक सूक्ष्म तथा शुद्ध होने से पूर्वाचार्यों द्वारा साधित अहर्गण मान अधिक लम्बे समय में कभी-कभी भिन्न आता है। लेकिन इन दोनों में से हमारे सूत्र द्वारा साधित अहर्गण ही शुद्ध है। क्योंकि यह वटेश्वर के आधारभूत अहर्गण साधन के सिद्धान्त पर आधारित है।

उदाहरण—

(१) कलि आरंभ से शक आरंभ के ३१७९ गताब्द का अहर्गण ज्ञात करना है।

गताब्द = ३१७९; ३१७९ ÷ १९ = १६७ चक्र ; चक्र शेष = ६

$$\text{स्पष्ट अहर्गण} = ३६५ \times \text{च.शे.} + \frac{\text{चक्र शेष}}{४} - \frac{२ \text{ चक्र}}{१५} + \frac{\text{चक्र}}{२२५} + \frac{\text{चक्र}}{७५७८९}$$

$$+ \text{चक्र} \times ६९४० + B =$$

$$= ३६५ \times ६ + \frac{६}{४} - \frac{१६७ \times २}{१५} + \frac{१६७}{२२५} + \frac{१६७}{७५७८९} + १६७ \times ६९४० + ०$$

= २१९०+१–२२+०+०+११५८९८०+०

स्प अहर्गण = ११,६१,१४९

वार = ११,६१,१४९ ÷ ७ = ३

कलि आरंभ शुक्रवार से होने से अभीष्ट वार रविवार हुआ।

उदाहरण २—

एक महायुग = ४३२०००० वर्ष का अहर्गण साधन।

१ वर्ष मान आधुनिक ३६५।१५।२२।५७ लेने से अभीष्ट अहर्गण-

३६५×४३२०००० =	१५,७६,८००,०००	सावन दिवस
$\frac{१५}{६०} \times ४३२०००० =$	१,०८०,०००	,,
$\frac{२२.९५}{६०\times६०} \times ४३२०००० =$	२७,५४०	,,
एक महायुग का अहर्गण =	१५,७७,९०७,५४०	,,

 CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पुरातन वर्षमान क्योंकि लगभग ८.५ पल अधिक था अतः पूर्वाचार्यों द्वारा साधित महायुग का अहर्गण लगभग ८.३९×४३२०००० = १००६८ दिन अधिक था।

आर्यभट का एक महायुग का अहर्गण मान = १,५७७,९१७,५४२

आधुनिक सूर्य सिद्धान्त द्वारा एक म.यु.का अहर्ग.=१,५७७,९१७,८२८

वराह मिहिर द्वारा एक म.यु. का अहर्गण = १,५७७,९१७,८००

मेरे द्वारा प्रतिपादित सूत्र द्वारा अहर्गण साधनः—

एक महायुग के वर्ष ४३२०००० ÷ १९ = २२७३६८ चक्र ; चक्र शेष = ८

स्पष्ट अहर्गण = ३६५×८+ $\frac{८}{४}$ − $\frac{२×२२७३६८}{१५}$+$\frac{२२७३६८}{२२५}$+$\frac{२२७३६८}{७५७८९}$+

२२७३६८ ×६९४०+B

= २९२०+२ − ३०३१५ + १०१० + १५७७९३३९२० + ०

= १५७७९०७५४० यही संख्या हमने पूर्व में प्राप्त की है।

उदाहरण ३—

लघुभास्करीय की अंग्रेजी टीका में प्रो. श्री कृपा शंकर शुक्ल ने अध्याय एक में निम्नलिखित अहर्गण साधन किया है।

१ जनवरी १९६३ ए.डी. का अहर्गण साधन करना है। हिन्दु पंचांग से इस दिन मंगलवार, ६ तिथि, शुक्ल पक्ष, पौष मास शक संवत् १८८४ था।

शक १८८४+३१७९ = ५०६३ गताब्द .....(१)

५०६३×१२+९ (चैत्र से इष्टमास पौष तक गतमास संख्या) = ६०७६५..(२)

६०७६५×१५९३३३६÷५१८४०००० (शेष को त्यागने पर) = १८६७..(३)

१८६७ + ६०७६५ = ६२६३५..(४)

६२६३५×३०+५ (प्रचलित मास की गत तिथि संख्या) = १८७८९६५..(५)

१८७८९६५×२५०८२५८०÷१६०३०००० ८०(शेष त्यागने) = २९४०००..(६)

१८७८९६५ − २९४०० = १८४९५६५..(७)

अतः स्पष्ट अहर्गण १८, ४९, ५६५ हुआ। वार : १८४९५६५÷७ = शेष ४ अतः १ जनवरी शुक्रवार से गिनने पर ५वें दिन मंगलवार को पडती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मेरे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

इष्ट गताब्द १८८४ + ३१७९ = ५०६३

५०६३ ÷ १९ = २२६ चक्र ; चक्र शेष = ९

अहर्गण = $९ \times ३६५ + \frac{९}{४} - \frac{२ \times २२६}{१५} + \frac{२२६}{२२५} + २६६ \times ६९४० + B$

= ३२८५ + २ − ३५ + १ + १८४६०४० + B

= १८४९२९३ + B

गत चांद्रमास ९ × ३० = २७०, गत तिथि = ५

(चै. से वै., ज्ये, षाढ, श्रा., भाद्र.,आश्वि., कार्ति.,मार्ग.,पौष शुक्ल)

तिथिगण = २७०+५ = २७५, क्षय तिथि २७५ ÷ ६४ = ४

B = शेष अहर्गण = २७५ − ४ = २७१

अतः स्प अहर्गण = १८,४९,२९३ + २७१ = १८,४९,५६४+१ = १८,४९,५६५

वार = १८,४९,५६५ ÷ ७ =४; शुक्रवार से गिनने पर १ जनवरी को मंगलवार आता है।

उदाहरण ४—

श्री केदारदत्त जोशी ने अपनी ग्र.ला. टीका में पृ.४१ पर **करण कुतुहल** ग्रंथानुसार अहर्गण साधन किया है।

शक	१४४२	सोमवार
	११०५	शुक्रवार
गताब्द =	३३७	
	×१२	
सौर मास =	४०४४	
४०४४×२ =	८०८८	
	+६६	
	८१५४	
८१५४ ÷ ९०० =	−९	
	८१४५	
८१४५ ÷ ६५ =	१२५	अधिमास
४०४४+१२५ =	४१६९	चांद्रमास
	× ३०	

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चांद्र दिन = १२५०७०

१२५०७० + ३ = १२५०७३ ÷ ७०३ = १७७

१२५०७३ + १७७ = १२५२५० ÷ ६४ = १६५७ क्षयाहा

अहर्गण = १२५०७० – १६५७ = १२३११३

वार = १२३११३ ÷ ७ = ४ शेष सोमवार

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

गताब्द १४४२–११०५ = ३३७

३३७ ÷ १६ = १७ चक्र; चक्र शेष = १४

$$\text{अहर्गण} = १४\times३६५ + \frac{१४}{४} - \frac{२\times१७}{१५} + \frac{१७}{२२५} + १७\times६६४०+B$$

= ५११०+३ – २+०+११७६८०+०

अहर्गण = १२३०६१+१ = १२३०६२

वार = १२३०६२ ÷ ७ = शेष ४, सोमवार।

इस प्रकार दोनों अहर्गण में १२३११३ – १२३०६२ = २१ दिवस का अंतर है। इसकी शुद्धता की जाँच करते हैं।

वर्षमान ३६५।१५।२२।५७ × ३३७ = अहर्गण

३६५ × ३३७ = १२३००५

$\frac{१५}{६०}$ × ३३७ = ८४

शेष (२२।५७) × ३३७ = २

अहर्गण = १२३०६१

अतः हमारे द्वारा ज्ञात किया गया अहर्गण ही शुद्ध है।

उदाहरण ५—

करण कुतुहल की श्री सुधाकर द्विवेदी कृत टीका में दिये गये उदाहरण अनुसार अहर्गण साधन।

संवत् १६७६ चैत्रादि वर्ष शाके १५४१ चन्द्रे ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष १४ तिथि रविवार का अहर्गण साधन किया है।

१५४१ – ११०५ = ४३६ गताब्द

४३६ × १२ + गतमास १ = ५२३३ गत सौर मास

५२३३ × २ = १०४६६ + ६६ = १०५३२

१०५३२ ÷ ६०० = ११ लब्धि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०५३२ − ११ = १०५२१ ÷ ६५ = १६१ लब्धि अधिमास

५२३३+१६१ = ५३९४ चांद्रमास

५३९४ × ३० + २८ (गततिथि) = १६१८४८ तिथिगण

$\frac{१६१८४८+३}{७०३}$ = २३० लब्धि

१६१८५१+२३० = १६२०८१ ÷ ६४ = २५३२ तिथि क्षय

अहर्गण = १६१८४८ - २५३२ = १५९३१६

वार = १५९३१६ ÷ ७ = ३ शेष शुक्रवार से गिनने पर रविवार आता है।

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

१५४१ - ११०५ = ४३६ वर्षगण ; ४३६÷१९ = २२ चक्र, चक्र शेष = १८

अहर्गण = चक्रशेष × ३६५ + $\frac{\text{चक्र शेष}}{४}$ − $\frac{२ \text{ चक्र}}{१५}$ + $\frac{\text{चक्र}}{२२५}$ + चक्र × ६९४० +B

$१८ \times ३६५ + \frac{१८}{४} - \frac{२ \times २२}{१५} + \frac{२२}{२२५} + २२ \times ६९४० + B$

= ६५७०+४ − २+१५२६८०+B

= १५९२५२+B

B = गतमास १ × ३० + २८ = ५८

अतः अहर्गण = १५९२५२+५८ = १५९३१०-१ = १५९३०९

वार = १५९३०९ ÷ ७ = शेष ३ शनिवार।

दोनों अहर्गण में अंतर १५९३१९ − १५९३०९ = ७ दिन

शुद्धता की परीक्षाः—

३६५ × ४३७ = १५९१४०

$\frac{१५}{६०}$ × ४३६ = १०९

शेष (२२।५७) × ४३६ = ३

३६५.२५६३७५× ४३६ १५९२५२

B = + ५८

शुद्ध अहर्गण = १५९३१०

हमारा अहर्गण इसी के तुल्य है। अतः शुद्ध एवं सही है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उदाहरण ६—

पंच सिद्धान्तिका के अनुसार अहर्गण साधन

शक १८०० चैत्र पूर्णमासी शनिवार का अहर्गण साधन।

१८०० − ४२७ = १३७३ गताब्द

१३७३ × १२ = १६४७६ सौर मास

$\frac{१६४७६\times७}{२२८}$ = ५०५ अधिमास

१६४७६+५०५ = १६९८१ मास योग

१६९८१ × ३०+१४ = ५०९४४४

$\frac{५०९४४४\times११+५१४}{३०३}$ = १८४९६ क्षय तिथि

तिथिगण ५०९४४४ − क्षय तिथि १८४९६ = ४९०९४८ अहर्गण।

यह अहर्गण रोमक तथा पौलिश सिद्धान्तानुसार है।

वार = ४९०९४८ ÷ ७ = ५ शेष; मंगलवार से गिनने पर शनिवार आता है।

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

१८०० - ४२७ = १३७३ गताब्द। १३७३÷१९ = ७२ चक्र; चक्र शेष = ५

अहर्गण = $५\times३६५ + \frac{५}{४} - \frac{२\times७२}{१५} + \frac{७२}{२२५} + ७२ \times ६९४० + B$

= १८२५+१−९+०+४९९६८०+१४ [∵B=० मास+१४ तिथि=१४]

अहर्गण = ५०१५११ + २ = ५०११५१३

वार = ५०१५१३ ÷ ७ = शेष ५; मंगलवार से निगने पर शनिवार।

वार मिलाने के लिए २ जोड़ा है।

शुद्धता की परीक्षाः—

३६५.२५६३७५ × १३७३ = ५०१४९७

गत तिथि = +१४

शुद्ध अहर्गण = ५०१५११

अतः हमारे द्वारा साधित अहर्गण ही शुद्ध है।

दोनों अहर्गण में ५०१५११ − ४९०९४८ = १०५६३ दिन का अन्तर है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उदाहरण ७—

ग्रह लाघव के अनुसार अहर्गण साधन

श्री केदार दत्त जोशी ने अपनी ग्र.ला. की टीका में पृष्ठ १४ पर अहर्गण साधन किया है।

संवत् २०३६ शक वर्ष १९०१ फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा शनिवार तदनुसार १ मार्च १९७९ शनिवार को काशि में सूर्योदय काल में अहर्गण साधन—

१९०१ − १४४२ = ४५९ गताब्द

४५९ ÷ ११ − ४१ चक्र ; चक्रशेष = ८

८ × १२ + ११ (गतमास) = १०७ सौर मास

$\frac{१०७+\text{चक्र}४१\times२+१०}{३३} = \frac{१९९}{३३}$ = ६ अधिमास

$\frac{\text{चक्र}\ ४१}{६}$ + ३४०४ = ३४१० ÷ ६४ = ५३ क्षय तिथि।

अहर्गण = ३४१० − ५३ = ३३५७

क्योंकि समीप में ज्यैष्ठ मास में अधिमास होने वाला है अतः भास्कराचार्य के अनुसार पूर्व प्राप्त अधिमास ६ न ग्रहण करके ५ ही ग्रहण करना चाहिए। अतः—

(१०७+५) × ३० + १४ = ३३७४

$\frac{४१}{६}$ + ३३७४ = ३३८०

$\frac{३३८०}{६४}$ = लब्धि ५२ क्षय तिथि

अतः शुद्ध अहर्गण = ३३८० − ५२ = ३३२८

वार ज्ञान = ४१×५ + ३३२८ = ३५३३ ÷ ७ = ५ शेष मंगलवार से गिनने पर शनिवार।

संपूर्ण दिवस = ४१ × ४०१६ + ३५५३ = १६८१८९ अहर्गण

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन

गताब्द ४५९ ÷ १९ = २४ चक्र ; चक्र शेष = ३

अहर्गण = ३ ÷ ३६५ + $\frac{३}{४} - \frac{२\times२४}{१५} + \frac{२४}{२२५} + २४\times६९४०+B$

= १०९५ − ३ + १६६५६० + B

= १६७६५२ + B

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(गतमास × ३० + तिथिगण = ११×३०+१४ = ३४४

३४४ ÷ ६४ = ५ क्षय तिथि अतः B = ३४४–५ = ३३९)

अहर्गण = १६७६५२ + ३३९ = १६७९९१

वार = १६७९९१ : ७ = ५ शेष ; शनिवार (मंगलवार से) शुद्ध है।

दोनों अहर्गण में अंतर १६८१८९ – १६७९९१ = १९८ दिन

अहर्गण की शुद्धता का परीक्षण

३६५.२५६३७५ × ४५९ = १६७६५३
+ B = ३३९
शुद्ध अहर्गण = १६७९९२

शुद्ध अहर्गण = १६७९९२

३६५ × ४५९ =	१६७५३५
४५९÷४ =	११४
शेष =	२
११ मास + १४ दिन =	३३९
∴ अहर्गण =	१६७९९०

अतः हमारा अहर्गण शुद्ध एवं सही है। इसी संख्या के तुल्य है।

उदाहरण ८—

केतकी गणित द्वारा अहर्गण साधन

आचार्य ने शक १८१५ चैत्र शुक्ल पूर्णमासी शनिवार का अहर्गण इस प्रकार ज्ञात किया है।

१८१५ – १८०० = १५ वर्ष गण

$\frac{१५}{१९}$ = ० गत चक्र

१५ × १२ +० = १८० सौर मास

$\frac{१८०+१०+०}{३३} = \frac{१९०}{३३}$ = ५ अधिमास

१८०+५ = १८५ चांद्रमास

१८५×३०+१४ – १५÷६० = ५५५०+१४ = ५५६४ तिथि गण

५५६४ ÷ ६४ = ८६ क्षय तिथि

अहर्गण = ५५६४–८६ = ५४७८

वार ज्ञान = (चक्र ० × ३ + ५४७८) ÷ ७ = ४ शेष से रविवार आता है अतः वार मिलाने के लिए एक कम करने पर स्प. अहर्गण = ५४७७ प्राप्त हुआ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन

१८१५–१८०० = १५ वर्षगण ; १५÷१९ = चक्र ० ; चक्र शेष = १५

अहर्गण = $१५\times३६५ + \frac{१५}{४} - \frac{२\times०}{१५} + \frac{०}{२२५} + ० \times ६९४० + B$

= ५४७५ + ३ + B

= ५४७८ + १४ (∵ B = ० +१४)

अहर्गण = ५४९२ – १ = ५४९१

वार = ५४९१ ÷ ७ = शेष ३ ; शनिवार आता है।

दोनों अहर्गण में ५४९१–५४७८ = २१ दिवस का अंतर आता है।

शुद्धता की परीक्षा

३६५.२५६३७५ × १५ = ५४७८ $\left[\begin{array}{r} ३६५ \times १५ = ५४७५ \\ \frac{१५}{४} = ३ \\ \text{शेष} = १४ \\ \text{अहर्गण} = ५४९२ \end{array}\right]$

+ B = + १४

अहर्गण = ५४९२

अतः हमारा अहर्गण मान शुद्ध है।

इस आधार पर केतकीग्रह गणित ग्रंथ की शुद्धता पर शंका पैदा होती है।

उदाहरण ९—

शक १८६५ चैत्र शुक्ल १० सोमवार का अहर्गण साधन करना है। पहले केतकी विधि द्वारा—

१८६५ – १८०० = ६५ वर्ष गण

$\frac{६५}{१९}$ = ३ गत चक्र ; चक्र शेष = ८

८ × १२ +० = ९६ सौर मास

$\frac{९६+१०+(३÷५)}{३३}$ = ३ अधिमास

$(९६+३) \times ३० + ९ - \frac{६५}{६०}$ = २९७८ तिथिगण

$\frac{२९७८}{६४}$ = ४६ क्षय तिथि ; अहर्गण = २९३२–३ = २९२९

स्पष्ट अहर्गण = २९७८ – ४६ = २९३२+२०८२० = २३७५२–३ = २३७४९

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वार = $\frac{३\times३+२९२९}{७}$ = ५ शेष ; बुधवार से आगे गिनने पर सोमवार

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन

१८६५–१८०० = ६५ वर्षगण

६५÷१९ = ३ गत चक्र ; चक्र शेष = ८

अहर्गण = ८×३६५ + $\frac{८}{४}$ − $\frac{२\times३}{१५}$ + $\frac{३}{२२५}$+३ × ६९४० + B

= २९२० + २ + २०८२० + B (B = ९)

= २३७४२ + ९

अहर्गण = २३७५१ − २ = २३७४९

वार = २३७४९ ÷ ७ = शेष ५ ; सोमवार

उदाहरण १०—

शक १८७५ चैत्र शुक्ल १० शनिवार का केतकी द्वारा अहर्गण साधन।

१८७५ − १८०० = ७५ वर्ष गण

७५ ÷ १९ = ३ चक्र ; चक्र शेष = १८

१८ × १२ +० = २१६ सौर मास

$\frac{२१६+१०+३\div५}{३३}$ = ६ अधिमास

२१६+६ = २२२ चांद्रमास

२२२ × ३०+९ − ७५÷६० = ६६६८ तिथिगण

६६६८ ÷ ६४ = १०४ क्षय तिथि

अहर्गण = ६६६८ − १०४ = ६५६४

वार = ३×३ + ६५६४ = ६५७३ ÷ ७ = ०

वार शुद्ध करने के लिए ३ जोड़ा। जिससे शनिवार आता है।

अतः अहर्गण = ६५६४+३ = ६५६७

अतः स्पष्ट अहर्गण = ६५६७+३×६९४० = २७३८७

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन

अहर्गण १८ × ३६५ + $\frac{१८}{४}$ − $\frac{२\times३}{१५}$ + $\frac{३}{२२५}$+३ × ६९४० + B

= ६५७० + ४ + २०८२० + B

= २३७९४ + ९ (B = ९)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अहर्गण = २७४०३ − २ = २७४०१

वार = २७४०१ ÷ ७ = शेष ३ ; अतः शनिवार

दोनों अहर्गण में २७४०१ − २७३८७ = १४ दिन का अंतर है।

शुद्धता की परीक्षा

३६५.२५६३७५ × ७५ = २७३९४

+ B = ९

स्पष्ट अहर्गण = २७४०३

अतः हमारा अहर्गण शुद्ध है। वार मिलाने के लिए हमने २ घटाया है।

उदाहरण ११—

केतकी ग्रहलाधवा तथा मेरे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

केतकी ग्रहगणित की टीका में अंत में शक १८०० से पूर्व का अहर्गण साधन किया है। शक १४४२ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का अहर्गण शक १८०० से ज्ञात किया है जिसका मान ५८४२ + १८ × ६९४० = १३०७६२ ज्ञात किया है।

ग्रह लाघव से अहर्गण

१८०० − १४४२ = ३५८ गताब्द

३५८ ÷ ११ = ३२ चक्र ; तथा शेष का २२५० अहर्गण होता है।

अतः अहर्गण = ४०१६ × ३२ + २२५० = १३०७६२ दिवस अहर्गण

हमारे सूत्र से अहर्गण साधन

१८०० − १४४२ = ३५८ वर्षगण

३५८ ÷ १९ = १८ चक्र ; चक्र शेष = १६

$$\text{अहर्गण} = १६ \times ३६५ + \frac{१६}{४} - \frac{२\times १८}{१५} + १८ \times ६९४० + B$$

= ५८४० + ४ − २ + १२४९२०

अहर्गण = १३०७६२

अतः केतकी, ग्रहलाघव तथा हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण एक समान आता है।

उदाहरण १२—

आर्यभट के अनुसार कलि आरंभ से अहर्गण। श्री केदारदत्त जोशी ने ग्र.ला. टीका में पृ. ४८ पर अहर्गण साधन किया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शकादि से गत वर्ष = ३१७९
शक = १४४२
कलिगत वर्ष = ४६२१
सौर मास = ४६२१ × १२ = ५५४५२
अधिमास = १७०४
चान्द्रमास = ५७१५६
चान्द्र हा. ५७१५६×३० = १७१४६८०
क्षयाहर = २६८३०
अहर्गण = १६८७८५०+१ = १६८७८५१

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

३१७९+१४४२ = ४६२१ गताब्द÷१९ = २४३ चक्र ; चक्रशेष = ४

$$\text{अहर्गण} = ४\times३६५+\frac{४}{४} = \frac{२\times२४३}{१५} + \frac{२४३}{२२५} + २४३ \times ६९४०$$

= १४६०+१ − ३२ + १ + १६८६४२०

अहर्गण = १६८७८५० + १ = १६८७८५१

दोनों अहर्गण तुल्य हैं।

विभिन्न आचार्यों ने वर्ष मान भिन्न-भिन्न लेकर महायुग की सावन दिन संख्या (अहर्गण) बताई है।

(१) वराह वर्षमान	३६५.२५८७५	से एक महायुग में	१,५७७,९१७,८००	सावनदिन
(२) आर्यभट वर्षमान	३६५.२५८६८०६	,,	१,५७७,९१७,५००	,,
(३) ब्र.सिद्धा./सि.शिरो.वर्षमान	३६५.२५८४३७५	,,	१,५७७,९१६,४५०	,,
(४) आधुनिक सूर्य सिद्धा.वर्षमान	३६५.२५८७५६५	,,	१,५७७,९१७,८२८	,,
(५) महासिद्धान्त(आर्य.) वर्षमान	३६५.२५८६९०३	,,	१,५७७,९१७,५४२	,,
(६) आधुनिक वर्षमान	३६५.२५८६९०३	,,	१,५७७,९१७,५४२	,,

हम यहाँ देखते हैं कि विभिन्न आचार्यों द्वारा वर्षमान जो लिया गया है उसको महायुग के वर्ष ४३२०००० से गुणा कर देने से उनके द्वारा बताये गये एक महायुग के अहर्गण (सावन दिन) का मान प्राप्त हो जाता है।

अतः मैंने भी अहर्गण की शुद्धता को परखने के लिए आधुनिक वर्षमान (वेध शुद्ध) को अभीष्ट गताब्द (या अहर्गण) से गुणा करके प्राप्त सावन दिन संख्या को शुद्ध अहर्गण मान कहा है तथा इसी को शुद्धि परखने के लिए उपयोग में लिया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मेरे द्वारा प्रतिपादित अहर्गण सूत्र की अन्य सूत्रों से विशेषतायें

(१) मेरे सूत्र से दिनों की (अहर्गण) संख्या शुद्ध आती हैं, क्योंकि इसका आधार वर्षमान × गताब्द है जो सभी आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में कल्प (कुदिन), महायुग अथवा इष्ट वर्ष से आरंभ के लिए कही हैं।

(२) अहर्गण का सही मान जाँच (Check) करने का सूत्र भी दिया गया है जिसका आधार वटेश्वर सिद्धान्त तथा सभी आचार्यों की गणनायें हैं। इस जाँच सूत्र के कारण अहर्गण की गणना में अनर्गल त्रुटि नहीं रह सकती।

(३) अधिमास की गणना का चक्रव्युह नहीं है। केवल क्षय दिवस की गणना यदि करनी पड़े तो उसमें त्रुटि अधिक नहीं होकर नगण्य होगी।

(४) अधिमास तथा क्षय दिवस, दोनों की गणना की उपेक्षा की जा सकती है। मात्र ईसवी सन्, अंग्रेजी मास तथा तारीख द्वारा अहर्गण की गणना कर सकते हैं जिससे कोई त्रुटि की संभावना नहीं होती।

(५) अहर्गण गणना के लिए तीन विकल्प हैं:—

(अ) शक संवत् तथा भारतीय मास तथा तिथि की गणना द्वारा।

(ब) शक संवत् तथा मेष संक्रान्ति से दिन गणना द्वारा।

(स) ईसवी सन् तथा अंग्रेजी मास व तारीख की गणना द्वारा।

(६) जिन ईसवी वर्षों को ४०० का पूरा-पूरा भाग न जाने के कारण लीप वर्ष नहीं माना जाता उनका संस्कार भी करने से अहर्गण गणना अधिक शुद्ध होती है।

(७) किसी भी वर्ष से किसी भी वर्ष तक की अहर्गण गणना कर सकते हैं। गताब्द संख्या अधिक बड़ी होने पर भी अशुद्धि नहीं हो सकती।

(८) वटेश्वराचार्य ने अपने सिद्धान्त में मध्यमाधिकार नवम प्रश्नविधि अध्याय में कहा है कि जो व्यक्ति विशेष अधिमास तथा तिथिक्षय के बिना रवि दिवसों से द्युराशि (अहर्गण) साधित करता है वह "तन्त्रज्ञ" है। यथा—

"आनयति यो द्युराशिं विनाधिमासैस्तथा तिथि प्रलयैः।
रवि दिवसेभ्योऽस्माद् द्युचराद्यं सो हि तन्त्रज्ञः ॥२॥"

अतः मैंने आचार्य के उक्त वचनों के अनुरूप अहर्गण साधन का सूत्र प्रतिपादित करके तन्त्रज्ञ कहलाने के योग्य तथा अधिकारी हूँ।

इसी प्रकार वटेश्वराचार्य ने कहा है—

"अधिमासैः शशिमासैरवमैः कुदिनैर्विनाऽत्र य आनयति।
द्युगणं रविदिवसेभ्यो वेत्ति प्रकटं स मध्यगणितम्॥३॥"

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अन्य सूत्रों की त्रुटियाँ तथा कमियाँ

(१) अधिमास तथा क्षय दिवस (तथा मास) की गणनायें समानुपाति नहीं होती हैं। वास्तविक अधिमास, क्षय तिथि (तथा मास) गणना काल से आगे पीछे भी हो जाती है।

(२) गणेशदैवज्ञ तथा केतकरजी जैसे सूत्रों में अधिमास ज्ञात करने के लिए ३३ का भाग तथा क्षय दिवस ज्ञात करने के लिए ६४ का भाग देना स्वल्पांतर से होने से भागफल से प्राप्त गणनायें अशुद्ध हो जाती है।

(३) पूर्वाचार्यों का वर्षमान $८\frac{१}{२}$ पल (लगभग) अधिक होने से लगभग ४५० वर्ष में एक दिन की गणना अधिक होती है।

(४) अभीष्ट वर्ष से आगे के वर्षों के अहर्गण ज्ञात करने के सूत्रों द्वारा उससे पीछे के वर्षों के अहर्गण की गणना के लिए सूत्र को बदलना पड़ता है, जैसे केतकर महोदय ने किया है।

(५) गताब्द की संख्या अधिक होने से अहर्गण गणना के मान में त्रुटि आ जाती है।

—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुबन्ध II

अंत्या	*dhrti×radius/day-radius.*
अंश	(1) Part, Fraction (2) Degree(°)
अंशक	Degree
अंशुमत्	Sun
अक्ष	Five
	Latitude. [The term Aksa is an abbreviation of the complete term Aksonnati, meaning "the inclination of the (earth's) axis (to the plane of the celestial horizon)", i.e., the latitude of the place, Aksa = axis, unnati = inclination.]
अक्षकर्ण	The hypotenuse of the equinoetial midday shadow (of the gonomon).
अक्षकोटि	Colatitude. Also, sometimes, the Rsine of colatitude
अक्षक्षेत्र	Latitude-triangle.
अक्षगुण	The Rsine of latitude.
अक्षचाप	The arc of latitude, or simply latitude.
अक्षचापगुण	The Rsine of latitude.
अक्षजीवा	The Rsine of latitude
अक्षज्या	The Rsine of local latitude
अक्षदृक्कर्म	Arc of the ecliptic lying between planet's hour circle and circle of position.
	Visibility correction due to local latitude.
अक्षभाग	The Degrees of latitude.
अक्षवलन	See Valana.
	Angle subtended at the eclipsed body by the arc joining the north celestial pole and the north cardinal point.
	Deflection of equator from prime vertical on horizon

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

of eclipsed body.

Angle subtended at a heavenly body on the ecliptic by the arc joining the north pole of the cel. equator and the north point of the cel. horizon.

अक्षश्रुति Hypotenuse of the equinoctial midday shadow. Same as *Palakarna.*

अक्षस्य वलनम् Aksavalana. See Valana.

अक्षाभा Equinoctial midday shadow (of the gnomon).

अक्षांश The latitude of a place, terrestrial latitude, or simply latitude.

Local latitude in degrees

अक्षांशक Same as Aksamsa.

अक्षोन्नति Inclination of the (Earth's) axis, i.e., the latitude of the place.

अगत Untraversed portion; portion to be traversed.

अग्नि Three.

अग्र (1) End, (2) Residue, remainder (3) Agra.

अग्रगुण The Rsine of Agra.

अग्रज्या Rsine of the amplitude.

अग्रा The arc of the celestial horizon lying between the east point and the point where the heavenly body concerned rises; or the Rsine thereof, which is equal to the distance between the east-west line and the risingsetting line of the heavenly body concerned.

Amplitude, or Rsine of amplitude, of a heavenly body at its rising. Also used for *agra* or upright.

अग्राफल Same as *Kotiphala.*

अंग Six

अंगारक Mars

अङ्गुल Finger-breadth. A unit of linear measurement defined by the breadth of eight barley corns.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अचल	(1) Seven (2) Fixed. To make acala in astronomy means to apply the method of successive approximations.
अज	The sign Aries.
अतिवक्र	A planet is said to be ativakra when it is in the middle of its retrograde motion.
अनृजुकर्ण	*Sighrakarna* for the beginning of retrograde motion.
अदयार्क्	The Sun's position at the time of star's heliacal rising.
अद्रि	Seven
अधिकमास	Intercalary month. The Intercalary moths denote the excess of the lunar (synodic) months over the solar months in a certain period. Thus intercalary months in a yuga=lunar months in a yuga solar months in a yuga. A true intercalary month is one in which the Sun does not pass from one sign into the next.
अधिकाब्द	Intercalary year, i.e., a collection of twelve intercalary months. See Adhikamasa.
अधिकाह	Intercalary day, i.e., intercalary tithi.
अधिदिन	Intercalary day.
अधिमास	Intercalary month. See Adhikamasa.
अधिमासक	Same as Adhimasa.
अधिमासशेष	The residue of the intercalary months.
अधिवर्ष	12 intercalary months.
अध्व	The distance of a place from the prime meridian.
अध्वा	Same as Adhva.
अध्वान	Same as Adhva.
अनृजु	Retrograde
अनुवक्र केंद्र	*Sighrakendra* for the beginning of *anuvakra* motion.
अनुदिश्	Parallel.
अनुपात	Proporation.
अनुराधा	Delta Scorpionis.
अनुलोम	Direct. A planet is said to be anuloma when its motion is direct, i.e., from west to east.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुवक्र Reretrograde.

अन्तराल Interval.

अन्त्यगुण See Antyajiva.

अन्त्यजीवा The current Rsine-difference, i.e., the Rsine-difference corresponding to the elementary arc occoupied by a planet. In Hindu trigonometry a quadrant of a circle is divided into 24 equal parts, called elementary arcs.

अन्त्यज्या Same as Antyajiva.

अन्त्यफल Maximum correction due to mandocca or maximum correction due to sighrocca. The former is equal to the radius of the manda epicycle and the latter is equal to the radius of the sighra epicycle.

अन्त्यफलज्या R sine of maximum correction.

अन्त्यमौर्वी Same as Antya-jya.

अन्त्या dhrtixradius / day-radius

अपक्रम Declination.

अपक्रमगुण The Rsine of declination.

अपक्रमज्या The Rsine of declination

अपक्रमधनु The arec of declination, or simply declination.

अपक्रममंडल Eliptic.

अपक्रमवृत्त The ecliptic.

अपक्रान्ति Declination.

अपक्रान्तिचाप The arc of declination.

अपक्रान्तिभाग Declination.

अपगम Declination.

अपचय Decrease.

अपम Declination.

अपमण्डल Ecliptic.

अपमधनु The arc of declination, i.e., declination.

अपमवलय Same as *Apakramavrtta.*

अपमो गुणः The Rsine of declination.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपर (1) West. (2) Aparhna or afternoon.

अपरा West.

अपराह्न Afternoon.

अपवर्त The greatest common divisor; abrader.

अब्दप The lord of the year, i.e., the planet which is the regent of the first day of the year.

अभुक्तांश Untraversed portion.

अमरपतिदिक् East.

अमावस्या Day of conjunction of Sun and Moon.

अमृततेजस् The Moon.

अम्बरोरुपरिधि The word ambara means, according to Hindu astronomers, "that part of the sky which is illuminated by the rays of the Sun." The word ambaroruparidhi like wise means "the periphery of the illuminated sphere of the sky".

अयन The northward or southward course of a planet, particularly the Sun. The ayana of a planet is north or south according as the planet lies in the half-orbit beginning with the tropical sign Capricorn or in that beginning with the tropical sign Cancer.

Period from one solstice to the next.

अयन चलन Precession of the equinoxes.

अयन दृक्कर्म Arc of the ecliptic lying between planet's hour circle and circle of celestial longitude.

Visibility correction due to ecliptic deviation

अयन वलन Deflection of ecliptic from the equator on horizon of eclipsed body.

Angle subtended at the eclipsed body by the arc joining the north poles of the equator and the ecliptic.

अयनचलन Precession of the equinoxes.

अयनसंधि Points of the ecliptic lying ninety degrees distant from the *golasandhi* points.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अयनांत Solstice.

अयनांश Amount of precession of equinoxes (in degrees)

अयुक्पद Odd quadrant.

अयुत Ten thousand.

अर्क (1) The Sun. (2) Twelve.

अर्कज Saturn.

अर्कपुत्र Saturn.

अर्कवर्ष Solar year.

अर्कसम्भवमास Solar month.

अर्कसुत Saturn.

अर्काग्रा The Sun's Agra, See Agra.

अर्कोदय Sunrise.

अर्धकर्ण Semi-diameter (i.e. radius.)

अर्धचतुर्थ Three and a half (3½). Literally, four minus half.

अर्धज्या Half-chord or Rsine.

अर्धपञ्चक four and a half (4½). Literally, five minus half.

अर्धपञ्चम Four and a half (4½). Literally, five minus half.

अर्धभोगी A *naksatra* whose lengun is equal to one and half of the Moon's mean daily motion.

अर्धयाम्योत्तर वृत्त Celestial meridian.

अर्धरात्र Midnight.

अर्धरात्रिक Calculations from the midnight.

अर्धविस्तर Semidiameter, radius, or 3438'.

अर्धास्तमित Halfset.

अवनति (1) Meridian zenith distance. (2) Celestial latitude (3) Parallax in celestial latitude.
Moon's true latitude as corrected for parallax.

अवनतिलव The degrees of meridian zenith destance.

अवनतिलवजीवा The Rsine of avanatilava.

अवनतिलिप्तिका Avanati in minutes of arc.

अवनाम Zenith-distance.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अवम Omitted lunar days or omitted tithis.

अवमदिन An omitted lunar day.

अवमरात्र Omitted lunar days, or omitted tithis.

अवमरात्रशेष The residue of the omitted lunar days.

अवमशेष The residue of the omitted lunar days.

अवलंबज्या Same as *Lambajya.*

अवलम्बक (1) Plumn (2) The Rsine of colatitude.

अवलम्बकगुण The Rsine of colatitude

अवशेष Remainder

अविशिष्ट Obtained by applying the method of successive approximat'ons.

अविशेषकर्ण The distance (lit. hypotenuse) obtained by the method of successive approximations.

अविशेषकर्म The method of successive approximations.

अविशेषकलाकर्ण The distance (lit. hypotenuse) of a planet, in minutes, obtained by the method of successive approximations.

अविशेषण To perform Avisesakarma.

अविशेषतिथि The tithi (i.e., the time of apparent conjunction of the sun amd Moon) obtained by the method of successive approximations.

अविशेषनाडी The nadis obtained by the method of successive approximations.

अविशेषविधि See Avisesakarma.

अविश्लिष्ट Same as Avisista.

अविषम Even

अव्यार्धभोगि

अश्रज The red-coloured planet Mars.

अश्वि Two.

अश्विन् Two.

अष्टि Sixteen

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

असकृत् Repeatedly or by using the method of successive appmy other epoch).

अहर्मान The length of day.

अहोरात्र A day and night, a nychthemeron.

अहोरात्र वृत्त Diurnal circle.

अहोरात्रज्या Same as *Dyujya*.

अहोरात्रदल Same as Ahoratrardha-viskambha.

अहोरात्रवृत्त Diurnal circle.

अहोरात्रार्ध Same as Ahoratrardha-viskambha.

अहोरात्रार्धविष्कम्भ Semi-diameter of the diurnal circle (of a heavenly body, particularly the Sun), i.e., the day radius.

अहोरात्रासु The number of asus in a day and night, i.e., 21600

अह्नां गणः Same as Ahargana

अह्नां निचयः Same as Aharagana.

आकाश Zero

आदित्य The Sun.

आद्यार्ध One and a half.

आप्य Purvasadha, the twentieth naksatra.
The naksatra Purvasadha, which is presided over by Apa.

आभा Same as *Bha*.Shadow of the gnoman.

आभामंडल The shadow-circle. See *Bhavrtta*.

आयाम Length.

आर Mars

आर्कि Saturn.

आशा (1) Direction (2) Ten

आसन्न Approximate; *asphuta*

आस्तमिक Pertaining to sunset.

आस्फुजित् Venus

आह्निक (1) Pertaining to day (2) A special astronimical term used by Bhaskara I. See MBh, i. 16&18.

इन (1) Sun (2) Twelve

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इन्दु (1) The Moon. (2) One.

इन्दूच्च The Moon's apogee, *i.e.*, the remotest point of the Moon's orbit.

इन्द्वग्र Moon's *agra.* See *Agra.*

इन्द्वहः Lunar day or tithi.

इलमोर्वि Same as *Kujya.*

इषु Rversine i.e., R-R cosine of an angle where R is the radius of the deferant circle (R = 3438' according to *Aryabhatiyam)* Celetial latitude.

इष्ट (1) Given, desired, or chosed at pleasure. (2) *Ista-graha, i.e.,* desired or given planet.

इष्ट-काल Desired time or given time.

इष्ट-ग्रह Desired or given planet.

इष्टकला Same as *Lagnakala.*

इष्टज्या Antya at a given time.

इष्टासु Given *asus.*

उच्च *Ucca* (apex) is of two kinds : (1) *Mandocca* (apex of slowest motion), and (2) *Sighrocca* (Apex of fastest motion). The *mandocca* is that point of a planet's orbit which is at the remotest distance and where the motion of the planet is slowest. In the case of the Sun or Moon, it is the apogee; and in the case of the other planets it is the apogee or aphelion, the geocentric longitude of the apogee being equal to the heliocentric longitude of the aphelion. The *sighrocca* of a superior planet (Mars, Jupiter, or Saturn) is defined as the mean Sun; that of an inferior planet (Mercury or Venus) is an imaginary body which is supposed to more in such a way that its direction from the Earth is always approximately the same as that of the actual planet from the Sun.

उच्चभुक्ति (Daily) motion of the ucca; apsidal motion.

उच्चवृत्त The ecentric circle.

उज्ज्या Same as *Unnatajya,* Rsine of altitude.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उडुवृत्त Same as *Bhavrtta.*

उत्क्रम (1) Reverse order. (2) *Utkramajva.* See *Utkramajya.*

उत्क्रमगुण Same as Utkramajya.

उत्क्रमजीवा Same as *Utkramajya.*

उत्क्रमज्या Rversedsine. Rversin $\theta \equiv$ Radius $\times (1-\cos\theta)$.

उत्क्रमभवा जीवा Same as *Utkramajya.*

उत्क्रमज्याफल Result (or correction) derived with the help of the utkramajya of a certain arc.

उत्तर North.

उत्तरगोल Northern hemisphere, i.e. the hemisphere lying to the north of the equator.

उत्तरायन Northern course of the sun along the ecliptic.

उदक् North.

उदगोल Northern hemisphere.

उदय (1) The rising of a planet on the estern horizon. (2) Heliacal rising of a planet. (3) *Udaya-lagna, i.e.,* the rising point of the ecliptic. (4) Addition, as in *Ksayodayau* (subtraction and addition).

उदयकेंद्र *Sighrakendra* for heliacal rising of a planet.

उदयज्या The agra of the rising point of a planet's orbit.

उदयज्या Rsine of amplitude for rthe rising point of the ecliptic, called the orient sine.

उदयप्राण Times of rising of the signs measured in asus.

उदयप्राण Duration of the rising of the signs (*rasis*) in *prana* (or asu) unit of time; *udayasu.*

उदयभोग Planet's motion from its one rising to the next.

उदयराशिप्राणपिंड The time in asus of rising of the rising sign.

उदयलग्न The rising point of the ecliptic, i.e., the horizon-ecliptic point in the east.

The rising point of the ecliptic; the *udayalagna* of a heavenly body is the point of the ecliptic which rises when the heavenly body rises.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उदयांतर संस्कार	The correction to the cel. longitude on account of the equation of time due to obliquity of the ecliptic; complementary to the *bhujantara.*
उदयार्क	The sun's position at the time of star's heliacal rising.
उदयासु	Times of rising (of the signs) in asus.
उदयास्त सूत्र	The rising-setting line. Line of intersection of diural circle and horizon.
उदयास्तमय	Rising and setting.
उदवृत्त	Same as *Unmandala.*
उदवृत्त	Equinoctial colure; east and west hour circle; 6'O clock circle.
उदिचि	North.
उन्नत	Used for *Unnatakala;* also for the arc of *unnatajya* (or altitude).
उन्नतकाल	Distance from horizon in time.
उन्नतकाल	Time elapsed since sunrise in the forenoon or to elapse before sunset in the afternoon.
उन्नतज्या	Rsine of altitude. Also used for Rsin *(unnatakala ±cara),*
उन्नतांश	Complement of zenith distance.
उन्नतांश ज्या	R sine of bove.
उन्नति	Elevation Altitude.
उन्मंडल	Six o'clock circle.
उन्मीलन	Emersion; the end of total eclipse.
उपप्लुति	Eclipse, *grahana, uparaga*
उपप्लुति	Eclipse.
उपराग	Eclipse
उर्विजिवा	Same as *Kujya.*
उष्णतेजस्	Sun
उष्णदीधिति	The Sun.
एकदिक्क	Same direction.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऐकायनगत	Bodies having the same declination.
ऐन्द्राग्न	The name of the sixteenth naksatra Visakha.
ऐन्द्री	The east, eastern direction (presided over by Indra).
ओज	Odd; usually w.r.t. 1st and 3rd quadrants.
कक्षा	Orbit (or path) of a heavenly body.
कक्षावृत्त	Mean orbit of planet.
कक्ष्या	Orbit of a planet.Orbit; the deferent; the concentric.
कक्ष्यामंडल	Same as *Kaksya.*
कदम्ब	Pole of ecliptic.
कदम्बप्रोत	Secondary to the ecliptic.
कन्यका	The sign Virgo.
कपाल	Hemisphere.
कर	Cubit.
करण	The name of one of the five principal elements of the Hindu Calendar. Time during which Moon gains 6° over the Sun. Half of a lunar day *(tithi)*
कर्कट	(1) A pair of compasses (2) The sign Cancer.
कर्ण	(1) The hypotenuse of a right-angled triangle. (2) The distance of a heavenly body from earth.
कर्णभुक्ति	True daily motion of a planet derived with the help of the planet's distance.
कर्णसूत्र	The hypotenuse-line.
कला	Minute of arc.
कला	A unit of measurement of angle; 1/60the of one degree i.e. 1 minute of arc; *lipta, liptika.*
कलाकर्ण	The true distance of a planet in minutes of arc.
कलानां शेषः	The residue of the minutes (kalasesa)
कलालिप्ता	Kalamsa reduced to liptas.
कलिका	Same as Kala.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कलियुग According to Bhaskara I. Kaliyuga is a period of 1080000 solar years. The current Kaliyuga began on Friday, February 18, B.C. 3102, at sunrise at Lanka.
Last of the *yugas* of a *mahayuga;* duration: 4,32,000 years.

कल्प Addition

कल्प A period of 14 manus. See Manu.

कार्मुक Arc.

काल Time

कालभाग Degrees of time. A degree of time is equivalent to 60 asus or 10 vinadis.

कालांश Degrees indicating time.
Time-degrees; degrees measured on the equator

कालात्मक वलक Oblique ascension of the lagna.

कालात्मक सहस्रांशु Oblique ascension of the Sun.

काश्यप Earth; one.

काष्ठ (1) Arc. (2) Direction.

काष्ठा Direction.
A unit of time; arc; direction.

कीलक Gnomon.

कीलकाग्रगुण Same as Sankvagra.

कु Earth

कुगुण Same as *Kujya.*

कुज The horizon; Mars.

कुजाशा South

कुज्या The earth-sine; the *jya* of the arc of the diurnal circle lying between the horizon and the six o'clock circle.

कुटिल Retrograde.
Planet's sighrakarma when it takes up retrograde or reretrograde motion.

कुटिलकर्ण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कुट्ट	Pulveriser. See Kuttakara.
कुट्टन	The process of solving a pulveriser (Kuttakara)
कुट्टाकार	Pulveriser. Equlations of the type N=ax+r=by+s (1) or ax–c=by (2) are called in Hindu mathematics by the name kuttakara. A kuttakara (pulveriser) is caled sagra (residual) or niragra (nonresidual) according as it is of the type (1) or (2).
कुमध्य(रेखा)	The Prime meridian. Also called Lekha or Rekha.
कुदिन	Civil day
कुम्भ	The sign Aquarius.
कुलीर	The sign Cancer.
कुवासर	Terrestrial civil day, or simply civil day.
कृत	Four
कृतयुग	First of the four yugas constituting a *mahayuga;*
कृति	Square.
कृत्तिका	The name of the third naksatra.
कृष्णपक्ष	Dark half of a lunar month
केंद्र	(1) Anomaly. The kendra is of two kinds: manda-kendra and sighrakendra. The manda-kendra of a planet is equal to "the longitude of the planet minus the longitude of the planet's mandocca (apogee)," and the sighra-kendra of a planet is equal to the "longitude of the planet's sighrocca minus the longitude of the planet." (2) Centre.
केंद्रवृत्त	Ecentric circle of planet.
केतु	Descending node of the moon; 180° - *Rahu*
केन्द्र	A nomaly of a heavenly body, angular distance from its *mandocca* (apogee) or *sighrocca* (apex point of conjunction).
केन्द्रज्या	The Rsine of kendra.
केन्द्रभुक्ति	The daily motion (or change) of a planet's anomaly *(kendra);* or anomalistic motion.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कोटि — See Bahu.

(1) the upright of a right-angled triangle. (2) the *Koti* corresponding to a planet's anomaly. If θ be the anomaly (or any arc or angle) then the corresponding *Koti* is equal to $90^{\circ}-\theta$, $\theta-90^{\circ}$, $270-\theta$, or $\theta-270^{\circ}$, according as $\theta < 90^{\circ}$, $90^{\circ} < \theta\ 180^{\circ}$, $180^{\circ} < \theta < 270^{\circ}$, or $270^{\circ}, < \theta < 360^{\circ}$.

Upright; complement of the *bhuja*.

कोटिका — Same as Koti.

कोटिज्या — R cosine.

कोटिफल — The result obtained by multiplying the Rsine of koti due to a planet's kendra by the epicycle and dividing the resultting product by 360.

The result obtained by multiplying the Rsine of *Koti* due to a planet's *kendra* by the tabulated epicycle and dividing the product by 80.

कोटिसाधन — Same as Kotiphala.

कोटिसूत्र — The thread or line denoting the upright of a right-angled triangle; a perpendicular line.

कोण — Angle.

कोण (दिक्) — Corner direction; the north-east, north-west, south-east or south-west direction.

कोणभा — Corner shadow; shadow for a corner direction.

कोण शंकु — R sine altitude from intermediary vertical circle.

कोणमण्डल — Intermediary vertical circle.

कोणवृत्त — Same as Konamandala.

कोणशंकुतल — Base of konasanku.

क्रम — (1) Serial order. (2) Odd quadrant.

क्रमगुण — Same as Kramajya.

क्रमज्या — Rsine (=Radius×sine). Same a jya.

क्रमध्य (रेखा)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रमभवा जीवा Same as *Kramajya.*

क्रांतिज्या R sine declination

क्रांतिपात Equinoxes, points of intersection of the ecliptic and the cel. equator; *visuva, visuvat*

क्रांतिमण्डल Ecliptic.

क्रान्ति Declination.

क्रिय The sign Aries.

क्षण A unit of time' 2 *ghatis* (according to *Surya siddhanta).*

क्षपाभर्तृ Moon.

क्षमादिन Civil day.

क्षय Subtraction.

क्षितिगुण Same as Ksitijya.

क्षितिज Mars.

क्षितिजगुण Same as Ksitiguna.

क्षितिजा A corrupt form of Ksitijya.

क्षितिजीवा Same as Ksitijya.

क्षितिज्या Earthsine. The distance between the rising-setting line and the line joining the points of intersection of the diurnal circle and the six o'clock circle.

क्षितिज्या Same as *Kujya.*

क्षितिज Horizon.

क्षितिधर Seven

क्षितिपुत्र Mars

क्षितिमौर्वी Same as Ksitijya.

क्षितिसुत Mars.

क्षिप्ति Celestial latitude.
Same as *Viksepa.*

क्षिप्तिलिप्तिकाः The minutes of celestial latitude.

क्षेत्र The ecliptic.

क्षेत्रनिर्माण Celestial longitude.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षेप	Quantity to be added. Used for *Viksepa* (celestial latitude). Additive or subtractive correction
क्षोणीधर	Seven
खकक्ष्या	Orbit of the sky.
खण्ड	Half.
खमध्य	Meridian.
खमध्य	Zenith
खश्रवण	Hypotenuse of the meridian shadow.
खस्वस्तिक	Zenith.
खाक्षा	Meridian zenith distance.
खेचर	Planet
गगन	(1) Meridian (2) Zero
गगनस्य वृत्तं	The circumference of the sky. See Ambaroruparidhi.
गण	Used in the sense of Bhagana.
गणित	Calculation, computation.
गणितप्रक्रिया	Calculation, computation.
गत	Traversed, elapsed, past, preceding.
गति	Motion. Generally used in the sense of "daily motion."
गत्यन्तर	Motion-difference.
गन्तव्य	To be traversed, to come, succeeding.
गुण	(1) Multiple or multiplication (2) Rsine (3) Three
गुण	Same as *Jya*.
गुणक	Multiplier
गुणकार	Multiplier, coefficient.
गुणफल	Bahuphala and kotiphala.
गुणप्रतान	R Sine
गुरु	Jupiter. Also called Devaguru or Devapujita.
गृह	Sign
गेह	Sign.
गो	The sign Taurus.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गोल	Hemisphere; from first point of Aries to first point of Libra, or from first point of Libra to first point of Aries. Globe, sphere.
गोलखण्ड	The Semidiameter of the (celestial) sphere. (गोल = sphere, खण्ड = half)
गोलभेद	Same as Golakhanda. (भेद = खण्ड = half)
गोलसंधि	Tht points where the orbit of a planet crosses the equator.
ग्रह	(1) Planet. (2) Eclipse. (3) a moving heavenly body.
ग्रहगणित	Astronomy.
ग्रहचार	Motion of a planet.
ग्रहण	Eclipse.
ग्रहण	Eclipse; *uparaga, upapluti.*
ग्रहणमध्य	The middle of an eclipse.
ग्रहतनु	A special term used by Bhaskara I.
ग्रहदेह	Same as Grahatanu.
ग्रहमध्य	Middle of an eclipse.
ग्रहयुति	Conjunction of planets.
ग्रहयोग	Conjunction of planets.
ग्रहसद्वर्त्म	True motion of a planet.
ग्रहाणां तनुः	Grahatanu.
ग्रहोपराग	Eclipse.
ग्रास	(1) Eclipse. (2) Measure of an eclipse. (3) Begining of an eclipse.(4) The eclipsed portion.
ग्रासमध्य	The middle of an eclipse.
ग्रासमान	Magnitude of eclipse.
ग्रासशलाका	The needle (or line) of length equal to the portion of the diameter eclipsed.
ग्रासादि	The beginning of an eclipse.
ग्राहक	The eclipsing body, the eclipser.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग्राहक	*chadaka*
ग्राहकार्ध	Half the diameter of the eclipsing body.
ग्राह्य	The eclipsed body. *chadya*
ग्राह्यबिम्ब	The disc of the eclipsed body.
ग्राह्यमण्डल	The circle of the eclipsed body.
घटिका	Same as *Ghati.* Unit of time, 24 minutes.
घटिका	A unit of time; 1/60th part of a day (24 minutes); *nadi, nadika; ghati.*
घटी	A unit of time equivalent to 24 minutes.
घन	Cube
घात	Product, multiplication.
चंद्रकर्ण	Distance of Moon from earth
चंद्रभगण	Revolutions of Moon
चंद्रमस्	The Moon.
चक्र	Circle, twelve signs, or 360°.
चक्रलिप्ता	The number of minutes of arc in a circle, i.e., 21600.
चक्रांशक	The number of degrees in a circle, *i.e.,* 360°.
चक्रार्ध	Half of a circle, *i.e.,* 21600, 180°
चतुरस्र	Quadrilateral.
चन्द्र	(1) Moon (2) One.
चन्द्रक	Same as Candra.
चन्द्रकर्ण	The distance of the Moon.
चर	Ascensional difference. It is defined by the arc of the celestial equator lying between the six o'clock circle and the hour circle of a heavenly body at rising.
चरजीवार्ध	The Rsine of the ascensional difference.
चरज्या	R sine asc. difference
चरदल	Ascensional difference. See Cara.
चरप्राण	Same as *Carasu.*
चरफल	Correction due to ascensional difference.
चरार्ध	Ascensional difference.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चरासु	The asus of ascental difference.
चल	Sighrocca. Same as *Carardha.*
चलकेन्द्र	*Sighra-kendra.*
चलकेन्द्रफल	*SighraPhala*
चलोच्च	Sighrocca
चांद्र मास	Lunar month
चांद्रदिन	Lunar day.
चांद्रवर्ष	12 lunar months.
चाप	(1) The sign Sagittarius (2) Arc.
चापभाग	An element of arc, or elementary arc (*i.e.*, one of the twenty-four equal divisions of a quadrant, the Rsine-differences for which have been tabulated by Aryabhata I).
चापित	Converted into (or reduced to) the corresponding arc.
चार	Motion or dialy motion.
चित्रा	The name of the foruteenth naksatra.
चैत्र	The name of the first month of the year.
छन्न	Part eclipsed; measure of eclipse.
छाद्य	Eclipsed body; *Grahya*
चन्द्रकला	1/16th of the moon's disc.
छाया	(1) Shadow (2) The Rsine of the zenith distance.
छायाकर्ण	Hypotenuse of right-angled triangle, two sides of which are the gnomon and its shadow.
छायादैर्ध्य	Same as Bhucchayadairghya.
छायाभ्रमण	The path of the end of the shadow (of the gnomon).
छिद्र	Nine
छेद	Divisor or denominator
छेदक	Eclipser; *Grahaka*
छेद्यक	Projection, or graphical representation.
जलपदिक्	West
जलेशदिक्	West
जितुम	The sign Gemini.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जीव	Jupiter
जीवदिन	Thursday.
जीवा	(1) Rsine (=Radius×sine) (2) The Rsine differences corresponding to the twenty-four divisions of the quadrant. Same as *Jya.*
जीवाभुक्ति	True daily motion derived with the help of the table of Rsine differences.
जूक	The sign Libra.
ज्ञ	The planet Mercury.
ज्या	Same as Jiva. (1) Rsine (= Radius × sine). (2) The Rsine-differences corresponding to the twenty four equal divisions of a quadrant. Half-chord; Rsine. Also used for Jupiter.
ज्यासंकलित	Used in the sense of "the given Jya."
ज्यौ	Jupiter
तत्परा	Third of arc, i.e., one-sixtieth of a second of arc.
तद्धृति	Dhrti for a heavenly body on the prime vertical. Same as *Samadhrti.*
तंत्र	Indian astronomical texts which adopt the beginning of *Kaliyuga* as the epoch. Principle, doctrine, theory, rule, method. Also, a class of astronomical works.
तपोमूर्ति	The Moon's ascending node.
तम	(1) The shadow of the Earth, particualarly, the section of the shadow cone where the Moon crosses it, by a plane perpendicular to the axis of the shadow cone. (2) The Moon's ascending node.
तमस	Shadow; cross-section of the Earth's shadowcone at the Moon's distance; the eclipser of the Moon. Ascending node of the moon; *Rahu*
तमोमय	The moon's ascending node.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तमोव्यास	The diameter of the shadow. See *Tama.*
तारका	Star.
तारा	Star.
ताराग्रह	The starplanets. The planets Mars, Mercury, Jupiter, Venus, ans Saturn are called starplanets (taragraha) in Hindu astronomy.
तारासमागम	Same as *Yogabhaga.*
तिग्मतेजस्	The Sun.
तिग्मांशु	(1) The Sun. (2) Twelve.
तिग्मरश्मि	The Sun.
तिथि	(1) Lunar day (called tithi) (2) Time of conjunction or opposition of the Sun and Moon. (3) Time of beginning, middle, or end of eclipse (4) Fifteen (5) Thirty.
तिथिनाश	Omitted day.
तिथिप्रणाश	Omitted tithis.
तिथिवर्ग	15^2, or 225.
तिथिविलय	Omitted day.
तिथ्यन्त	Time of conjunction or opposition of the Sun and Moon. parvanta.
तिथ्यर्धहार	A divisor which is equal to half of that used in calculating the tithi, i.e., 360.
तिमिर	Same as *Tamas.*
तिर्यक्	(1) Oblique (2) Transverse.
तिष्य	Delta Cancri; *Pusya*
तुंग	Same as Ucca.
तुरीय	One-fourth.
तुला	The sign Libra.
तुलाधर	The sign Libra.
तुल्यत्व	Equality.
तुल्यदिक्त्व	Likeness or sameness of direction.
तुल्यदिक्	Like direction, or same direction.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्रिगृहगुण The Rsine of three signs, i.e., the radius or 3438'.

त्रिगृहोन लग्न Same as Vitribh Lagna.

त्रिज्या Radius or 3438. Literally, the Rsine of three signs. *Trijyaka* or *Tribhajya* Radius.

त्रिभवन Three signs.

त्रिभोन लग्न Nonagesimal point : point of the ecliptic at the shortest distance from the zenith; 90^{o} less than *Lagna.* Same as Vitribhlagna.

त्रिमौर्वी Same as *Trijya.*

त्रिराशि Three signs.

त्रिशर्करा-विधान The method of constructing a circle through three given points has been called *trisarkara-vidhana* by Bhaskara I.

त्रिशिंजिनि Same as Trijya

त्रेतायुग Second of the four parts of a *mahayuga;* duration 12,96,000 years.

त्रैराशिक The rule of three.

त्वाष्ट्र The *naksatra* Citra which is presided over by त्वष्ट्रा

दक्षिण (1) South. (2) Southern hemisphere (*daksina-gola*). *Yamya*

दक्षिणायन Southern course of the sun.

दक्षिणाशा The southern direction.

दर्शन-संस्कार usually called *Drkkarma* दृककर्म Visibility corrections. There are two visibility corrections : (1) *Aksa-drkkarma,* which is the measure of the arc of the ecliptic lying between the hour circle and the circle of position of the planet concerned, and (2) **Ayana-drkkarma,** which is measured by the arc of the ecliptic lying between the circle of celestial longitude and the hour circle of the planet concerned. These corrections having been applied to the true longitude of a planet, we obtain the longitude of that point of the ecliptic which rises on the local horizon simultaneously with the actual planet.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दल Half.

दर्श Conjunction of the sun and the moon.

दशगुण The ten Rsines, viz, Sun's udayajya, Sun's madhyajya, Sun's drkksepajya, Sun's drgjya, Sun's draggatijya, Moons udayajya, Moon's drkksepajya, Moon's dragjya, and Moon's draggatijya.

दशजीवा Same as Dasaguna

दस्र Two. (Dasra is a synonym of *Asvi)*.

दिक्क Direction.

दिक् (1) Direction (2) Ten.

दिगंश Co-azimuth.

दिग्गुण Rsine of *dik (digvalana)*.

दिग्वलन Same as *Aksavalana.*

दितिसूनुपूजित Venus

दिन (1) Day. (2) Fifteen.

दिनक्षय Omitted day.

दिनगण Same as *Ahargana.*

दिनगत Time of day passed

दिनगुण Same as Dyujya.

दिनदलअन्त्या *Antya* at midday.

दिनपूर्वापरार्ध Forenoon and afternoon.

दिनमान Measure (or length) of the day.

दिनराशि Ahargana.

दिनशेष Time till sunset.

दिनानां गणः Same as Ahargana.

दिनान्तोदयलग्न The rising point of the ecliptic at sunset.

दिनार्ध Midday.

दिवस (1) Day. (2) Ahargana.

दिवसगुणार्ध The day radius.

दिवसजीवा The day radius.

दिवसयोजन The number of yojanas that a planet traverses in a day.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दिवसविस्तरभेद The day radius

दिवागुण The day radius.

दिवागण Same as *Ahargana.*

दिविचर (1) Seven (2) Planet

दिशा Direction.

दिश् (1) Direction (2) Ten.

दृंनर Altitude, or Rsine of altitude.

दृंमण्डल Circle through planet and zenith

दृक्कर्म Visibility correction, Also used for the Rsine of zenith distance.

दृक्कर्मनर Altitude, or Rsine of altitude.

दृक्क्षेप The *drkksepa* is the zenith distance of that point of a planet's orbit which is at the shortest distance from the zenith. This term is sometimes also used for the Rsine of that zenith distance.

Zenith distance of the central ecliptic point, or its Rsine. Arc measured on vertical to ecliptic between zenith and nonagesimal point.

दृक्क्षेप मंडल Vertical Circle through the central ecliptic point.

दृक्क्षेपज्या The Rsine of the *drkksepa.* See *Drkksepa.*

दृक्क्षेपमंडल Secondary to ecliptic passing through zenith

दृक्क्षेपशंकु Altitude, or Rsine of altitude, of the central ecliptic point.

दृग्गति Arc corresponding to the Drggatijya.

The distance of a planet's circle of celestial longitude from the zenith, or its Rsine.

दृग्गतिज्या The draggatijya is the distance from the zenith of the plane of a planet's circle of celestial longitude, or the Rsine of the shortest distance from the zenith of a planet's circle of celestial longitude.

दृग्गुण The Rsine of zenith destance.

दृग्जीवा The Rsine of zenith distance.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दृग्ज्या The Rsine of zenith distance.
R sine of meridian zenith distance or simply zenith distance.

दृग्दृश्य कला Same as *Kalalipta.*

दृग्दृश्य कला लिप्ता Same as *Kalalipta.*

दृग्दृश्य केंद्र *Sighrakendra* for the time of heliacal rising or setting.

दृग्लंबन Parallax in zenith distance.

दृग्विधि Law of visibility correction.

दृग्वृत्त The vertical circle.

दृढ़ Prime

दृश्यकाल Duration of visibility.

दृश्यचन्द्र The longitude of the Moon corrected for the visibility corrections.

दृष्टिफल Same as *Drkkarma.*

देवपूज्य Jupiter.

देवमन्त्रि Jupiter.

देश Place

देशकाल Used in the sense of desantara-kala i.e. the Longitude-correction in terms of time.

देशजातकाल See Desakala.

देशांतर फल Correction due to difference in longitude.

देशान्तर The longitude of a place. It is either the distance of the place from the prime meridian, or the difference between the local and standard times.
Difference in longitudes of a given place and the prime meridian (usually Ujjayini).

देशान्तर-कर्म Correction for the longitude of the place, the longitude correction.

देशान्तघटी *Desantara*, in *ghatis*, *i.e.*, the *ghatis* of the difference between the local and standard times.

देह Used in the sense of grahadeha. See Granadeha.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दोः	Same as Bhuja.
दोर्ज्या	R sine longitude.
	Rsine of the base of a right angled triangle; *bhujajya.*
द्युगण	Same as *Ahargana.*
द्युचारिन्	Planet.
द्युज्या	Radius of the diurnal circle; day-radius.
द्युज्यामंडल	Diurnal circle.
द्युतनुभवन	The signs Gemini, Virgo, Sagittarius and Pisces.
द्युति	Shadow (meaning "the shadow of the gnomon")
द्युतिकर्ण	The hypotenuse of the shadow (of the gnomon).
द्युदल	The day radius.
द्युदलशंकु	R sine altitude at midday.
द्युमंडल	The diurnal circle.
द्युमुध	Same as *Avamasesa.*
द्युराशि	Ahargana.
द्युव्यास	The day radius.
द्युव्यासखंड	The day radius.
द्युव्यासभेद	The day radius.
द्युव्यासार्ध	The day radius.
द्रष्टा	Observer.
द्वापरयुग	Third of the four yugas of a Mahayuga; duration: 8,64,000 years
द्विमण्डल	Same as Manaikyardhvrtta.
द्व्यग्र	A sagra kuttakara (residual pulveriser) with two residues.
धन	Addition.
धन	Positive; excess
धनदिक्	North.
धनिष्ठा	The name of the twenty-third naksatra.
धनुः	(1) Arc (2) The sign Sagittarius.
धनुःखण्ड	In Hindu astronomy, the quadrant of a circle is divided

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

into twenty-four equal parts and these parts are known as kastha, dhanu, dhanukkhanda. dhanurbhaga, etc.

धनुर्भाग The element of arc, or elementary arc (i.e., one of the twentyfour equal divisions of a quadrant, the Rsine-differences of which have been tabulated by Aryabhata I)

धनुर्भाग Arc of 225' (3¾)

धनुस् (1) Arc. (2) 225.

धन्विन् The sign Sagittarius.

धरणीदिन Civil Day

धरा The Earth.

धरादिवस Civil Day

धरासुत Mars.

धात्रीधर Seven

धिष्ण्य Star.

धुज्यावृत्त Diurnal circle; day circle.

धृति Distance of a heavenly body from its rising-setting line, usually called *istahrti.*

ध्रुव Celestial pole.Pole star; fixed.

ध्रुव प्रोत Secondary to celestial equator.

ध्रुवक A Technical term.

Polar logitude along the ecliptic at the foot of the circle from the pole.

ध्वन्त Same as Tamas.

नक्षत्र (1) Star (2) Asterism (3) Twenty-seven

नक्षत्र दिन Sidereal day.

नक्षत्रगण Same as Bhagana.

नक्षत्रभेद Occultation of stars.

नक्षत्र Star; zodiacal star-group or asterism; twenty-seventh part of the ecliptic.

नत Meridian zenith distance (natamsa); hour angle *(natakala).*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नतकाल Hour-angle.

नतकाल कोटिज्या R cosine of Natakala. Rcosine of the hour angle.

नतकाल क्रमज्या R versed sine of Natakala.

नतकाल ज्या R sine of Natakala. Rsine of the hour angle.

नतभाग Meridian zenith distance.

The degrees (bhaga) of zenith distance (nata).

नतांश Zenith distance.

(1) The meridian zenith distance (2) Celestial latitude as corrected for parallax in latitude. (3) Parallax in latitude.

(1) Meridian zenith distance, or the Rsine of that. (2) Difference between the parallaxes in latitude of the Sun and Moon.

नति Parallax in latitude.

नतिज्या The Rsine of the meridian zenith distance.

नभसो मध्य The meridian of the place. Literally, the middle of the sky.

नर (1) The sign Gemini. (2) Gnomon (3) The Rsine of altitude.

नलक The observer's tube.

ना The Rsine of altitude. Same as *Sanku.*

नाडिका A unit of time equivalent to 24 minutes.Same as *Ghati.*

नाडी Same as *Ghati.* Unit of time, 24 minutes.

नाडीवलय Celestial equator.

नाडीवृत्त The equator.

निमिलन Immersion; beginning of total eclipse.

Total obscuration of eclipsed body.

निरक्ष Equator.

निरक्षक्षितिज Equatorial horizon.

निरक्षजाः असवः *Asus* of right ascension, or the time is asus of rising at the equator.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निरक्षराश्युदय Right ascension of the signs; time of rising of the signs at the equator.

निरक्षासु Asus of the right ascension, i.e., the time in asus of rising at the equator.

निरपवर्तित Unabraded, unabridged.

निरग्रता Absence of remiander.

निरांशदिन Synodic period in terms of day.

निशा Night.

निशाकर (1) Moon (2) One.

निशाकृत् The Moon.

निशानाथ The Moon.

निशेष A unit of time; according to the *Sidhanta siromani,* 1 day = 9,72,000 *nimesas*

निश्चलक्रिया Method of successive approximations.

निःश्वासलव Asus

नीच Perigee of epicycle or ecentric of planet.

नीचोच्च रेखा Line of apse.

नीचोच्च विधान The epicyclic theory.

नीचोच्च वृत्त Epicycle.

नृ Gnomon. Same as *Sanka.*

नृतल Same as *Sankutala.*

नेमि Circumference, periphery.

पंक्ति Ten

पंचांग Calendar

पक्ष Lunar fortnight, i.e., the period from new moon to full moon, or from full moon to new moon. The period from new moon to full moon is called the light fortnight (or the light half of a lunar month(and that from full moon to new moon is called the dark fortnight (or the dark half of a lunar month).

पत

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पतल

पद (1) Quadrant. (2) Square root.

पद्मिनीबन्धु The Sun.

परक्रान्ति (Sun's) greatest declination, or obliquity of the ecliptic.

परम लंबन Horizontal parallax; maximum parallax.

परमक्रान्ति Greatest declination of the Sun, i.e., the obliquity of the ecliptic.

परमक्षिप्ति Greatest celestial latitude (of the Moon), i.e., inclination of the Moon's orbit.

परमापक्रम Same as Paramakranti.

परमापक्रमो गुणः The Rsine of the Sun's greatest declination.

परमापम Same as Parakranti.

परिधि (1) Circumference, periphery. (2) Epicycle.

परिधि Epicycle.

परिलेख Projection, graphical representation.

परिलेखासूत्र Thread equal to the radius of a inner boundary of the Moon's illuminated part.

परिवर्त Revolution, Bhagan.

पर्यय Same as *Bhagana.*

पर्याय Revolutions of a heavenly body in a given period (like *mahayuga); bhagana*

पर्व (1) Time of conjunction or opposition of the Sun and The Moon. (2) Full moon or new moon *tithi.* (3) An eclipse of the Sun or Moon.

पर्वमध्य The middle of an eclipse.

पर्वनाडी The *nadis* of the full moon or new moon *tithi* (also called parva) which are to elapse at sunrise on that day. Or, in otherwords, the time in nadis which is to elapse at sunrise before the time of conjunction or opposition of the Sun and Moon.

पर्वांत End of a *parva*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पल	Latitude. Unit of time, 24 seconds. A unit to time; *vinadi*
पलकर्ण	Hypotenuse of right-angled triangle, two sides of which are gnomon and equinoctial shadow.
पलज्या	The Rsine of the latitude.
पलभा	Equinoctiel midday shadow of the gnomon.
पलभाग	The degrees of the latitude.
पलांश	The degrees of the latitude.
पलाङ्गुल	Used in the sense of 'palabhangula'. i.e., the angulas of the equinoctial midday shadow.
पश्चार्ध	The western half.
पश्चिम	West.
पात	The ascending node of a planet's orbit (on the ecliptic). Moon's ascending node. time when sum of Sun's and Moon's longitudes is 6 or 12 signs. Vyatipata and Vaidhrti. Node of the moon (or a planet); point of intersection of the ecliptic with the orbit (*kaksa*) of the moon (or a planet)
पाताल	Nadir.
पातभाग	The degrees of the longitude of the ascending node.
पारमार्धिक वलन	Algebraic sum of *aksavalana* and *ayana valana* (numerical addition when both are north or both south and difference when they are of opposite directions).
परपूर्वमण्डल	The Prime vertical.
पित्र्य	The *naksatra* Magha, which is presided over by *Pitr-s*.
पुष्कर	Three.
पुष्य	The *naksatra* Pusya.
पूर्णिमा	Full Moon.
पूर्व	East.
पूर्वलग्न	The horizon-ecliptic point in the east.
पूर्वापर सूत्र	East-west line

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पूर्वापरायत Directed east to west.

पूर्वाह्न Forenoon.

पौष्ण The *naksatra* Revati, which is presided over by Pusa.

प्रकृति Eight.

प्रक्रिया Process.

प्रक्षेप Addition.

प्रागापर East-West.

प्रग्रह Beginning of eclipse.

प्रग्रास The beginning of an eclipse, i.e., the first contact.

प्रतिपद् The first tithi of eigher half of a lunar month is called Pratipad.

प्रतिमण्डल Eccentric.

प्रतिमण्डलकर्म Processes under the eccentric theory.

प्रतिमण्डलविधि The ecentric theory.

प्रतिलोम Retrograde. A planet is said to be pratiloma when its motion is retrograde. clockwise.

प्रतिवृत्त Eccentric circle of a planet.

प्रभा (1) The shadow of the gnomon. (2) The Rsine of the zenith distance.

प्रलयास्तिथीनां Omitted lular days.

प्राग्लग्न Same as Udayalagna.

प्रविस्त्र Diameter

प्रस्तार The statement of possible combinations in a serial order.

प्राक्कपाल The eastern hemisphere.

प्राग्ग्रास The first contact in an eclipse.

प्राग्विलग्न The rising point of the ecliptic.

प्राची East

प्राण Same as Asu. Forenoon; *purvahna.*

प्रालेयरश्मि One.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रोन्नति Altitude.

फल (1) Result (2) Correction

बव The first of the seven movable karanas. The karana is one of the five important elements of the Hindu Calendar.

बहुल The naksatra Krttika.

बाण Celestial latitude.

बाहु (1) The base (of a right-angled triangle). The ubright of a right-angled triangle is called koti. (2) The bahu corresponding to a planet's anomaly. This is the arcual distance of the planet from its apogee or perigee whichever is neareer. Suppose that θ is the anomaly of a planet (or any arc, whatever). If θ is less than $\pi/2$, θ itself is the bahu; if θ is greater than $\pi/2$ but less than π, $(\pi-\theta)$ is the bahu; if θ is greater then π but less than $3\pi/2$, $(\theta-\pi)$ is the bahu; and if θ is greater than $3\pi/2$, $(2\pi-\theta)$ is the bahu. The complement of the bahu is called koti.

बाहुक Same as Bahu.

बाहुज्या The Rsine of the bahu (of a planet's anomaly).

बाहुफल Correction due to the *mandocca* or *sighrocca* of a planet. The formula for the *bahuphala* is: bahuphala = $\frac{bāhujya \times \text{tabulated epicycle.}}{80}$

बाहोःफलं Same as Bahuphala.

बिन्दु Point.

बिम्ब Disc of a planet.

बिम्बार्ध The semidiameter of the disc.

बुध Mercury. Also called Sasisunu (son of Moon).

बुधाश North.

ब्रह्ममंडल Same as *Bhramavrtta.*

ब्रह्मवृत्त Diurnal circle; day-circle.

भ Sign. Star; asterism;

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भकक्ष्या	Orbit or circle of the asterisms.
भग	The naksatra Purva-phalguni, the regent of which is Bhaga.
भगण	(1) The revoloution-number of a planet, i.e., the number of revolutions that a planet performs in a certain period. The revolution given by Bhaskara I correspond to a yuga, i.e., to a period of 43,20,000 years (2) The naksatras. (3) Twelve signs (or 360^0).
भगणकला	Sidereal period of a heavenly body.
भगोल	Sphere of the sky; the celestial sphere.
भगोल	Sphere of the asterisms.
भचक्र	Zodiac (consisting of 27 *naksatras or* 12 *rasis*)
भदिवस	Sidereal day.
भभ्रम	Revolutions of fixed stars.
भभ्रम	Locus of (the end of) shadow.
भवन	Sign
भवलय	Same as *Bhakaksya.*
भवृत्त	Revolution of the asterisms; sidereal day.
भावृत्त	The shadow-circle; the circle drawn by taking the length of shadow for the radius.
भा	Shadow (of the gnomon).
भांश	Degrees in a circle i.e. 360.
भाकर्ण	Hypotenuse of shadow.
भाकर्णवृत्त	Same as *Bhavrtta.*
भाग	(1) Part, fraction. (2) Division. (3) Degree (°).
भागलब्ध	Quotient.
भागशेष	The residue of the degrees.
भागहार	Divisor
भागहारक	Same as Bhagahara.
भाग्रा	*Agra* for the shadow-circle.
भाज्य	Dividend.

 CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भानु The Sun.

भार्गव Venus.

भावृत्ताग्र Same as *Bhagra.*

भास्कर (1) The Sun. (2) Twelve.

भास्वत् The Sun.

भिदः Half.

भिन्नदिक्क Unlike direction.

भिन्नदिक् Unlike direction.

भुक्त Traversed, passed over.

भुक्तकाल Time passed.

भुक्ति Motion, or daily motion.

भुक्तियोग Sum of (daily) motions.

भुक्तिविशेष Motion-difference.

भुज Same as *bahu. bhuja* of an arc or angle. Base of a triangle ; longitude. .

भुजज्या The Rsine of *Bhuja (Bhuja or Bahu).*

भुजा Same as Bhuja. or Bahu.

भुजान्तर Correction for the equation of time due to the eccentricity of the ecliptic. Correction for equation of time due to eccentricity of ecliptic.

भुजाफल The equation of the centre.

भुजाफल Same as Bahu-phala

भुजामौर्वी Same as *Bhujajya.*

भूकर्ण Diameter of the earth; *bhivyasa.*

भूगोल Terrestrial globe.

भूच्छाया The Earth's shadow.

भूच्छायादैर्घ्य The length of the Earth's shadow, i.e., the distance of the vertex of the shadow cone from the Earth's centre. Same as *Chaya-dairghya.*

भूज्या Same as *Ksitijya.*

भूताराग्रहविवर The distance between the Earth and a star-planet.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भूदिन	Civil days. Period from one sunrise to the next.
भूदिवस	Civil day.
भूमिदिन	Civil day.
भूमिव्यास	The diameter of the Earth.
भूमेःवृत्तं	The circumference of the Earth.
भृगु	Venus.
भृगुज	Venus.
भृगुपुत्र	(or *Bhargava)* Venus. Also called Sita (white-coloured planet).
भेद	One-half; eclipse of one planet by another, called *bhedayuti;* occultation of a star.
भोग	Motion. Daily motion.
भोदय	Time of rising of a sign.
भोग्यकाल	Time to pass.
भोग्यखंड	Tabular difference of Rsine etc. yet to be covered. Tabular difference of R sine, etc. to be passed in the meridian.
भोग्यमंदफल	Portion of equation of centre yet to be covered.
भौम	Mars, son of Earth. See also *Angaraka.*
मंद गतिफल	Correction to mean motion of planet.
मंद परिधि	Circumference of manda epicycle.
मंदकर्म	The process of finding out the equation of centre.
मंदकेन्द्रज्या	R sine of Mandakendra.
मंदनीचोच्चवृत्त	Manda epicycle; *mandanu vrtta*
मंदफलज्या	R sine of Mandaphala.
मंदनीच	Perigee; 180° from *mandocca*
मंदस्पष्ट गति	Mean motion of a planet corrected by mandagatiphala.
मंदस्फुटगति	Same as above.
मंदान्त्य फल	Maximum correction due to mandocca.
मंदान्त्यफलज्या	R sine of Mandatyaphala.
मकर	Capricorn.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मघवद्गुरु Jupiter

मघा Name of the tenth naksatra.

मघामध्यस्थतारकम् The central star of the *naksatra Magha.*

मण्डल Circle; a collection of 12 signs.
(1) Circle. (2) Revolution.

मण्डलमध्य The centre of a circle.

मण्डलार्ध Half of a revolution, i.e., six signs, or 180°.

मति An optional number.

मत्स्य Fish-figure.

मधु Caitra. the first month of the year.

मध्य Zenith distance of ecliptic point.

मध्य स्थित्यर्ध Intervals between the middle of an eclipse and the moments of contact and separation (end)

मध्यकर्ण Radius; *vyasardha, karnardha*

मध्यक्रान्ति The declination of the meridian ecliptic point.

मध्यगति Mean (daily) motion.

मध्यग्रह Mean longitude of a planet.

मध्यग्रहण Middle of an eclipse.

मध्यग्रास *Grasa* for the middle of the eclipse.

मध्यच्छाया The midday shadow (of the gnomon).

मध्यजातः लम्बकः The upright due to the meridian-ecliptic point, i.e., the Rsine of the altitude of the meridian ecliptic point.

मध्यजीवा The Rsine of the zenith distance of the meridian-ecliptic point.

मध्यज्या Same as *Madhya-jiva.*
Rsine of zenith distance of the meridian-ecliptic point, called the meridiansine.

मध्यदिन Mid-day.

मध्यनर Altitude, or Rsine of altitude, of the meridian ecliptic point.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यपरिनिष्ठितलम्बक Same as Madhyajatah lambakah.

मध्यभुक्ति Mean (daily) motion.

मध्यम (1) Mean. (2) Mean planet (*madhyamagraha*).

मध्यमा Meridian ecliptic point.

मध्यमा भुक्तिः Mean (daily) motion.

मध्यमार्कक्रांति Declination of place of planet on ecliptic.

मध्यरात्र Midnight.

मध्यरेखा Central meridian of the earth passing through *Lanka, Ujjayini Kuruksetra* and Mount *Meru; madhyasutra*

मध्यलंबन Parallax in longitude at the middle of an eclipse

मध्यलग्न Meridianecliptic point.

मध्यलग्नशंकु R consine of Madhyalagna.

मध्यशंकु Gnomon formed with the sun crossing the meridian.

मध्यसूर्यावनाम The zenith distance of the midday Sun, or the meridian zenith distance of the Sun.

मध्यावनति The zenith distance of the midday Sun.

मध्याह्छायाकर्ण Hypotenuse of right-angled triangle, two sides of which are gnomon and midday shadow.

मध्याह्न Midday.

मध्याह्न परिधि Circumference of th epicycle at mid-day.

मध्याह्न लग्न Same as *Madhya-lagna.*

मध्याह्नच्छाया The midday shadow (of the gnomon).

मनु Fourteen. A period of 72 *yugas* or 72×43,20,000 years.

मन्द (1) *Mandocca.* (2) *Manda-paridhi* (*Manda epicycle*).(3) Slow.

मन्दकेन्द्र Manda anomaly (=longitude of the planet minus longitude of the planet's apogee) Mean anomaly.
Angular distance of a heavenly body from its *Mandocca;* anomaly from apogee or aphelion.

मन्दफल Correction due to the planet's mandocca. In the case of

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

the Sun and Moon, the equation of the centre.
Equation of centre (due to the eccentricity of an orbit).

मन्दमौर्वीफलचाप Same as Manaphala.

मन्दवृत्त Manda epicycle.

मन्दसिद्ध Corrected for the mandaphala.

मन्दसिद्धि Correction (of a planet) for the mandaphala.

मन्दांश The longitudes of the apogees of the planets in terms of degrees.

मन्दान्त्यजीवा The Present Rsine-difference corresponding to the mandakendra i.e., the Rsinedifference of the elementary arc in which the planet lies.

मन्दोच्च The apogee of a planet. See Ucca. The highest point of the manda eccenrtic; apogee; apex of slowest motion.

मन्दोच्चकर्ण See Mandakarna.

मन्दोच्चकेन्द्र See Manakendra.

मन्दोच्चफल Correction due to a planet's *mandocca.*

मन्देोच्चवृत्त Manda epicycle.

मन्वन्तर Age of Manu : 308448000 solar years;

महायुग *Caturyuga :* Great age consisting of 432×10^4 years; consists of four parts (*yugas)* viz; *Krta, Treta, Dvapara* and Kali of durations in the ratio 4:3:2:1. According to the *Aryabhatiyam,* the four *yugas* are of equal duration : 108×10^4 years each.

महाशंकु Rsine of altitude.

महिजा The Horizon.

महिजीवा The earth-sine, Same as *Kujya.*

मानैक्यार्ध Half the sum of the diameters of the eclipsed and eclipsing bodies.

मानैक्यार्धवृत्त Circle drawn with *manikyardha* as the radius.

मास A (lunar) month.

माहेय Mars.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिथुन	The sign Gemini.
मिथुनचरदल	Ascensional difference at the end of the *Mithuna rasi.*
मीन	(1) Fish-figure, (2) the sign Pisces.
मुक्ति	Release of the eclipsed body; end of eclipse; last contact.
मुहूर्त	A unit of time; 30 *muhurtas = 1 day; 1 muhurta = 2 ghatikas = 48* minutes.
मूल	(1) Square root. (2) The *naksatra Mula.*
मृग	The sign Capricorn.
मृगमुख	The first point of Capricorn.
मृगव्याध	Sirius; *Lubdhaka;* brightest visible star in the sky.
मृदु	Same as *manda* (slow).
मृदुच्च	Same as Mandocca.
मृदुस्पष्ट	*Mandaspasta* or true- mean.
मेदिनी	Earth.
मेरु	Earth's Pole
मेलक	Conjunction of planets; *yuti, yoga.*
मेषचरदल	Ascensional difference at the end of *Mesa rasi* (the first sign of the zodiac).
मैत्र	The *naksatra* Anuradha, which is presided over by Mitra.
मोक्ष	The separation of the eclipsed body after an eclipse, the last contact, or the end of an eclipse.
मोक्षलंबन	Parallax in longitude at the end of an eclipse.
मौरिक	Minute of arc.
मौर्वि	(or *Maurvika)* Same as *Jya.*Rsine.
यम	(1) Saturn, (2) Name of the second naksatara Bharani, whose divinity is Yama. (3) Two.
यष्टि	*Yasti* instrument; gnomon; radius.
योम्योत्तर वृत्त	Same as yamottar.
यात	Elapsed.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

याम्य (1) The south direction which is presided over by yama. (2) The southern hemisphere (*yamyagola*). (3) The *naksatra* Bharani, which is presided over by Yama.

याम्यगोल The southern hemisphere, i.e., the hemisphere lying to the south of the equator.

याम्योत्तर South-north.

The local meridian.

The north-south vertical circle i.e. the vertical circle going through the north and south cardinal points. Also called *Yamyodagvrtta.*

याम्योत्तर मंडल Meridian

याम्योत्तरायत Directed south-to-north.

युक्पद Even quadrant.

युग Part of mahayuga of 4320000 solar years.

युगाधिक Intercalary months in a *yuga.*

युग्म Even.

युति Union, Junction.

योग (1) Addition (2) Conjunction of two heavenly bodies.

(1) Conjunction in longitude of two heavenly bodies.

An element of the *Pancanga;* also conjunction of two heavenly bodies.

Period during which Sun and Moon together describe 800°.

योगतारा Junction-stars. These are those prominent stars of the twenty-seven *naksatras* which were used by the Hindu astronomers for the study of the conjunction of the planets, especially the Moon, with them.

Principal star in an asterism.

योगभाग the degrees of longitudes of the junctionstars.

योजन The *yojana* is a unit of distarice. The length of a *yojana* has differed at different places and at different times.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

	The *yojana* of Aryabhata I and Bhaskara I is roughly equivalent to 7½ miles.
	A unit of distance equal to 32000 cubits.
योजनकर्ण	The distance of a planet in terms of *yojanas.*
योजनव्यास	The diameter in terms of *yojanas.*
रवि	(1) The Sun. (2) Twelve.
रविकर्ण	Distance of Sun from earth
रविज	(1) Saturn (2) A special term used by Bhaskara I. See MBh, i.27
रविभगण	Revolutions of Sun.
राजपुत्र	Mercury, Literally, the son of the king (Moon).
राशि	(1) Quantity. (2) Sign.
राशिकला	The number of minutes is a sign, *i.e.*, 1800.
राशिजीवा	The Rsine of one sign, i.e., Rsin (30^0)
राशित्रय	Three signs.
राशिशेष	The residue of the sign.
राहु	The Moon's ascending node.
रुधिर	Mars.
रेखा	(1) Line. (2) Prime-meridian.
रोच्यमर घटिका	Lords of 30 degrees of a sign or of 30 Parsi days.
लंकोदय	Times of rising (of the signs) at Lanka, or right ascensions (of the signs).
लंबांश	Colatitude in degrees.
लंबज्या	Rsine of colatitude.
लग्न	The horizonecliptic point in the east.
लग्न	The rising point of the ecliptic.
लग्न	Ascendant; orient ecliptic point; point of intersection of the ecliptic with the eastern horizon
लग्नकला	Time correcponding to the given *lagna.* Also called *Istakala.*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लघुकाः	Abridged or shorter quantities.
लघुज्या	Calculations of R sines of arcs of 10°.
लघुतन्त्र	Short or simplified method.
लघ्व अहर्गण	Civil days between end of one solar year and any date in current year.
लंङ्का	A place in 0 latitude and 0 longitude. A hypothetical place on the equator where the meridian of Ujjain intersects it.
लंङ्काराश्युदय	Times of rising of the signs at Lanka, or right ascensions of the signs.
लब्ध	Quotient.
लम्ब	The Rsine of the colatitude (of the place).
लम्बक	The Rsine of the colatitude.
लम्बकगुण	Same as *Lambaka.*
लम्बन	Parallax in longitude; or, in particular, the difference between the parallaxes in longitude of the Sun and Moon.
लम्बनलिप्ता	Lambana in longitude in terms of minutes of arc.
लम्बनान्तर	The lambana-difference.
लम्बनान्तरनाडिका	The nadis of the lambana-difference, or the lambana-difference in terms of nadis.
लव	Part, portion, fraction. (2) Degree.
	Viliptika; second of arc.
लिखनसूत्र	Same as Parilekhasutra.
लिप्तिका विपूर्वा	Viliptika ; second of arc.
लिप्ता	Minute of arc.
	Minute (unit of angular measurement)
लिप्ताव्यास	Diameter (of a planet) in minutes.
लिप्ताशेष	The residue of the minute.
लिप्तिका	Same as *Lipta.*
लेखा	the prime meridian. See *Kumadhyarekha.*
वक्र	Retrograde

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वक्र A planet in retrograde motion.

वक्रकर्ण *Sighrakarna* for the beginning of retrograde motion.

वक्रकेंद्र *Sighrakendra* for the beginning of retrograde motion.

वक्रगति Retrograde motion. Retrogression.

वक्रगमन Retrograde motion.

वक्रत्व Curvature.

वक्रभोग Retrograde motion.

वक्रारम्भ Commencement of retrograde motion.

वक्रि A planet in retrograde motion.

वक्रीग्रह A planet in retrograde motion.

वचसां पतिः Jupiter.

वत्सर Year.

वपु The body (globe or disc) of a planet.

वरुणादिक West.

वर्ग Square.

वर्गराशि A square quantity.

वर्गविधि Method of solving a quadratic equation.

वर्तमान Present, current.

वर्तमानगुण The present (or current) Rsinedifference of the elementary are occupied by a planet.

वर्त्म Path, locus.

वर्त्मवृत्त The circle denoting a path (or locus).

वर्ष Year

वर्षप The lord of the year, i.e., the planet after whose name the first day of the year bears its name.

वर्षपूग A collection of years, or simply years.

वर्षाधिप Lord of year.

वलन Deflection. Valana relates to an eclipsed body. It is the angle subtended at the body by the arc joining the north point of the celestial horizon and the north pole of the ecliptic. Valana is generally divided into two compo-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

nents, (i) Aksavalana and (ii) Ayanavalana. The Aksavalana is the angle subtended at the body by the arc joining the north point of the celestial horizon and the north pole of the equator. The Ayanavalana is the angle subtended at the body by the arc joining the north poles of the equator and the ecliptic.

The valana is also defined as follows : The great circle of which the eclipsed body is the pole is called the horizon of the eclipsed body. Suppose that the prime vertical, equator, and the ecliptic intersect the horizon of the eclipsed body at the points A, B and C towards the east of the eclipsed body. Then arc AB is called the Aksavalana, arc BC is called the Ayanavalana and arc AC is called Valana.

Valana is also called spastavalana.

वलनकर्म Calculation of *valana.*

वल्लकीभृत् The sign Gemini (Literally, "the luteholder".

वसुन्धरा Earth.

वार Day.

वारुणी West. The western direction is called *Varuni* because it is presided over by *Varuna.*

वासव The *naksatra* Dhanistha, which is presided over by *Vasu.*

वि Celestial latitude. Evidently, Vi is an abbreviated form of viksepa.

विकता Residual arc.

विकलगति Stationary motion.

विकला Second of arc.

One second of arc; 1/3600th of a degree; *vilipta*

विकाष्ठ The arc of celestial latitude.

विक्रम संवत् Vikrama starting from 57-56 B.C.

विक्षिप्ति Celestial latitude.

विक्षेप Celestial latitude.

Polar latitude; *ksepa, sara*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विक्षेपज्या	The Rsine of celestial latitude.
विक्षेपमंडल	Orbit of planet.
विक्षेपलिप्तिका	The minutes of celestial latitude.
विक्षेपांश	The degrees of celestial latitude.
विघटिका	A unit of time, equivalent to 24 seconds.
वित्रिभ	That point of the ecliptic which is three signs behind the Lagna; The central ecliptic point; the nonagesimal.
वित्	Mercury.
विदिक्क	Contrary direction.
विदिक्शंकु	Corner altitude, or its Rsine.
विदिगवृत्त	Corner vertical circle; the vertical circle going through a corner direction.
विदिश्	Contrary direction.
विधि	Method.
विनाडिका	Same as Vighatika.
विनाडी	Same as Vinadika.
विपरीतगुण	Rversed-sine.
विपरीताः	Rversed-sines.
विपल	Unit of time, 24 seconds.
विपुलच्छाया	Great shadow, meaning "the Rsine of the zenith distance".
विपुलनर	Great gnomon, meaning "the Rsine of altitude."
विप्रयग	Difference.
विभेद	Same as *Bheda-yuti. See Bheda.*
विमंडल	Orbit of the Moon or of a planet.
विमर्द	Duration of total eclipse.
विमर्दार्ध	Half the duration of totality of an eclipse.
विमौरिक	Second of arc.
विलंबन	Same as *Lambana.*
विलग्न	The horizonecliptic point in the east. Same as *Lagna.*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विलग्नकाल Same as *Lagnakala.*

विलिप्ता Second of arc.

विलिप्तिका Same as *Vilipta.*

विलोमगति Retrograde motion; *Vakragati*

विलोमज्या Same as *Urkramajya.*

विवर Difference, intervening space.

विवस्वत् The Sun.

विशाखा The *naksatra Visakha.*

विशिखा Celestial latitude.

विश्लेष Difference.

विषम Odd.

विषुवच्छाया Same as *Palabha.*

विषुवज्या The Rsine of the latitude (of a place).

विषुवत् The equator.

विषुवत्कर्ण The hypotenuse of the equinoctial midday shadow.

विषुवत्प्रभा The equinoctial midday shadow.

विषुवद्वृत्त The equator.

विषुवदुदयराशिप्राणपिंड Time in asus of rising of the signs at the equator, i.e., right ascension of the signs in terms of asus.

विषुवद्दिन The day of the equinox.

विषुवद्दिनमध्याह्नच्छाया The equinoctial midday shadow.

विष्कम्भ Diameter.

विष्कम्भदल Semidiameter, radius.

विष्कम्भार्ध Semidiameter, radius.

विष्णुपद The Sun's entry into the signs Taurus, Leo, Scorpio and Aquarius is called *Visnupada-sankranti.*

विस्तर Same as Vistara.

विस्तार (1) Diameter. "Vyasa, Viskambha, and vistara are synonyms", says Bhaskara I. (2) Length, breadth, etc. "Ayama, vistara, and dairghya are synonyms," says Bhaskara I.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विस्तृति Radius.

विहंगम Planet.

विहग Planet.

वृत्त (1) A circle or its cirumference. (2) Epicycle. Circle ; orbit; epicycle.

वृत्तसंख्या The length of the circumference of a circle.

वृन्द Cube.

वृष The sign Taurus.

वेलाकुट्ट Time-pulveriser.

वैधृत The "aspect" between the sun and the moon when the sum of their longitudes is 360° and their declinations (*kranti*) are equal in magnitude but opposite in directions. An astronomical phenomenon. Time when the sum of the longitudes of Sun and Moon is 12 signs.

वैश्व The *naksatra* Uttarasadha, which is presided over by Visve Devah.

वैषुवती छाया The equinoctial midday shadow.

वैष्णव The *naksatra* Sravana, which is presided over by Visnu.

व्यतिपात An astronomical phenomenon. Time when the sum of the longitudes fo Sun and Moon is 6 signs. The "aspect" of the sun and the moon when the sum of their longitudes is 180° and their declinations (*kranti*) are same both in magnitude and direction.

व्यवच्छेद Divisor.

व्यस्तज्या Rversed-sine.

व्यास (1) Diameter. (2) Radius.

व्यासखण्डनिचय same as Vyasakhanda.

व्यासदल Semi-diameter, radius.

व्यासयोजन Diameter in terms of *yojanas*.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्यासार्ध	Radius or 3438. Radius of a circle.
व्योमवृत्त	Circle of the sky.
शंकु	Gnomon; twelve; altitude or Rsine of altitude.
शंकुतल	The distance of the projection of a heavenly body on the plane of the celestial horizon, from the rising-setting line of the heavenly body.
शंकुतल	Base of R sine altitude.
शकाब्द	The years of the Saka era.
शक्र	Fourteen.
शक्रगुरु	Jupiter.
शक्रतारक	The naksatra Jyestha, whose regent is Indra.
शङ्क्वग्र	The distance of the projection of a heavenly body on the plane of the celestial horizon from the planet's rising-setting line.
शङ्क्वग्रजीवा	Same as Sankvagra.
शतभिषक्	The naksatra Satabhikha.
शनि	Saturn. Also called *manda* (slow-moving planet) or *Raviputra* (Sun's son).
शफरिका	A fishfigure.
शर	(1) Rversed-sine. (2) Five. Celestial latitude.
शरासन	Same as *Dhanu.*
शशलक्ष्मा	The Moon.
शशांक	The Moon.
शशि	(1) The Moon. (2) One.
शशिग्रह	The sign Cancer.
शशिज	Lunar.
शशिभवन	Same as *Sasigrha.*
शश्युच्च	Moon's apogee.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिशिरदीधिति The Moon

शीघ्र Same as Sighrocca.
(1) *Sighrocca.*
(2) *Sighra epicycle.*
Fast motion (as opposed to *manda*)

शीघ्रकर्ण The distance of a planet obtained by the sighrocca process.

शीघ्रकर्म Finding out the equation of 'conjunction' (*sighraphala*)

शीघ्रकेंद्र The sighra anomaly. See Kendra. Angular distance of a mean planet from its *sighrocca* (apex of 'conjunction').

शीघ्रकेंद्रकोटिज्या R cosine of sighrakendra

शीघ्रकेंद्रज्या R sine of sighrakendra

शीघ्रकेन्द्रफल Sighraphala, i.e., correction due to the sighrocca.

शीघ्रगतिफल Second correction to mean motion of planet.

शीघ्रजःकर्णः Sighrakarna.

शीघ्रतुंग Same as Sighrocca.

शीघ्रनीचोच्चवृत्त Epicycle of *sighra*

शीघ्रन्यायागतं फलं *Sighraphala.* See *Sighraphala.*

शीघ्रन्यायाप्तचाप Sighraphala.

शीघ्रपरिधि Circumference of Sighra epicycle.

शीघ्रफल *Sighra* correction.
Second correction to mean longitude.
Equation of conjunction.

शीघ्रफलज्या R sine of above.

शीघ्रवृत्त Sighra epicycle.

शीघ्रसिद्ध Corrected for the sighraphala.

शीघ्रान्त्यजीवा The present Rsine-difference relating to the sighra (kendra)

शीघ्रान्त्यफल Maximum sighraphala

शीघ्रान्त्यफलज्या R sine of above.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शीघ्रोच्च See *Ucca.*

The highest point of the *sighra* eccentric; apex of fastest motion.

Apex of fast (*sighra*) motion. In the case of superior planets the mean sun is the *sighrocca* while for Mercury and Venus two special points are defined as their *sighrocca.* However, Nilkantha Somayaji maintains that the sun must be the *sighrocca* for all the planets.

शीघ्रोच्चकर्ण *Sighrakarna.* It is equal to $[(R + R \sin k)^2 + (R \sin b)^2]^{1/2}$ where R = 3438', k = *koti* due to *Sighra-kendra,* and b=*bhuja* due to *Sighra-kendra.*

शीतकिरण (1) Moon. (2) One.

शीतरश्मि (1) Moon. (2) One.

शीतांशु (1) Moon. (2) One.

शीघ्रोच्चवृत्त Sighraepicycle.

शुक्र Friday.

शुक्ल The illuminated part of the Moon's disc; the phase of the Moon. Same as Sita.

शुक्लपक्ष Bright half of a lunar month

शुद्धि Residue of the omitted days for the year-end.

Mean heliocentric position; for superior planets mean position of Sun.

शृङ्गोन्नति The elevation of the Moon's horns (or cusps).

शेष Remainder, residue.

शोधन Subtraction.

शोधनीय A subtractive quantity technically called sodhaniya or sodhya.

शोध्य See Sodhaniya.

शौक्ल्य The illuminated part of the Moon's disc.

श्रव Same as *Sravana.*

Hypotenuse; *karna*

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रवण	(1) Name of the 22nd naksatra, (2) The Hypotenuse (of a right-angled triangle). Hypotenuse.
श्रविष्ठा	Beta Delphini; *Dhanistha*
श्रुति	Hypotenuse.
षडवंद्य	Same as *Sadasitimukha.*
षडशितिमुख	The ends of the 26th degree of Sagittarius, the 22nd degree of Pisces, the 18th degree of Gemini, and the 14th degree of Virgo (which fall at intervals of 86 degrees beginning with the first point of Libra) are called *Sadasitimukha.* The Sun's entry into these signs is called *Sadasitimukha-sankranti.*
संकलित	Sum, total.
संक्रम	Same as *Sankranti.*
संक्रान्ति	Time of crossing a sign. Last day of solar month
संख्या	Number.
संख्यान	Mathematics; calculation
संयुक्त	In conjunction.
संस्कृत	Corrected.
सकलगुण	Radius or 3438'
सकृत	By the application of the rule only once (*i.e.*, without the application of the method of successive approximations).
सन्नति	Meridian zenith distance.
सम	Even. Used as an abbreviation for *Samamandala.*
समकर्ण	Hypotenuse of the prime vertical shadow.
समकल	Two planets are said to be *samakala* when they are either in conjunction or opposition in longitude.
समकल	Equal up to minutes of arc.
समदुग्ज्या	Rsine of the prime vertical zenith distance.
समद्देदक	The eclipser.
समधृति	*Dhrti* for the prime vertical.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समपूर्वापर Same as *Samamandala.*

समपूर्वापरः शंकुः The Rsine of the prime vertical altitude (of the Sun)

समप्रोत Secondary to prime vertical

समभोगी A natsatra whose length is equal to the Moon's mean daily motion.

सममंडल The prime vertical; the vertical circle going through the east and west cardinal points (called *Samasthana).*

सममण्डलजा छाया The prime vertical shadow.

सममण्डलशंकु The Rsine of the prime vertical altitude.

समयांश Same as *Kalamsa.*

समरेखा The meridian.

समलिप्त Two planets are said to be samalipta when their longitudes are equal up to minutes.

समलिप्तेन्दु The longitude of the Moon, for the time of opposition or conjuction of the Sun and Moon.

समवलम्बज्या The Rsine of the colatitude.

समवलय Same as *Samamandala.*

समवृत्त Same as *Samamandala.*

समशंकु Prime vertical altitude or Rsine of prime vertical altitude.

समागम Conjunction of two heavenly bodies. Same as *yoga* or *Yuti.*

समासदल Same as *Manaikyardha.*

समासदल वृत्त Same as *Manaikyardhavrtta.*

समुन्नत Same as *Unnata.*

सम्पर्क The sum of the diameters of two bodies in contact. Used in the sense of "th sum of the diameters of the eclipsed and eclipsing bodies."

सम्पर्कदल Same as *Samparkardha.*

सम्पर्कार्ध Half the sum of the diameters of the eclipsed and eclipsing bodies.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वापम	The greatest declination (of the Sun), i.e., the obliquity of the ecliptic.
सहस्रांशु	The Sun.
सायक	Celestial latitude.
सार्पमस्तक	Name of an astronomical phenomenon.
सावन	Civil.
सावनमास	30 civil days.
सावित्र	Pertaining to the Sun.
सित	(1) The measure of the illuminated part of the Moon's disc; the phase of the Moon. (2) The light half of a lunar mouth (*sita-paksa*). (3) Venus.
सितखग	Venus.
सितपक्ष	The light half of a lunar mouth.
सितपर्व	Full moon *tithi*.
सितबिंदु	That point of the Moon's diameter which lies at the end of the illuminated part of the Moon.
सितमान	The measure of the illuminated part of the Moon's disc.
सुरनाथगुरु	Jupiter.
सुरपदिक्	East.
सुरि	Jupiter.
सुरेड्य	Jupiter.
सूर्य	(1) The Sun. (2) Twelve.
सूर्यकक्ष्या	The orbit of the Sun, the ecliptic.
सूर्यज	Saturn.
सूर्यपरिवर्तसावन	Civil day.
सैंहिकेय	The ascending node of the Moon's orbit. (*saimhikeya* literally means Rahu, son of Simhika).
सोमज	Mercury.
सोमसूनु	Mercury.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सौम्य	(1) North. (2) The *naksatra* Mrgasira. (3) Mercury.
सौर दिन	Solar day.
सौरमास	Solar month
सौरवर्ष	Solar year.
सौरि	Saturn.
स्थगित	Covered, hidden, concealed, eclipsed.
स्थिति	Duration (of an eclipse).
स्थिति खंड	Same as *Sthityardha.*
स्थितिदल	Half the duration (of an eclipse).
स्थितिमंडल	Same as *Manaikyardhavrtta.*
स्थित्यर्ध	Half the duration (of an eclipse).
स्थित्यर्धनाडिका	Half the duration (of an eclipse) in terms of *nadis.*
स्थिरभवन	The signs Taurus, Leo, Scorpio and Aquarius.
स्थूल	Gross, approximate.
स्पर्श	Contact.
स्पर्शकाल	Time of the first contact of an eclipse.
स्पर्शलंबन	Parallax at the beginning of an eclipse.
स्पष्ट	True, corrected.
स्पष्टगति	True daily motion.
स्फुट	True, corrected. Same as *Spasta.*
स्फुट क्रांति	Declination of planet's centre.
स्फुट विक्षेप	Celestial latitude corrected by parallax.
स्फुट-भोग	True (daily) motion.
स्फुटगति	True motion of a planet; *Pastagati*
स्फुटग्रह	True planet.
स्फुटभुक्ति	True (daily) motion.
स्फुटमध्य	True-mean; the truc-mean planet; the true-mean longitude of a planet.

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्फुटमध्यम Same as sphutamadhya.

स्फुटयोजन Used in the sense of sphutayojanakarna.

स्फुटयोजनकर्ण The true distance (of a planet) in terms of yojanas.

स्फुटवृत्त True or corrected epicycle.

स्वदेशभूमिवृत्त The local circumference of the Earth, *i.e.*, circumference of the local circle of latitude.

स्वदेशभोदय Times of rising of the signs at the local place, or oblique ascensions of the signs.

स्वदेशाक्ष The latitude of the local place.

स्वदेशोदय Same as *Svadesa-bhodaya.*

Oblique ascension; time of rising (of the signs) at the local place.

स्वभूवृत्त Same as *Svadesa-bhumi-vrtta.*

हदिज Parallax in longitude; *lambana*

हन्ति Occults.

हरिज Horizon.

हार Divisor.

हारराशि Divisor.

हिमांशु (1) Moon.

(2) One.

हीन (1) Less.

(2) Omitted lunar day (hinadivasa).

हीनदिवस Ommitted lunar day.

हीनरात्र Same as Hinadivasa.

हुताशन Three.

हृति Hypotenuse.

होरा Hour.

$\frac{1}{24}$ th of one day and night.

—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुबन्ध - III

संख्या शब्दों की सूची

संख्यानुसार

० अनन्त, अन्तरिक्ष, अभ्र, अम्बर, अम्बुद, असत्, आकाश, खं, ख, गगन, छिद्र, जलद, जलधर, जलधरपथ, दिव, नग्न, नभ, पयोद, पयोधर, पुष्कर, पूर्ण, पृथु, पृथुल, बिन्दु, मेघ, रन्ध्र, वरीय, विन्दु, वियत्, विष्णुपद, विहायस्, वृहत्, व्योम, शून्य

१ अंशुमान, अचला, अब्ज, अमृतांशु, अवनि, आदि, आस्य, इन्दु, इला, उडुपति, उर्वरा, उर्वी, ऋक्षेश, एक, एणधर, औषधीश, क, कलाधर, कलि, कु, कुमुदाकरप्रिय, क्षपाकर, क्षमा, क्षिति, क्षोणि, क्षोणी, क्ष्मा, गो, गोत्र, गोत्रा, ग्लौ, चन्द्र, चन्द्रमा, जगती, जैवातृक, ज्या, तुन, दाक्षायणीप्राणेश, धरणी, धरा, धरित्री, नायक, निशाकर, निशेश, पितामह, पृथिवी, प्रालेयांशु, ब्रह्मा, भुवन्यु, भू, भूमि, मही, मुख, मृगलाञ्छन, मृगाङ्क, मेदिनी, रजनीकर, रजनीश, रात्रिप, रात्रीश, रुग्ण, रूप, लपन, वक्त्र, वदन, वसुधा, वसुन्धरा, वाक्, विधु, विरञ्चि, विश्वम्भरा, शशधर, शशभृत्, शशलाञ्छन, शशाङ्क, शशि, शशी, शीतकर, शीतकिरण, शीतद्युति, शीतमयूख, शीतरश्मि, शीतांशु, शुभ्रभानु, श्वेत, श्वेतांशु, सितरश्मि, सुधांशु, सोम, स्थिरा, हरिणधृत् हरिणाङ्क, हिमकर, हिमगु, हिमरश्मि, हिमांशु।

२ अंस, अक्षि, अन्तक, अम्बक, अयन, अश्वि, अश्वनी, ईक्षण, ओष्ठ, कर, कर्ण, कुच, कुटुम्ब, गरुत्, गुल्फ, चक्षु, जङ्घा, जानु, दस्र, दृश्, दृष्टि, दोः, द्वन्द्व, द्वय, द्वि, ध्रुव, नय, नयन, नासत्य, नेत्र, पक्ष, पाणि, बाहु, भुज, भुजा, यम, यमल, युग, युगल, युग्म, रविचन्द्रौ, रविपुत्र, लोचन, श्रोत्र, स्तन, हस्त।

३ अग्नि, अनल, आज्यभुक्, आज्याश, उषर्बुध, काल, कृशानु, कृष्णवर्त्म, क्रम, गुण, गुप्ति, जगत्, ज्योति, ज्वलन, ज्वाल, तपन, तृतीय, त्रय, त्रिकटु, त्रिकाल, त्रिगत, त्रिगुण, त्रिजगत्, त्रिनेत्र, त्रिपदी, त्रैत, दह, दहन, दीप्ति, द्युति, धाम, नेत्र, पद, पावक, पुं, पुर, पुरुष, पुष्कर, ब्रह्मन्, भवुन,

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रत्न, राम, रुद्राक्ष, रोहित, लोक, लोचन, वचन, वह्नि, विक्रम, विष्णु, विष्णुक्रम, वृत्त, वैश्वानर, शक्ति, शिखा, शिखिन्, शिवनेत्र, शूल, सत्पार्चि, सहोदर, हरनयन, हरनेत्र, हव्यभुक्, हव्यवाहन, हव्याश, हुतभुज्, हुतवह, हुताश, हुताशन, होतृ।

४ अपस्, अब्धि, अम्बु, अम्बुधि, अम्बुनिधि, अम्भोधि, अम्भोनिधि, अय, अर्णव, आप, आम्नाय, आय, आश्रम, उदधि, उदन्वान्, उपाय, कषाय, कृत, केन्द्र, कोष्ठ, गति, जल, जलधि, जलनिधि, तुरीय, तुर्य, तोय, दिक्, दिश्, दिशा, ध्यान, नदी, निगम, निम्नगेश, नीरधि, नीरनिधि, पयोधि, पयोनिधि, पाथ, पाथोधि, पितामहास्य, प्रणिम्नगेश, बन्ध, बन्धु, ब्रह्मोद्भव, महोर्मि, महोर्मिक, माल, युग, लवणोद, लोकपाल, वर्ण, वारिधि, वारिनिधि, वार्धि, विषधि, विषनिधि, वेद, श्रुति, सञ्ज्ञा, समुद्र, सलिलाकर, सागर, सुख।

५ अक्ष, अनिल, अनुत्तर, अर्थ, असु, आशुग, इन्द्रिय, इषु, कङ्कपत्री, करणीय, कलङ्क, कामगुण, कामदेव, खग, तत्त्व, तन्मात्र, धी, नाराच, नालीक, पक्षि, पञ्च, पतङ्ग, पत्रिन्, पर्व, पवन, पाण्डव, पुत्र, पृषत्क, प्राणः, बाण, भाव, भूत, भेदक, मरुत्, महाभूत, महाव्रत, मार्गण, रत्न, लेय, लेयक, वध, वर्ष्मन्, वात, वायु, विशिख, विषय, व्रत, शर, शरीर, शस्त्र, शिलीमुख, शूक, श्वसन, समिति, सायक, स्मरबाण, स्मरेषु।

६ अङ्ग, अब्द, अराति, अरि, ऋतु, काय, कारक, कार्तिक, काल, कुमार, कुमारवदन, कृत्तिका, कोष, क्ष्माखण्ड, खर, गुहक, गुहवक्त्र, गुहास्य, चक्रार्ध, चमू, चरक, जीव, तर्क, दर्शन, द्रव्य, भार्ध, मासार्ध, रस, राग, रासभ, रिपु, लेख्य, लेश्या, वर्ण, शक्ति, शास्त्र, शिलीमुखपद, शिशु, षट्, षण्मुख, समास, सेना, स्कन्द, स्वाद।

७ अग, अचल, अद्रि, अनिल, अश्व, ऋषि, कलत्र, कुलाचल, क्षितिभृत्, क्ष्माधर, क्ष्माभृत्, गन्धन्वह, गन्धवह, गिरि, घोटा, छन्द (छन्दस्), तत्त्व, तापस, तुरग, तुरङ्ग, दिविचर, द्वीप, धरणिधर, धराधर, धरित्रीधर, धातु, धी, नग, पन्नग, पर्वत, पवन, भय, भूधर, भूध्र, भूभृत्, मरुत्, महीधर, महीध्र, मातृका, मारुत, मुनि, यति, लोक, वक्री, वाजि, वात, वायु, वार, वासर, व्यसन, शिला, शिलोच्चय, शैल, सप्त, समीर, समीरण, स्थिर, स्वर हय।

अनीक, अनुष्टुभ्, अहि, इभ, उरग, करटिन्, करी (करिन्), करेणु, कर्म

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(कर्मन्), कुञ्जर, गज, गहन, गह्वर, तक्ष, तनु, दन्ती (दन्तिन), दिक्, दिग्गज, दिङ्नाथ, दिश्, दुरित, द्विप, द्विरद, धी, धीगुण, नाग, नागेन्द्र, पद्मी, पन्नग, पवनभुक्, पीलुक, पुष्करिन्, प्रधान, प्रभावक, फणिन्, बुद्धिगुण, भद्र, भुजग, भुजङ्ग, भुजङ्गम, भूति, मङ्गल, मतङ्गज, मति, मद, मातङ्ग, यूथप, वन, वसु, वारण, विषभृद्वपु, व्याल, श्रिय, सर्प, सिद्धगुण, सिद्धि, सिन्धुर, सुण्डिप, स्तम्बेरम, स्तम्भेरम, हस्तिन्।

९ अङ्क, अन्तर, अम्बुजासन, उपेन्द्र, ऋद्धि, कपाट, कवाट, कवि, कूप, केशव, क्षत, खग, खचर, खेगामी, खेचर, गम्भीर, गाम्भीर, गो, ग्रह, छिद्र, तामिस्र, तार्क्ष्यध्वज, दिविसद्, दुर्गा, द्वार, नन्द, नभोग, नव, निधान, निधि, पट, पदार्थ,बल, बिल, मिति, यन्त्र, रत्न, रन्ध्र, लब्ध, लब्धि, वट, विल, विवर, शुषिर, सुषिर, हरि।

१० अङ्गुलि, अङ्गुली, अवतार, आशा, ककुभ्, कर्म, काष्ठ, काष्ठा, दिक्, दिक्पाल, दिश्, दिशा, पङ्क्ति, रावणशिर, हरित्।

११ अक्षौहिणी, अज, ईश, ईशान, ईश्वर, गिरिश, गीरीश, गुणी, गौरीश, त्र्यम्बक, धूर्जटि, पशुपति, पिनाकिन्, भर्ग, भव, महः, महादेव, महेश, महेश्वर, मृड, रुद्र, शङ्कर, शम्भु, शर्व, शशिभूषण, शितिकण्ठ, शिव, शूलिन्, श्रीकण्ठ, हर।

१२ अर्क, आदित्य, इन, उष्णांशु, गण, चक्र, तपन, तरणि, तिग्मांशु, तीक्ष्णांशु, दिनकर, दिननाथ, दिनप, दिनमणि, दिनेश, दिवाकर, द्युमणि, नर, ना, पतङ्ग, पूषा, प्रद्योतन, भगण, भानु, भानुमान्, भास्कर, मण्डल, मार्तण्ड, मास, मित्र, मिहिर, रवि, राशि, विवस्वान्, व्यय, शङ्कु, सविता, सूर्य, हंस।

१३ अघोष, अतिजगति, अनङ्ग, करण, काम, क्रियास्थान, जय, यक्ष, वन्द्य, विश्व, विश्वे, विश्वेदेवाः।

१४ इन्द्र, इन्द्रक, कौशिक, गुणस्थान, जिष्णु, पुरन्दर, पूर्वप, भुवन, भूतग्राम, मनु, रज्जु, लोक, वज्रिन्, वासव, विद्या, शक्र, शक्वरी, शचीपति, सुराधिप, सुरेश।

१५ अतिशक्वरी, अहन्, अह्निसंख्या, घस्र, तिथि, दिन, दिवस, द्युनिशा, पक्ष, परमाधार्मिक, वासर, सन्ध्या।

१६ अवनिप, अष्टि, इन्दुकला, कला, क्ष्माप, नृप, नृपति, पृथ्वीश, भूप, भूपति, भूमिप, रिथ, शशिकला।

Ideal\S

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७ अत्यष्टि, घटा, घन, जीमूत, तोयद, बलाह, बलाहक, मेघ, मैत्र, वलाह, वलाहक, विधृति।

१८ अब्रह्म, तीर्थ, धृति, पापस्थानक, पुराण, विद्या, स्मृति।

१९ अतिधृति, वध, साम।

२० अङ्गुल, करज, कृति, नख, नखर।

२१ क्रतु, प्रकृति, बृन्द, मख, मूर्च्छ, मूर्च्छना, यज्ञ, वृन्द, समिधः, स्वः, स्वर्ग।

२२ आकृति, आकृती, जाति, जाती, परीषह, मति।

२३ अज, जहु, माया, मेष, विकृति।

२४ अन्ध, अर्हत्, गायत्री, जिन, तीर्थक, तीर्थकृत्, धम्म (धर्म), बुद्ध, संकृति, सिद्ध।

२५ अतिकृति, अभिकृति, ज्ञान, तत्त्व, पुष्ट।

२६ अतितत्त्व, उत्कृति।

२७ उडु, ऋक्ष, खद्योत, तार, तारक, तारका, तारा, धिष्ण्य, नक्षत्र, भ, भानि।

२८ ऋक्ष, देह, पिण्ड, हुला।

२९ आम उष्टि, कुव।

३० जटा, तिथि, दिन, साध्वी।

३२ दन्त, दशन, रद, रदन।

३३ अमर, अस्वप्न, गीर्वाण, त्रिदश, देव, दैवत, नाकगृह, निर्जर, सुर।

३९ दूर्वा।

४० ताल, पङ्क्ति।

४५ त्रिपक्षी।

४८ जगती, संस्कार।

४९ अनिल, तान, पवन, मरुत्, वायु।

५५ सुष्टि।

५९ काच, मोक्ष।

६४ कला, योगिनी, स्त्रीकला।

६५ पुष्टि।

७२ पुरुषकला।

३६० चक्रांशय, भांश।

५४०० दरद।

२१६०० चक्रकला, चक्रलिप्ता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शब्दानुसार

अंशुमान्	१	अन्तर	९
अंस	२	अन्तरिक्ष	०
अक्ष	५	अन्ध	२४
अक्षि	२	अपस्	४
अक्षौहिणी	११	अब्ज	१
अग	७	अब्द	६
अग्नि	३	अब्धि	४
अघोष	१३	अब्रह्म	१८
अङ्क	९	अभिकृति	२५
अङ्ग	६	अभ्र	०
अङ्गुल	२०	अमर	३३
अङ्गुलि या अङ्गुली	१०	अमृतांशु	१
अचल	७	अम्बक	२
अचला	१	अम्बर	०
अज	११,२३	अम्बु	४
अतिकृति	२५	अम्बुजासन	९
अतिजगती	१३	अम्बुद	०
अतितत्त्व	२६	अम्बुधि	४
अतिधृति	१९	अम्बनिधि	४
अतिशक्वरी	१५	अम्भोधि या अम्भोनिधि	४
अत्यष्टि	१७	अय	४
अद्रि	७	अयन	२
अनङ्ग	१३	अराति	६
अनन्त	०	अरि	६
अनल	३	अर्क	१२
अनिल	५,७,४९	अर्णव	४
अनीक	८	अर्थ	५
अनुत्तर	५	अर्हत्	२४
अनुष्टुभ्	८	अवतार	१०
अन्तक	२	अवनि	१

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अवनिप	१६	इन्द्रिय	५
अश्व	७	इभ	८
अश्वि	२	इला	१
अश्विनी	२	इषु	५
अष्टि	१६	ईक्षण	२
असत्	०	ईश	११
असु	५	ईशान	११
अस्वप्न	३३	ईश्वर	११
अहन्	१५	उडु	२७
अहि	८	उडुपति	१
अह्निसंख्या	१५	उत्कृति	२६
आकाश	०	उदधि	४
आकृति	२२	उदन्वान	४
आकृती	२२	उपाय	४
आज्यभुक्	३	उपेन्द्र	६
आज्याश	३	उरग	८
आदि	१	उर्वरा	१
आदित्य	१२	उर्वी	१
आप	४	उषर्बुध	३
आम	२६	उष्टि	२६
आम्नाय	४	उष्णांशु	१२
आय	४	ऋक्ष	२७,२८
आशा	१०	ऋक्षेश	१
आशुग	५	ऋतु	६
आश्रम	४	ऋद्धि	६
आस्य	१	ऋषि	७
इन	१२	एक	१
इन्दु	१	एणधर	१
इन्दुकला	१६	ओष्ठ	२
इन्द्र	१४	औषधीश	१
इन्द्रक	१४	क	१

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ककुभ्	१०	कुच	२
कङ्कपत्री	५	कुञ्जर	८
कपाट	९	कुटुम्ब	२
कर	२	कुमार	६
करज	२०	कुमारवदन	६
करटिन्	८	कुमुदाकरप्रिय	१
करण	१३	कुलाचल	७
करणीय	५	कुव	२९
करी (करिन्)	८	कूप	९
करेणु	८	कृत	४
कर्ण	२	कृति	२०
कर्म (कर्मन्)	८,१०	कृत्तिका	६
कलङ्क	५	कृशानु	३
कलत्र	७	कृष्णवर्त्म	३
कला	१६,२४	केन्द्र	४
कलाधर	१	केशव	९
कलि	१	कोष	६
कवाट	९	कोष्ठ	४
कवि	९	कौशिक	१४
कषाय	४	क्रतु	२१
काच	५९	क्रम	३
काम	१३	क्रियास्थान	१३
कामगुण	५	क्षत	९
कामदेव	५	क्षपाकर	१
काय	६	क्षमा	१
कारक	६	क्षिति	१
कार्तिक	६	क्षितिभृत्	७
काल	३,६	क्षोणि	१
काष्ठ	१०	क्षोणी	१
काष्ठा	१०	क्ष्मा	१
कु	१	क्ष्माखण्ड	६

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षमाधर	७
क्षमाप	१६
क्षमाभृत्	७
खं	०
ख	०
खग	५,९
खचर	९
खद्योत	२७
खर	६
खेगामी	९
खेचर	९
गगन	०
गज	८
गण (=भगण)	१२
गति	४
गन्धन्वह	७
गन्धवह	७
गम्भीर	९
गरुत्	२
गहन	८
गह्वर	८
गाम्भीर	९
गायत्री	२४
गिरि	७
गिरिश	११
गिरीश	११
गीर्वाण	३३
गुण	३
गुणस्थान	१४
गुणी	११
गुप्ति	३
गुल्फ	२
गुहक	६
गुहवक्त्र	६
गुहास्य	६
गो	१,९
गोत्र	१
गोत्रा	१
गौरीश	११
ग्लौ	१
ग्रह	९
घटा	१७
घन	१७
घस्र	१५
घोटा	७
चक्र	१२
चक्रकला	२१६००
चक्रलिप्ता	२१६००
चक्रांश	३६०
चक्रार्ध	६
चक्षु	२
चन्द्र	१
चन्द्रमा	१
चमू	६
चरक	६
छन्द (छन्दस्)	७
छिद्र	०,९
जगत्	३
जगती	१,४८
जङ्घा	२
जटा	३०
जय	१३

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जल	४	तारका	२७
जलद	०	तारा	२७
जलधर	०	तार्क्ष्यध्वज	९
जलधरपथ	०	ताल	४०
जलधि	४	तिग्मांशु	१२
जलनिधि	४	तिथि	१५,३०
जहु	२३	तीक्ष्णांशु	१२
जाति	२२	तीर्थ	१८
जाती	२२	तीर्थक	२४
जानु	२	तीर्थकृत्	२४
जिन	२४	तुरग	७
जिष्णु	१४	तुरङ्ग	७
जीमूत	१७	तुरीय	४
जीव	६	तुर्य	४
जैवातृक	१	तृतीय	३
ज्या	१	तोय	४
ज्योति	३	तोयद	१७
ज्ञान	२५	त्रय	३
ज्वलन	३	त्रिकटु	३
ज्वाल	३	त्रिकाल	३
तक्ष	८	त्रिगत	३
तत्त्व	५,७,२५	त्रिगुण	३
तनु	१,८	त्रिजगत्	३
तन्मात्र	५	त्रिदश	३३
तपन	३,१२	त्रिनेत्र	३
तरणि	१२	त्रिपक्षी	४५
तर्क	६	त्रिपदी	३
तान	४९	त्रैत	३
तापस	७	त्र्यम्बक	११
तामिस्र	९	दन्त	३२
तार या तारक	२७	दन्ती (दन्तिन्)	८

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दरद	५४००	देह	२८
दर्शन	६	दैवत	३३
दशन	३२	दोः	२
दस्र	२	द्युति	३
दह	३	द्युनिशा	१५
दहन	३	द्युमणि	१२
दाक्षयणीप्राणेश	१	द्रव्य	६
दिक्	४,८,१०	द्वन्द्व	२
दिक्पाल	१०	द्वय	२
दिग्गज	८	द्वार	९
दिङ्नाथ	८	द्वि	२
दिन	१५,३०	द्विप	८
दिनकर	१२	द्विरद	८
दिननाथ	१२	द्वीप	७
दिनप	१२	धरणिधर	७
दिगमणि	१२	धरणी	१
दिनेश	१२	धरा	१
दिव	०	धराधर	७
दिवस	१५	धरित्री	१
दिवाकर	१२	धरित्रीधर	७
दिविचर	७	धम्म (धर्म)	२४
दिविसद्	९	धातु	७
दिश्	४,८,१०	धाम	३
दिशा	४,८,१०	धिष्ण्य	२७
दीप्ति	३	धी	५,७,८
दुरित	८	धीगुण	८
दुर्गा	९	धूर्जटि	११
दूर्वा	३९	धृति	१८
दृश्	२	ध्यान	४
दृष्टि	२	ध्रुव	२
देव	३३	नक्षत्र	२७

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नख	२०	नेत्र	२,३
नखर	२०	पक्ष	२,१५
नग	७	पक्षि	५
नग्न	०	पङ्क्ति	१०,४०
नदी	४	पञ्च	५
नन्द	९	पट	९
नभ (नभस्)	०	पतङ्ग	५,१२
नभोग	९	पत्रिन्	५
नय	२	पद	३
नयन	२	पदार्थ	९
नर	१२	पद्मी	८
नव	९	पन्नग	७,८
ना	१२	पयोद	०
नाकगृह	३३	पयोधर	०
नाग	८	पयोधि	४
नागेन्द्र	८	पयोनिधि	४
नायक	१	परमाधार्मिक	१५
नाराच	५	परीषह	२२
नालीक	५	पर्व	५
नासत्य	२	पर्वत	७
निगम	४	पवन	५,७,४९
निधान	९	पवनभुक्	८
निधि	९	पशुपति	११
निम्नगेश	४	पाणि	२
निर्जर	३३	पाण्डव	५
निशाकर	१	पाथ	४
निशेश	१	पाथोधि	४
नीरधि	४	पापस्थानक	१८
नीरनिधि	४	पावक	३
नृप	१६	पिण्ड	२८
नृपति	१६	पितामह	१

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पितामहास्य	४	बन्ध	४
पिनाकिन्	११	बन्धु	४
पीलुक	८	बल	६
पुं	३	बलाह	१७
पुत्र	५	बलाहक	१७
पुर	३	बाण	५
पुरन्दर	१४	बाहु	२
पुराण	१८	बिन्दु	०
पुरुष	३	बिल	६
पुरुषकला	७२	बुद्ध	२४
पुष्कर	०,३	बुद्धिगुण	८
पुष्करिन् (=हस्तिन्)	८	बृन्द	२१
पुष्ट	२५	ब्रह्मन्	३
पुष्टि	६५	ब्रह्मा	१
पूर्ण	०	ब्रह्मोद्भव	४
पूर्वप	१४	भ	२७
पूषा (पूषन्)	१२	भगण	१२
पृथिवी	१	भद्र	८
पृथु	०	भय	७
पृथुल	०	भर्ग	११
पृथ्वी	१	भव	११
पृथ्वीश	१६	भांश	३६०
पृषत्क	५	भानि	२७
प्रकृति	२१	भानु	१२
प्रणिम्नगेश	४	भानुमान्	१२
प्रद्योतन	१२	भार्ध	६
प्रधान	८	भाव	५
प्रभावक	८	भास्कर	१२
प्राण	५	भुज	२
प्रालेयांशु	१	भुजग	८
फणिन	८	भुजङ्ग	८

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भुजङ्गम्	८	महेरा	११
भुजा	२	महेश्वर	११
भुवन	३,१४	महोर्मि	४
भुवन्यु	१	महोर्मिक	४
भू	१	मातङ्ग	८
भूत	५	मातृका	७
भूतग्राम	१४	माया	२३
भूति	८	मारुत	७
भूधर	७	मार्गण	५
भूध्र	७	मार्तण्ड	१२
भूप	१६	माल	४
भूपति	१६	मास	१२
भूभृक्त्	७	मासार्ध	६
भूमि	१	मिति	९
भूमिप	१६	मित्र	१२
भेदक	५	मिहिर	१२
मख	२१	मुख	१
मङ्गल	८	मुनि	७
मण्डल	१२	मूर्च्छ	२१
मतङ्गज	८	मूर्च्छना	२१
मति	८,२२	मृगलाञ्छन	१
मद	८	मृगाङ्क	१
मनु	१४	मृड	११
मरुत्	५,७,४९	मेघ	०,१७
महः	११	मेदिनी	१
महादेव	११	मेष	२३
महाभूत	५	मैत्र	१७
महाव्रत	५	मोक्ष	५९
मही	१	यक्ष	१३
महीधर	७	यज्ञ	२१
महीध्र	७	यति	७

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यन्त्र	९	रूप	१
यम	२	रोहित (=रोहिताश्व)	३
यमल	२	लपन	१
युग	२,४	लब्ध	९
युगल	२	लब्धि	९
युग्म	२	लवणोद	४
यूथप	८	लेख्य	६
योगिनी	६४	लेय	५
रजनीकर	१	लेयक	५
रजनीश	१	लेश्या	६
रज्जु	१४	लोक	३,७,१४
रत्न	३,५,९	लोकपाल	४
रद	३२	लोचन	२,३
रदन	३२	वक्त्र	१
रन्ध्र	०,९	वक्री	७
रवि	१२	वचन	३
रविचन्द्रौ	२	वज्रिन्	१४
रविपुत्र (=यम)	२	वट	९
रस	६	वदन	१
राग	६	वध	५
रात्रिप	१	वन	८
रात्रीश	१	वन्द्य	१३
राम	३	वरीय	०
रावणशिर	१०	वर्ण	४,६
राशि	१२	वर्ष्मन	५
रासभ	६	वलाह	१७
रिथ	१६	वलाहक	१७
रिपु	६	वसु	८
रुग्ण	१	वसुधा	१
रुद्र	११	वसुन्धरा	१
रुद्राक्ष	३	वह्नि	३

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वाक्	१	विष्णु	३
वाजि	७	विष्णुक्रम	३
वात	५,७,४६	विष्णुपद या विष्णुपाद	०
वायु	५,७,४६	विहायस्	०
वार	७	वृत्त	३
वारण	८	वृन्द	२१
वारिधि	४	वृहत्	०
वारिनिधि	४	वेद	४
वार्धि	४	वैश्वानर	३
वासर	७,१५	व्यय	१२
वासव	१४	व्यसन	७
विकृति	२३	व्याल	८
विक्रम	३	व्योम	०
विद्या	१४,१८	व्रत	५
विधु	१	शक्ति	३,६
विधृति	१७	शक	१४
विन्दु	०	शक्वरी	१४
वियत्	०	शङ्कर	११
विरञ्चि	१	शङ्कु	१२
विल	६	शचीपति	१४
विवर	६	शम्भु	११
विवस्वान्	१२	शर	५
विशिख	५	शरीर	५
विश्व	१३	शर्व	११
विश्वम्भरा	१	शशधर	१
विश्वे	१३	शशभृत्	१
विश्वेदेवाः	१३	शशलाञ्छन	१
विषधि	४	शशाङ्क	१
विषनिधि	४	शशि	१
विषभृद्रपु	८	शशी	१
विषय	५	शशिकला	१६

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शशिभूषण	११	श्वेत	१
शस्त्र	५	श्वेतांशु	१
शास्त्र	६	षट्	६
शिखा	३	षण्मुख	६
शिखिन्	३	संस्कार	४८
शितिकण्ठ	११	सङ्कृति	२४
शिला	७	सञ्ज्ञा	४
शिलीमुख	५	सन्ध्या	१५
शिलीमुखपद	६	सप्त	७
शिलीच्चय	७	सप्तार्चि	३
शिव	११	समास	६
शिवनेत्र	३	समिति	५
शिशु	६	समिधः	२१
शीतकर	१	समीर	५,७,४९
शीतकिरण	१	समीरण	५,७,४९
शीतद्युति	१	समुद्र	४
शीतमयूख	१	सर्प	८
शीतरश्मि	१	सलिलाकर	४
शीतांशु	१	सविता	१२
शुभ्रभानु	१	सहोदर	३
शुषिर	९	सागर	४,७
शूक	५	साध्वी	३०
शून्य	०	साम	१९
शूल	३	सायक	५
शूलिन	११	सितरश्मि	१
शैल	७	सिद्ध	२४
श्री	८	सिद्धगुण	८
श्रीकण्ठ	११	सिद्धि	८
श्रुति	४	सिन्धुर	८
श्रोत्र	२	सुख	४
श्वसन	५	सुण्डिप	८

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुधांशु	१	हय	७
सुर	३३	हर	११
सुराधिप	१४	हरनयन	३
सुरेश	१४	हरनेत्र	३
सुषिर	९	हरि	९
सुष्टि	५५	हरिणधृत्	१
सूर्य	१२	हरिणाङ्क	१
सेना	६	हरित्	१०
सोम	१	हव्यभुक्	३
स्कन्द	६	हव्यवाहन	३
स्तन	२	हव्याश	३
स्तम्बेरम	८	हस्त	२
स्तम्भेरम	८	हस्तिन्	८
स्त्रीकला	६४	हिमकर	१
स्थिर	७	हिमगु	१
स्थिरा	१	हिमरश्मि	१
स्मरबाण	५	हिमांशु	१
स्मरेषु	५	हुतभुज्	३
स्मृति	१८	हुतवह	३
स्वः	२१	हुताश	३
स्वर	७	हुताशन	३
स्वर्ग	२१	हुला	२८
स्वाद	६	होतृ	३
हंस	१२		

—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA